

श्री मलिनाथाय नमः



श्री मलिनाथ पुराण

भाष्यकारका मंगलाचरण

सर्वविजित हर्ता प्रभू मलिनाथ जिनराज । जिन भंगल करण नम् धारि माथ पद आज ॥ १ ॥
ज्ञान योग तप लीन नित गहितपरिश्वर धीर । विषयवासनाविमुख गुह भेदो भप भवपीर ॥ २ ॥
अन्दू वशी भगवती स्यादादमय घड । जा प्रमादते होत हैं भव्यजीव प्रतिबुद्ध ॥ ३ ॥

ग्रन्थकारका मंगलाचरण

नमः श्रीमलिनाथाय कमंभलचिनाशिने । अनन्तमहिमाप्नाय त्रिभगत्प्वामिनेऽनिशम् ॥१॥
शोषान् सर्वान् त्रिनान्वन्दे धर्मचक्रप्रवर्तकान् । विद्वभव्यहितोद्युक्तान् पश्चकल्याणनायकान् ॥२॥
कर्मनाशमुणाधीषांल्लोकाग्रे च तिवासिनः । द्येयान् मन्यादिभव्यीषे स्मरामि हृदये सदा ॥३॥
आहृतो भारती पूज्या लोकालोकप्रदीपिका । रजाविधूयने नित्यं तनोतु विपुलं मतिम् ॥४॥

जिनका जीतना बड़े बलेशसे हो सकता है ऐसे ज्ञानाचरण आदि कर्मरूपी मल्लोंको जड़से नष्ट करनेवाले, अनन्तविज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसौख्य और अनन्तदर्ढान्त स्वरूप अनन्त चतुष्टय महिमाके धारक, एवं तीन लोकके स्वामी भगवान् मलिनाथको मैं ग्रन्थकार (श्रीसकलकीर्ति भट्टारक) सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥ भगवान् मलिनाथसे जो ऋषभ आदि तोर्यंकर हैं उन्हें भी मैं ग्रन्थकी आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ वयोंकि वे समस्त तोर्यंकर भी भगवान् मलिनाथके ही समान धर्मचक्रके प्रवतनिवाले हैं । मोक्षाभिलाषी समस्त जीवोंको हितकारी मार्ग मोक्षमार्गमें लगानेवाले हैं एवं गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान और निर्वाण इन पांचों कल्याणोंके नाथक हूँ ॥२॥ ज्ञानाचरण, दर्शनाचरण आदि धाति अधाति कर्मोंके नाशसे प्राप्त सम्यक्त्व आदि आठों शुणोंके स्वामी, तीन लोकके अग्रभागमें विराजनेवाले एवं मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा जिनकी आनन्दमयो मूतिका ध्यान करते हैं उन सिद्ध भगवान्तको भी मैं अपने हृदयमें स्मरण करता हूँ ॥३॥ लोक और अल्लोकको स्पष्ट रूपसे प्रकाश करनेवाली एवं भगवान् अरहंतकी दिव्यध्यनिसे प्रकाशमान

आचार्यं आदित्यं साधुत् दुर्लभान्तरत्वरत्वं । श्रुताब्दीन् दिरसा बन्दे सर्वैश्च योगसाधकान् ॥५॥
 रत्नत्रयं नमस्कृत्य कर्मणं शर्मसागरं । रत्नत्रयविधानस्य फलसूचनहेतवे ॥६॥
 महिलनाथजिनेन्द्रस्य चरित्रं पावनं परं । समासेन प्रवद्यामि स्वान्यथोहितसिद्धये ॥७॥
 अथ ज्ञेयमति द्वीपे विदेहे पूर्वनामानि । विषयः कच्छकावत्यभिधोऽस्ति धर्मवारिधिः ॥८॥
 यत्र ग्रामाणि खेटानि पत्तनानि पुराणि च । मटंवादीनि राजन्ते जिनागारेश्च धामिकैः ॥९॥
 यत्रारण्ये वने रम्येऽचले तुगे फलांकिते । सर्वत्र भुनयो धीरा दृश्यन्ते ध्यानतत्पराः ॥१०॥
 संख्यातीता जिनाधीशांश्चक्रिणश्चाधींश्चक्रिणः । तद्द्विषः कामदेवाश्च जायन्ते सुरपूजिताः ॥११॥

भगवती सरस्वतीको भी मैं ग्रन्थकी आदि में अभिवंदना करता हूँ और उससे विनय-पूर्वक यह प्रार्थना करता हूँ कि वह विघ्नोंके नाश करनेमें सदा मेरी बुद्धिको प्रबल और निर्मल बनावे ॥४॥ ग्रन्थकी आदिमें आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओंको भी मेरा भस्तक शुकाकर नमस्कार है श्योंकि ये पवित्रात्मा ज्ञानाचार आदि आचारोंके आचरण करनेवाले हैं । आगमके समुद्र हैं और ध्यानके करनेमें प्रवीण हैं ॥५॥ समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले और अनेक प्रकारके कल्याणोंके समुद्र उस सम्पदर्जन सम्पर्जन सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रयको भी मैं प्रणाम करता हूँ और हृदयमें यह पूरी अभिलाषा रखता हूँ कि वह कल्याणकारी रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो ॥६॥ इस प्रकार कल्याणके कर्ता समस्त इष्ट देवोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मैं उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान महिलनाथके चरित्रको संक्षेपसे वर्णन करता हूँ जो कि अत्यन्त पवित्र है और अपना पराया हित सिद्ध करनेवाला है ॥७॥

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विवेहधेश्चर्में धर्मका समुद्र अर्थात् जहाँपर सदा वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति रहती है ऐसा कच्छकावती नामका प्रसिद्ध देश है ॥८॥ इस कच्छकावती देशके गाँव, खेट, पत्तन, पुर, मटम्ब आदिमें जगह-जगह जिनमन्दिर शोभायमान हैं एवं मोक्षाभिलाषी धर्मात्मा लोगोंके निवास स्थान बने हुए हैं । उनसे यह देश अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है ॥ इसी कच्छकावती देशके महामनोहर अचिनाशी ऊंचे और नाना प्रकारके फलोंसे शोभायमान जंगल और बनोंमें जगह-जगह मुनिराज दीख पड़ते हैं जो कि घोर परीषहोंके सहनेमें परम धीर दीर हैं और सदा ध्यानमें लब्धलीन हैं ॥९॥ इसी कच्छकावती देशमें असंख्याते भगवान जिनेन्द्र उत्पन्न होते हैं । असंख्याते ही चक्रवर्ती नारायण प्रतिनामरायण और कामदेव उत्पन्न

यत्र प्रवत्ते धर्मो जैनोह्योको दयामयः । शाश्वतो यतिभिः आवकैश्च सागो न चापरं ॥१३॥
 विहरन्ति मुनीशाश्च गणेशाः केवलिनः सदा । यत्र धर्मोपदेशाय सतां त च कुर्लिगिनः ॥१४॥
 सर्वंत्र बिनचेत्याला बिलोक्यन्ते महोन्नताः । ग्रामारण्युरुदादी च नान्यदेवमठा बवचित् ॥१५॥
 यत्र वर्णत्रयोपेता जिनधर्मपराः प्रजाः । विनीता जिनगुर्वादी सदाचारा वसंत्यहो ॥१६॥
 अङ्गपूर्वाणि पश्चोच्चैजिनोक्तानि निरतरं । श्रूयते च प्रपञ्चते न कुशास्त्राणि सज्जनेः ॥१७॥
 यत्रोत्पलरहो स्वर्गो मोक्षश्च यदि साध्यते । तपसा ब्रतदानाद्यस्तत्र का वर्णना परा ॥१८॥
 इत्यादिवर्णनोपेते देशे धर्मकुलालये । वीतशोकाभिध भाति पुरं देवपुरोपमम् ॥१९॥
 दीर्घस्वातिक्या तुङ्गशालगोपुरतोरणे । मनोज्ञेर्यदभाज्जंबूद्धीपवेद्यज्ञिवत्तरा ॥२०॥

होते हैं जिनकी कि बड़े-बड़े देव पूजा और सत्कार करते हैं ॥११॥ इस कच्छकावती देशमें केवल एक जैनधर्मकी ही प्रवृत्ति रहती है जो धर्म सदा दयास्वरूप है । यति और आवकोंकी विद्यमानतासे जो शाश्वत है—सदाकाल विद्यमान रहता है और सारभूत है किन्तु जैनधर्मके सिवाय अन्य किसी धर्मको उस देशमें प्रवृत्ति नहीं रहती ॥१२॥ इस कच्छकावती देशमें मोक्षाभिलाषी जीवोंको धर्मका उपदेश सुनानेके लिये सदा मुनिगण गणधर और केवलियोंका विहार होता रहता है । कुर्लिगी—मिथ्यात्मी साधुओंका वहाँपर विहार नहीं होता ॥१३॥ इस देशमें जहाँ देखो वहाँ ग्राम और नगर आदिमें ऊँचे-ऊँचे जिनेन्द्रिय ही दीख पड़ते हैं मिथ्यादृष्टि देवोंके मन्दिर कहीं भी नजर नहीं पड़ते ॥१४॥ इस देशमें भगवान जिनेन्द्रके धर्ममें सदा लबलोन क्षत्रिय वैद्य और शूद्र तीनों वर्णोंकी प्रजा निवास करती है यह प्रजा भगवान जिनेन्द्र एवं गुरुओंमें सदा विनयालु है और सदा उत्तम आचरणकी आचरनेवाली है ॥१५॥ इस देशमें जहाँ सुनो वहाँपर भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादन ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वही सत्पुरुषों के द्वारा सुननेमें आते और पढ़े जाते हैं मिथ्या-शास्त्रोंका वहाँपर सुनना और पढ़ना नजर नहीं आता ॥१६॥ विशेष क्या ? इस देशमें उत्पन्न होनेवाले महानुभाव, जप, तप, ब्रत और दान आदिके द्वारा सुलभ-रूपसे न प्राप्त होनेवाले स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेते हैं तब इससे अधिक उसकी कोर्तिका क्या वर्णन हो सकता है ॥१७॥

इस प्रकारके उत्तम वर्णनके धारक एवं समीचील धर्म और उत्तमोत्तम कुलोंके स्थान उस कच्छकावती देशमें एक वीतशोका नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे देवपुरी—स्वर्गके समान जान पड़ती है ॥१८॥ विस्तीर्ण खाइयाँ, मनोहर

पुण्यवद्वामकूटाग्रध्वजहस्तैर्मुद्दशीः । नाविनामाहृयंतोव मृत्ये यदभुवम्नरां ॥२१॥
 केचित्पश्यति दानाय गृहद्वारं च दानिनः । केचिदत्प्राप्य महापात्रं सुदानं ददतं मुदा ॥२२॥
 केचिदानजगुणेन रत्नबृष्टि भजत्यहो । केचिदप्राप्य मत्यात्रं खेदं चापि प्रयत्यहो ॥२३॥
 दिव्यरूपाणि युग्मानि भतुं स्त्रीणां जिनालये । देवानामिव राजते यत्र पूजापश्चणि च ॥२४॥
 तुङ्गा हैममया यथा जिनप्रासादपक्तयः । धर्मकिंश्च इवात्यर्थं भ्राजते मणितौरणेः ॥२५॥
 मणिदिवोच्छजंदीप्रः रत्नोपकरणेः परः । गोत्रेनंतरनवाद्यं च स्तवेः स्त्रोभिन्नरोत्तमेः ॥२६॥
 यत्रेच्छते अहो जन्म सुरेशा मुवितसिद्धये । पुरे धर्मकरे तत्र वर्णना का परा घना ॥२७॥

ऊँचे-ऊँचे परकोट, सदर दरवाजे और तोरणों (बंदनमालाओं) से वह नगर अत्यन्त शोभित होता है सो ऐसा जान पड़ता है मानों देवी और समुद्रसं ब्रेष्टित यह जम्बूद्वीप ही है ॥१९॥ उत्तमोत्तम धानिकोंको अटारियोंके अग्रभग्गमें लगीं हुईं और पवनके झकोरोंसे हिलनेवाली जो ध्वजायें वे ही हुए हाथ, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानों उस नगरको भूमियाँ देवोंको यह जतलाकार बुला रही है कि भाई देवों ! यदि तुम्हें अपने निजस्थान स्वर्गसे मोक्ष नहीं प्राप्त होती है तो तुम यहांसे उसे प्राप्त करो । अतएव वह नगर अत्यन्त शांभायमान जान पड़ता था ॥२०॥ उस नगरमें यह बड़ी ही आनन्दकी बात थी कि बहुतसे दानोपुरुष आहुरके बेलाके समय मुनियोंको आहारदान देनेके लिये अपने-अपने घरोंके द्वार देखते थे अर्थात् हुआर-पेक्षण करते थे और कोई कोई मुनिरूप महापात्र—उसमपात्रको भक्तिपूर्वक उत्तमदान देते थे ॥२१॥ किन्हीं-किन्हीं पुण्यात्माओंके घर दानसे जायमान पुण्यसे रत्नोंकी वर्षा होती थी और कोई-कोई पुरुष सत्पात्रको न पाकर दुःखित हो पहचाताप भी करते थे ॥२२॥ इस वीतशोका नगरमें दिव्यरूपके धारक स्त्री पुरुषोंके जोड़े जिस समयमें जिनमन्दिरोंमें भगवान जिनेन्द्रको पूजामें संलग्न होते थे उस समय वे देव-देवियोंके जोड़ सरीखे जान पड़ते थे ॥२३॥ धर्मकी खानियोंके समान उस नगरकी ऊँची-ऊँची और सुवर्णमयो जिनमन्दिरोंकी श्रेणियाँ मणिमयो तोरणोंसे ऊँचे-ऊँचे मणिमयी प्रतिबिम्बोंसे, देवीप्रमान रत्नमयी उपकरणों से गीत नृत्य आजे और स्त्रीोंसे स्त्रियों और उत्तमोत्तम पुरुषोंसे अत्यन्त शांभायमान जान पड़ती थीं ॥२४-२५॥ विशेष क्या ? धर्मकी लार्तन स्वरूप उस नगरमें मोक्षको प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े शृङ्खिके धारक इन्द्र भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे इसलिये इस नगरका जितना भी अधिक वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥२६॥

इत्यादिवर्णिते तस्मिन् गुरे धर्मकारणे । नृणां वैश्रवणो ह्यामीत्प्रतापो धर्मभूषितः ॥२७॥
 अमात्स रूपलावण्यवस्त्रालंकारसदगणैः । दानशोलद्रवताद्येव सुरेश इव नोतिवित् ॥२८॥
 प्रजानां क्षेमकर्ता स न्यायमार्गस्तो महान् । स्वराज्यं पालयत्येव जितारातिविच्छणः ॥२९॥
 धर्मदिर्घस्तया कामः क्रमान्माक्षश्च धीमता । इति मत्वा स भूनाथो धर्म्यं ध्यानपरोऽभवत् ॥३०॥
 प्रत्यहं दानपूजादि प्रोष्ठवान् सर्वपर्वम् । श्रावकश्चतसम्पूर्णं करोति शोलवान्नुपः ॥३१॥
 पुण्योदयेन तस्यामीद्राज्यलक्ष्मो मुखप्रदा । पुण्यरूपंकरा सारा दासीव बशवर्तिनी ॥३२॥
 अयैकदा लसद्वालं भूगालं स्वसदस्त्वित । पुण्यहस्तां मुग्गत्य वनपालो व्यजिङ्गपत् ॥३३॥
 श्रीचन्दनवने देव ! मनोजे मुनपुङ्गवः । आजगाम त्रिगृह्णात्मा सुगुप्तास्वाऽवधीक्षणः ॥३४॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनके धारक और धर्मके प्रधान कारण उस वीतशोक नगरमें एक वैश्रवण नामका राजा था जो कि अत्यन्त प्रतापी होनेपर भी धर्मात्मा था । कमनोयरूप और लावण्यसे महामनोहर वस्त्र और भूषणोंसे एवं दान शोल और द्रवत आदिसे वह राजा अत्यन्त शोभायमान था तथा इन्द्रके समान परम नोतिवान था । प्रधानरूपसे वह प्रजाओंके कल्याणका करनेवाला था । सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला था, महान् था । समस्त शशुओंका विजेता और चतुर था एवं अपने राज्यका सुचारू रूपसे पालन करता था । उस वैश्रवण राजाका यह सदा ध्यान रहता था कि धर्मसे धनको प्राप्ति होती है । धनसे काम पुरुषार्थं सिद्ध होता है एवं क्रमसे मोक्ष पुरुषार्थको सिद्धि होती है ऐसा मानकर वह सदा धर्मध्यानमें लोन रहता था । वह शोलवान नरपाल प्रतिदिन दान पूजा आदिको करता था । समस्त अष्टमी और चतुर्दशी पर्वोंमें उपवासोंको आचरता था एवं समस्त श्रावकोंके द्वतीकर वह अच्छी तरह पालन करता था ॥२७-३१॥ पुण्यकर्मके उदयसे राजा वैश्रवणको अत्यन्त सुख देनेवालो राज्यलक्ष्मीको प्राप्ति थी जो कि पवित्र कामोंमें खर्च होनेवाली थी और दासीके समान राजा वैश्रवणकी सदा आजाकारिणी थी ॥३२॥

कवाचित् दीप्यमान मुकुटसे जिनका मस्तक चमचमा रहा था ऐसे राजा वैश्रवण अपनी राजसभामें राजसिंहासनपर विराजमान थे कि उसी समय पुण्योंको हाथमें लेकर अत्यन्त हर्षका भरा वनपाल राजसभामें आया और इस प्रकार निवेदन करने लगा ॥३३॥

दे देव ! महामनोहर चलनवनमें सुनिराज सुगुप्त आकर विराजे हैं वे मुनिराज साधारण मुनिराज नहीं समस्त मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं । मनोगुप्ति वचनगुप्ति

कृत्स्नसंगपरित्यक्तः संयुक्तो गुणसम्पदः । भवपरिवैधनायैव ध्यानाध्ययनतत्परः ॥३५॥
 ततः पाठात्समुत्थाय परमानन्दनिर्भरः । गत्वा सप्तपदान्युचेस्तां दिशं प्रणनाम सः ॥३६॥
 दापयित्वा महानन्दमेरीं स स्वजनैवृतः । धमसिद्धै मुनेः पादौः नंतुं तद्वनमासदत् ॥३७॥
 शिलापट्टे निविष्टस्य मुनींद्रस्य हितात्मनः । निःसंगस्य गुणाव्येमहतः क्रम सरोषही ॥३८॥
 त्रिःपरीक्ष्य प्रपूज्यातिभक्तया दिव्याचर्नोल्करैः । सार्थं स्वपरिवारेण नमाम शिरसा नृपः ॥३९॥
 विश्वशमंखनीराजन् । छ...कर्मवृद्धिरस्मुले मुनिराजोदीर्घात्मावैदभस्मि ददौ मुनिः ॥४०॥
 श्रुत्वा तद्वचनं राजा धर्मवृद्धिप्रसूचकं । जिज्ञासुधंसंयात्म्यं नत्वाऽब्रोचन्मुनिं प्रति ॥४१॥

और कायगुप्ति इन तीनों गुणियोंसे उनकी आत्मा विभूषित है । अवधिज्ञानरूप नेत्रके धारक हैं । समस्त परिग्रहके त्यागी हैं । गुणरूप सम्पत्तिके धारक हैं तथा “मोक्ष प्राप्त करनेवाले भव्यप्राणी समोचीन ज्ञान प्राप्त करें” अर्थात्—संसारमें जो पदार्थ सारभूत है उसकी ओर झुकें, यही समझानेके लिए वे विशेषरूपसे ध्यान और अध्ययनमें अत्यन्त लीन हैं ॥३४-३५॥ बनपालके मुखसे परमानन्द देनेवाला समाचार सुन राजा वैश्वदणकी आत्मा मारे आनन्दके गद्गद हो गई । वह आनन्दसे पुलकित हो शोध्र ही राजसहासनसे उठा । जिस पवित्र विशाके अन्वर मुनिराज सुगुप्त विराजमान थे, सात पेंड उस विशाकी ओर गथा और बड़ी भक्तिके साथ उस विशाकी साष्टांग नमस्कार किया ॥३६॥ मुनिराजके दर्शनोंकी शोध्र उत्कंठासे उसने शोध्र ही नगरमें आनन्द भेदी रिकार्ह । अपने सर्व कुटुम्बी जनोंको भेला कियो एवं षष्ठोपदेशाकी अभिलाषासे मुनिराज सुगुप्तके पूजनार्थ वह शोध्र ही चन्दन वनमें पहुंच गया ॥३७॥ हितकारी भार्गके उपदेश देनेवाले, समस्त परिग्रहके त्यागी, गुणोंके समुद्र और पूज्य मुनिराज सुगुप्त एक विस्तीर्ण शिलापर विराजमान थे । राजा वैश्वदण शोध्र ही उनके पास पहुंचा । तीन प्रदक्षिणा दीं । अपने परिवारके साथ उत्तमोत्तम सामग्रीसे मुनिराजके घरण कमलोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की एवं पूजाके अन्तमें उन्हें मस्तक सुकाकर प्रणाम किया ॥३८-३९॥ मुनिराज लौकिक शिष्टाचारके अत्यन्त जानकार थे इसलिये उन्होंने—हे समस्त कल्याणके स्वान राजन् । मोक्ष-लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली, तुम्हारी निरन्तर धर्मवृद्धि हो, यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ राजा वैश्वदण को इस प्रकार अपने लिये धर्मवृद्धिका सूचक मुनिराजका बचन सुनकर यथार्थ धर्मके जाननेकी इच्छा प्रगट हो गई इसलिए प्रणामपूर्वक उसने मुनिराजसे यह निवेदन किया है ॥४१॥

भगवन् ! कीदूशो धर्मः केन साध्योऽस्य कि फलं । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवतः श्रीमुखादर्ह ॥४२॥
यथा नैशं तमोजातु विना सौर्यं न तश्यति । तथा भवद्वचोमानुं विना मे धर्मसंशयः ॥४३॥
तसो जगी मुनीद्रोडी तदभिप्रेतसिद्धये । एकाग्रचेतसा श्रीमन् ! कथ्यमातं कृषं शृणु ॥४४॥
धरत्यपारसंसारदुःखाद्विषयं योगिनः । मोक्षेऽनन्तसुखे राजन् स्ते धर्मं विद्धि तावतः ॥४५॥
तेन धर्मेण जायन्ते विविधा भोगसमूहः । चक्रवर्त्यासिसेव्या अत्रेवादभुतसौरुदाः ॥४६॥
परक्रेन्द्रपदं दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतं । अहमिद्रपदं चान्यदुर्लभं लभ्यते वृषात् ॥४७॥

भगवन् ! आपने जो मुझे धर्म वृद्धिरूप आशीर्वदि दिया है मैं नहीं समझता कि वह धर्म क्या है, कौन उसे प्राप्त कर सकता है और क्या उसका फल है ? इसलिये आपके हो श्रीमुखसे मुझे उस धर्मकी प्राप्तिके उपायोंकी और उसके फल जाननेकी इच्छा हुई है ॥४२॥ कृपानाथ ! जिस प्रकार रात्रिका प्रबल अंधकार विना सूर्यके प्रकाशके नष्ट नहीं होता उसी प्रकार मुझे भी धर्मके अन्दर जो संशय है अज्ञान अंधकार है, वह भी आपके बचनरूपी सूर्यके विना मिट नहीं सकता ॥४३॥ राजा वैश्वरणकी इस प्रकार उत्कट धर्म जिज्ञासा सुन मुनिराजने कहा—राजन् ! तुम्हारे अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि हो इसलिये मैं संक्षेपसे धर्मका व्याख्यान करता हूँ, तुम चित्तको एकाग्रकर ध्यानपूर्वक सुनो—

यह संसार अपार है और इसमें अगणित अनेक प्रकारका दुःख है । इस अगणित संसारके दुःखसे छुटाकर जो योगियोंको अनन्त सुखरूप मोक्षमें लेजाकर रक्खे अर्थात् परमानन्दमय सुखका रसास्वादन करावे उसीको हे राजन् ! वास्तविक धर्म कहा गया है ॥४४-४५॥ इस धर्मकी कृपासे जिनकी सेवा करनेमें बड़े-बड़े चक्रवर्ती आदि भी लड़े रहते हैं और इसी संसारमें आश्चर्यकारी उत्तमोत्तम सुखोंको प्रदान करते हैं ऐसे उत्तमोत्तम भोग और भाँति भाँतिको संपदायें प्राप्त होती हैं परभवमें जिसे समस्त देव मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं और जो दिव्यपद माना जाता है ऐसा वह इन्द्रपद भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है एवं अहमिद्र पद भी जो अत्यन्त दुर्लभ है—दूसरे उपायसे नहीं प्राप्त किया जा सकता वह भी इस पवित्र धर्मकी कृपासे सुलभ रूपसे प्राप्त हो जाता है ॥४६॥ धर्मात्मा लोग धर्मके द्वारा तीनों लोकके समस्त ऐश्वर्योंको पाकर परम्परासे मोक्षको प्राप्त करते हैं जिससे कि अविनाशी सुखकी प्राप्ति होती है । व्यवहार और निश्चयके भेदसे सम्यग्बर्जन सम्याज्ञान और सम्यक्चारित्र दो दो प्रकारके हैं । गृहस्थोंके व्यवहार सम्यग्बर्जन

धर्मेण धार्मिकाः सर्वाभ्युदयादिग्रभ्यरां । प्राप्य लोकत्रये पांति ह्यनन्तसुखदं शिवं ॥४८॥
 सम्यक्त्वज्ञानचारित्रत्रयेण साध्यतेऽपि सः । व्यवहाराभिधेनेव निश्चयेन च मंयते ॥४९॥
 श्रद्धाने सप्ततत्त्वानां जिनतद्वाक्ययोगिनः । निमंस्त्वेहंबुधाः प्राहृष्टव्यवहारास्यदशानं ॥५०॥
 तत्राद्य त्यक्तसदेहमर्गं निःशंकिनाभिधं । भोगकांक्षादिनिकांतं निःकांक्षितांगमेव हि ॥५१॥
 मुनिकाये घृणाभावमंगनिविच्छिकित्सितं । मूढत्वभावलोकाचारहीनोऽमूढताभिधः ॥५२॥
 सन्मार्गगितदोषस्याच्छादनं हथुपगूहनं । धर्मदिश्चलतां स्थापनं स्थितीकरणं गिरा ॥५३॥
 सधमर्णि महास्नेहवात्सत्यांगं सुनिर्मलं । जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशनं प्रभावना ॥५४॥

आदि होते हैं और निश्चय सम्यगदर्शन आदि संपर्मी मुनियोंके ही होते हैं । जिस धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह धर्म अथवार सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यक्चारित्रसे भी प्राप्त होता है और संयमी पुरुषोंको निश्चय सम्यगदर्शन और सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे प्राप्त होता है अर्थात् व्यवहार सम्यगदर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता है और निश्चय सम्यगदर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता है ॥४८-४९॥ व्यवहार सम्यगदर्शनादिका स्वरूप इस प्रकार है ।

जीव, अजीव, आलृव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हन सात तत्त्वोंका भगवान जिनेन्द्रियोंका उनके आगमका और उत्तम तपके भेदार गुरुओंका जो यथार्थ रूपसे श्रद्धान करना है उसे व्यवहार सम्यगदर्शन माना है इस सम्यगदर्शनके निःशंकितादि आठ अंग हैं और उनका स्वरूप यह है—जिन वचनमें किसी प्रकारकी शंका न करना निःशंकित अंग है । भोगोंके अन्दर आकांक्षा न रखना निःकांक्षित अंग है । मुनि आदिके शरीरमें रोगादिकके कारण दुर्योग उत्पन्न हो जाने पर भी किसी प्रकारको घृणाका न करना निविच्छिकित्सत अङ्ग है । लोकाचारके अन्दर जो भी मिथ्यादृष्टियोंके साथ मूढताका व्यवहार है उसका न होना अमूढर्दृष्ट नामका अङ्ग है । असमर्थ अज्ञानी मनुष्य भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित सन्मार्गमें यदि किसी प्रकारके दोष लगावें तो उन दोषोंको आच्छादित कर देना ढक देना, उपगूहन अंग है । किसी कारणवश कोई धर्मात्मा धर्मसे चलायमान हो जाय तो उन्हें कोमलवाणीसे समझा दृक्षाकर वा अन्य किसी उपायसे पुनः ज्योंका त्यों धर्ममें स्थिर कर देना स्थितीकरण अंग है । जैनधर्मके धारकोंमें अत्यन्त प्रेमका रखना वात्सल्य अंग है और किसी भी उत्तम उपायसे भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रगट करना आठवां अंग प्रभावना कहा जाता है ॥५०-५४॥ भगवान

समन्तभद्राचार्यने इन अंगोंका स्वरूप रत्नकरंडशावकाचारमें इस प्रकार कहा है—

‘भगवान् जिनेन्द्रने वस्तुका जो स्वरूप कहा है वह वहो है और उसी प्रकारका ही अन्य नहीं है और न अन्य प्रकारका है इस प्रकार निश्चल तीक्ष्ण खड़गकी धाराके समान जो समार्ग-श्रेष्ठ मार्ग में संशय रहित निश्चल रूपसे रुचिका होना है वह सम्यग्दर्शनका पहिला अंग निःशक्ति नामका है। कर्मोंकी क्षयोप-शमिक आदि अवस्थाओंके आधीन होनेके कारण जो सुख कर्माधीन है, विनाशीक है और सदा जिसका उदय दुःखसे मिश्रित है ऐसे पापके कारण सुखमें जो किसी प्रकारके विश्वासका न रखना है अर्थात् ऐहिक विषयवासना जनित सुखमें जो किसी प्रकार लालसा नहीं रखना है वह द्वितीय निःकांकित अंग है। रक्त मांस आदि निदित धातु-उपधातुओंका स्थान होनेसे स्वभावसे अपवित्र भी रत्नश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रसे पवित्र अथात् स्वभावसे निदित भी सम्यग्दर्शन आदिसे पवित्र मूलियोंके शरीरमें किसी प्रकारका घृणा न कर जो उनके गुणोंमें प्रीति करना है वह तीसरा निविच्छिकित्सित अंग है। मिथ्यामार्ग दुःखोंको देनेवाला है तथा उसके अनुशासी किसी प्रकारके उत्तम मार्गपर चलनेवाले नहीं इसलिये जब कभी उस मिथ्यामार्ग और मिथ्यमार्गपर चलनेवालोंकी प्रशंसाका अवसर प्राप्त हो उस समय अपनी ओरसे किसी प्रकारसे सम्मति नहीं देना न सम्बन्ध रखना और न उनके स्वकर्मामें आकर किसी प्रकारकी प्रशंसा करना चौथा अमूढ़दृष्टि अंग है। यद्यपि भगवान् जिनेन्द्र द्वारा बताया गया मार्ग स्वयं शुद्ध है तथापि अत्यन्त कठिन होनेसे धारण न कर सकनेके कारण यदि कोई अज्ञानी और असमर्थ पुरुष उसकी निन्दा कर बैठे तो किसी भी उपायसे उस निन्दाको दूर करना—निन्दा न होने देना, पाँचवा उपगूहन अंग है किसी भी तीव्र दुःख आदि कारणोंसे धर्मात्मा मनुष्योंकी परिणति सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्रसे चल विचल हो उठी हो और वे उनसे विमुख रहना चाहते हों तो वास्तविक जैन शास्त्रके ज्ञानियोंका जो फिर से उन धर्मात्माओं—

१. इदमेवेदूशमेव तत्त्वं नान्यन्तं जात्यथा । इत्यकर्णायत्ताभ्यावत् मार्गेऽमंशण रुचः ॥११॥
कर्मवर्खशे भासी दुःखैरन्तरितोदये । पापोऽग्ने नुखेऽनासथा श्रद्धानाकाषणा एषता ॥१२॥ रवभावतोऽगुच्छी
काये नस्त्रयवपविधिः । मित्रुप्सा गुणप्रीतिर्मता निविच्छिकित्सता ॥१३॥ काप्ये एष्य दुःखानां शास्त्रस्येऽय
सम्मतिः । असुराज्ञिरनुत्तीतिरमृदा व विष्वच्छने ॥१४॥

एते: सारे: पराष्टरैः सबलीभूतदर्शनं । हृति कर्मारिसन्तानं यथा भूपो बलान्वितः ॥५५॥
ज्ञानचारित्रयोमूलं दर्शनं भाषितं जिनैः । सोपानं प्रथमं मुक्तिधाम्नो बीजं वृषस्य च ॥५६॥
मुक्तिमार्गस्थमेवाहं तं मन्ये पुरुषोत्तमं । भोक्तारं त्रिगजस्त्वक्षम्याः स्वीकृतं येन दर्शनं ॥५७॥
महाधनी स एवात्र मतो दक्षैः परत्र च । अनध्यंदृष्टिसदृत्तं हृदि यस्य विराजते ॥५८॥

को सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके अन्दर दृढ़कर देना है वह छठा स्थितीकरण अंग है । अपने साधर्मी भाईयोंका जो हृदयमें उत्तम भाव रखकर निश्चलरूपसे यथायोग्य आदर सत्कार करना है वह सातवाँ वात्सल्य अंग है तथा संसारमें जो बहुलरूपसे अज्ञान अन्धकार फैल रहा है उसे यथायोग्य किसी न किसी उपायसे दूरकर जो भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रकट करना है वह प्रभावना अङ्ग कहा जाता है । इन आठ अंगोंके पालक अंजन चोर आदि महापुरुषोंने अनुपम फल प्राप्त किया है और इन अङ्गोंका माहात्म्य वर्णन करते-करते यहाँ तक कहा गया है कि जिस प्रकार एक भी अक्षरकी कमी रखनेवाला मंत्र विषको वेदनाको दूर नहीं कर सकता उसी प्रकार इन आठ अङ्गोंमें एक भी अङ्गसे रहित सम्यग्दर्शन भी जन्मकी संततिको नष्ट नहीं कर सकता ।

प्रन्थकार सम्यग्दर्शनकी महिमा दिखाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बलवान राजा शत्रुओंके समूहको भी देखते २ ही तितर-वितरफर नष्ट कर देता है उसी प्रकार सारभूत और उत्कृष्ट जिन आठ अंगोंका ऊपर वर्णन किया गया है उनसे युक्त सम्यग्दर्शन जिस समय बलवान हो जाता है उस समय वह क्षण भरमें कर्म रूप वैरियोंको जड़से उखाड़कर दूर फेंक देता है ॥ ५५ ॥ भगवान जिनेन्द्रने सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका मूल कारण सम्यग्दर्शनको ही कहा है क्योंकि बिना सम्यग्दर्शनके वे मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र माने जाते हैं तथा सम्यग्दर्शनको ही मोक्षरूपी अनुपम महलकी पहिली सीढ़ी और धर्मका बीज बतलाया है । प्रन्थकार सम्यग्दर्शनके लिए यहाँ तक अपने पवित्र भाव प्रगट करते हैं कि जिस महानुभाव

स्वर्यं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाथयां । वाच्यतां यत्प्रमाणेति तद्वदेयुपगृहन् ॥१५॥ दर्शनाभ्यरणा-
द्वापि चलतां धर्मवत्सर्वैः । प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञः स्थितीकरणमुच्यते ॥१६॥ स्वयूष्यान् प्रति सद्भावसनाथा-
पेतकैतवा । प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलम्पते ॥१७॥ अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथं । जिनशासन-
माहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

केवल धनमत्रैव सुखे दुःखं ददात्यहो । सम्यक्‌चित्मणिविवक्षुलं लोकश्चये सतां ॥ ५९॥
 सम्यक्त्वान्नापरो बन्धुः स्वामी * इवद्वितीकरः । स्वर्गमुक्तिकरः पुंसां पापधनश्च वृषप्रदः ॥ ६०॥
 मत्वेत्यादो तदादेयं मुक्तिरामावशीकरं । हत्वा मिथ्यारिसंतानं तीर्थशादिविभूतिर्द ॥ ६१॥
 याथातथपरिज्ञानं तस्वार्थगमयोगिनां । दैवादेवं च तज्जानं व्यवहारसमाहृत्य ॥ ६२॥
 व्यजनोजितनामा स शुद्धाक्षरनिरूपकः । द्वितीयोऽर्थसमग्राख्यः शुद्धार्थप्रतिपादकः ॥ ६३॥
 शब्दार्थोभियपूर्णस्थिः शब्दार्थोभियसूचकः । कालाध्ययनमन्नोऽखिलकालाध्ययनातिगः ॥ ६४॥
 पठनं तपसा यत्स उपाध्यानसमृद्धकः । विनयेनात्र यः पाठो विनयो मुद्रितो हि सः ॥ ६५॥
 ख्यापनं यः स्वगुवदिः स गुर्वाद्यतपत्त्वं । बहुमानसमृद्धाख्यो तुतिपूजादिर्भयुतः ॥ ६६॥

पुरुषने सम्यगदर्शनको प्राप्त कर लिया है वहो पुरुष मोक्षमार्गमें स्थित है और वही तीन लोककी लक्ष्मीका भोगनेवाला है ऐसा में मानता हूँ तथा जिस महापुरुषके हृदयमें अमूल्य सम्यगदर्शनरूपी रत्न विराजमान है वही महानुभाव इस लोक और परलोकमें विद्वानोंकी दुष्टिमें महा धनवान है । उससे बढ़कर अन्य कोई धनदान नहीं ॥ ५६-५८ ॥ अब तो केवल इसी लोकमें सुख और दुःखका बेनेवाला है परन्तु सम्यगदर्शनरूपी चित्तामणि रत्न ऐसा है जिससे तीनों लोकमें सुख हो सुख मिलता है । सम्यगदर्शनसे भिन्न न तो कोई संसारमें बन्धु है और न सदा हित करने वाला स्वामी है क्योंकि यह सम्यगदर्शन जीवोंको स्वर्ग और मोक्षके सुखोंका प्रदान करनेवाला है समस्त पापोंका जड़से नाश करनेवाला और धर्मको प्राप्त करनेवाला है ॥ ५९-६० ॥ इसलिये ग्रन्थकार इस बातपर जोर देते हैं कि जीवोंको चाहिये कि ऐसे परम उपकारी और सर्वदा हितकारी सम्यगदर्शनकी सबसे पहिले प्राप्ति करें क्योंकि इस सम्यगदर्शनकी सामर्थ से मुक्तिरूपी लक्ष्मी वश हो जाती है तथा मिथ्यात्वकी संतानको जड़से उखाड़कर यही सम्यगदर्शन तीर्थकर आदिको अनुपम विभूतिको प्रदान करता है ।

जिस ज्ञानके द्वारा जीव आदि पवार्थ, आगम और मुहूर्ओंका यथार्थ रूपसे जानना होता है तथा यह देव है और यह कुदेव है इस बातकी भी अच्छी तरह पहचान होती है वह व्यवहार नामका सम्यगज्ञान है तथा + व्यञ्जनोजित १ अर्थसमग्र २

* सम्यगज्ञान पूजामें इन आठों आचारोंका भिन्न २ रूपसे अर्थ कहा गया है । वनमानमें यह पूजा प्रचलित है इसलिये यहाँ वह उद्धृत नहीं की गई है ।

एतेश्चाष्टविधाचारैद्यज्ञनं पठयते बुधैः । ज्ञानाचारः स निर्दिष्टो विश्वदीपः शिष्यप्रदः ॥६७॥
ज्ञानेन ज्ञायते विष्वं सर्वं तत्त्वं हिताहितं । हेयाहेयौ च बधो मोक्षी धर्मो दुरितं पर ॥६८॥
कृत्याकृत्यं स्वरूपं च गुरुदेव श्रुतात्मनां । पात्रापात्रदिसद्वानं कुदानं स्वच्छिदात्मकः ॥६९॥
ज्ञानं नेत्रं जिनैः प्रोक्तं लोकालोकविलोकने । बाह्याभ्यन्तरतत्त्वादो तद्वोनोऽत्रांध एव हि ॥७०॥

शब्दार्थोभयपूर्ण ३ कालाध्ययन ४ उपाध्यानसमृद्धुक ५ विनय ६ गुर्वाच्चिनपल्लव ७
और बहुमानसमृद्धुक ८ ये आठ प्रकारके आचार माने हैं । जहांपर शुद्ध अक्षरोंका
निरूपण है वह अंजनोर्जित नामका आचार माना है । जहांपर शुद्ध अर्थका प्रति-
पादन हो वह अर्थसमग्र नामका आचार है जहांपर शब्द और अर्थ दोनोंका सुचन
हो वह शब्दार्थोभयपूर्ण नामका आचार है । जहांपर समस्त काल अध्ययनकी मनाई
हो, अर्थात्—जहांपर नियत समयमें अध्ययनका प्रतिपादन हो वह कालाध्ययन
नामका आचार है । जहांपर तप आचरणके साय-साय अध्ययनका विधान हो वह
उपाध्यानसमृद्धुक नामका आचार है । जहांपर विनयपूर्वक पाठका पढ़ना हो वह
विनय नामका आचार है । जहांपर अपने गुरु आदिकी कीर्तिका गान किया जाय वह
गुर्वाच्चिनपल्लव नामका आचार है और जहांपर गुरु आदिकी स्तुति और पूजा आदिका
समारोह हो वह बहुमानसमृद्धुक नामका आठवाँ आचार भेद है । विहानोंके द्वारा
इन आठ प्रकारके आचारोंके साथ जो ज्ञान पढ़ा जाय वह ज्ञानाचार कहा जाता है
यह ज्ञानाचार समस्त संसारका प्रकाश करनेवाला वीपक है और मोक्षका प्रवान
करनेवाला है ॥ ६२-६७ ॥ इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही समस्त संसारका ज्ञान होता
है । कौन तत्त्व हितकारी है और कौन अहितकारी है यह पता भी इसी ज्ञानसे
लगता है । यह पदार्थ त्यागने योग्य है और यह पदार्थ नहीं त्यागने योग्य है यह बात
भी ज्ञान हो बतलाता है तथा यह बन्ध तत्त्व है यह मोक्ष तत्त्व है यह धर्म है यह
पाप है यह कृत्य है यह अकृत्य है । देव गुरु और शास्त्रका स्वरूप यह है । पात्रको
दान देना सम्यग्ज्ञान कहा जाता और कुपाश्रको दान देना कुदान कहलाता है तथा
आत्माका स्वरूप चैतन्य है यह सब बात भी सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही प्रगट होती
है ॥ ६८-६९ ॥ भगवान् जिनेन्द्रने लोक और अलोकके देखनेमें बाह्य अन्तरंग
तत्त्वोंके परखनेके लिये ज्ञानको ही नेत्र कहा है जिसके यह ज्ञानरूपी नेत्र नहीं है वह
इस संसारमें सर्वथा अन्धा ही है—केवल आंखोंके रहते वह सूझता नहीं कहा जा

ज्ञानजालं परं ज्ञेयं पञ्चाक्षमस्यवृन्धने । ज्ञानसिहो भवत्येव कामदतिविधातने ॥७१॥
ज्ञानपाशो दृढो तृणां मनोमर्कटरुधने । ज्ञानमादित्य एवाखिलज्ञानधारातताशने ॥७२॥
यत्कर्मं भुज्यते विद्विरज्जीम्बन्धनं गृष्ण शुभं । वृद्धने कर्मणात्राज्ञो विदः स्थात् कर्मनिर्जरा ॥७३॥
यत्कर्मं क्षपयत्यज्ञास्तपसा भवकोटिभिः । ज्ञानी तच्च क्षणार्थेन त्रिगुप्तात्मा संस्वरः ॥७४॥
ज्ञानमन्त्रसमाकृष्टा ददात्यालिगनं सतां । स्वयमागत्य मुक्तिश्ची का कथा देवयोषितां ॥७५॥
मत्वैवं ज्ञानमाराध्यं प्रत्यहं जिनभाषितं । निःप्रमादेन यन्त्रेण विनयादिभुमुक्तुभिः ॥७६॥

सकता ॥ ७० ॥ मछलियोंके बांधनेके लिए जिस प्रकार जाल रहता है उसी प्रकार स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियों मछलियाँ हैं और उनके बांधनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान जाल है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंका दमन सिवाय सम्यग्ज्ञानके द्वासरेसे नहीं हो सकता तथा जिस प्रकार हाथियोंके विधात करनेके लिए सिह समर्थ होता है उसी प्रकार कामरुद्धी मदोन्मत्त हाथीको सर्वथा नष्ट करनेवाला यह सम्यग्ज्ञान ही बलवान सिह है ॥७१॥ यह संसारी जीवोंका मन बन्दरके समान अत्यन्त चंचल है अर्थात् बन्दरकी जिस प्रकार प्रतिक्षण किया होती रहती है उसी प्रकार इस मनको भी प्रतिक्षण किया होती रहती है और उससे निरंतर कर्मबंध होता रहता है उस मनरूपी बन्दरके बांधनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान पाश है तथा जिस प्रकार सूर्य समस्त अन्धकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार समस्त अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट करनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान भी प्रखर सूर्य है ॥ ७२ ॥ मूलमें शुभ और अशुभके भेदसे कर्म दो प्रकारका माना है उसके फलका भोग ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि समानरूपसे भोग करनेपर भी अज्ञानीके तो कर्मोंका बन्ध होता है और ज्ञानी के कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा और भी विलक्षण बात यह है कि तीव्र तप तपनेपर भी जिस कर्मको अज्ञानी जीव करोड़ों भवमें खपा सकता है उसे मनोगुणित ब्रह्मगुणित और कायगुणितरूप तीनों गुणियोंका धारक एवं संवरसे भूषित ज्ञानी जीव आधे ही क्षणमें मूलसे उखाड़कर फेंक देता है ॥ ७३-७४ ॥ अन्यकार सम्यग्ज्ञानको सर्वोच्च प्रशंसा करते हुये कहते हैं—कि यह सम्यग्ज्ञान ऐसा अनुपम मन्त्र है कि इसके द्वारा खींची गई मोक्षस्त्री भी आपसे आप आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंकी प्राप्ति ही जाना यह तो बहुत ही सुलभ बात है इसलिये सम्यग्ज्ञान तत्त्व हमारा परम कल्याणकारी है ऐसा अच्छी तरह जानकर

हिंसादिकृत्स्नसावद्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । त्यज्यते यत्सुचारित्र व्यवहाराख्यमंजसा ॥७७॥
 विश्वांगिरक्षकं द्वाच्चमहिंसाख्यमहाव्रतं । निवृत्तिरनृतादेव्या तत्सात्याख्यमहाव्रतं ॥७८॥
 विरतिर्यत्रचौषधिस्तदस्तेयमहाव्रतं । सर्वनारीनिराकाङ्क्षं ब्रह्मचर्यमहाव्रतं ॥७९॥
 सर्वसंगपरित्यागमाकिञ्चन्यमहाव्रतं । विश्वसंकल्पहीनाद्याऽन्नं मनोगुप्तिरद्भूता ॥८०॥
 शशवन्मोनकरा सारा वागुप्तिः संवरप्रदा । शरोरविकिञ्चाहोना कायागुप्तिरथांतिका ॥८१॥
 पदान्वेषणसंजाता । ईयसिमितिरद्भूता । निरवद्यगिरोद्भूता भाषा समितिरेवहि ॥८२॥
 एषनासमितिः । सर्वंहृताद्याहारवर्जिता । अन्तराथातिगा षट्चत्वारिंशद्वौषनिर्गता ॥८३॥

जो महानुभाव मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्त करनेको पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे निःप्रमादरूप यन्त्रसे अर्थात् किसी प्रकारका मनमें प्रमाद न रखकर भगवान् जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित विनय आदि रूप ज्ञानका प्रतिदिन आराधन करे, कभी भी उसे चित्तसे न विसारें ॥ ७६ ॥

मन वचन कायकी क्रियाओंके द्वारा जो हिंसादि समस्त पापोंका त्यागकर देना है वह व्यवहार चारित्र कहा जाता है । हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप हैं और इन पांचों पापोंका त्याग अहिंसा आदि व्रत कहे जाते हैं । उन अहिंसा आदि व्रतोंका स्वरूप इस प्रकार है—

समस्त जीवोंकी रक्षा करना अहिंसा महाव्रत कहा जाता है । झूठ आदिका त्याग करना सत्यमहाव्रत है । चोरी आदिका सर्वथा त्याग अस्त्रौर्य महाव्रत है । स्वस्त्री परस्त्री आदि समस्त स्त्रियोंका सर्वथा त्यागकर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है और बाह्य अभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा नाशकर देना आकिञ्चन्य—निष्परिग्रह महाव्रत है । गुप्तिका अर्थ रक्षा करना है और वह मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिके भेदसे तीन प्रकारको है । किसी भी पदार्थमें अच्छे बुरे संकल्पोंका होना मनका विषय है जहाँपर समस्त संकल्प विकल्पोंका त्याग हो वह मनोगुप्ति है । सदा मौन रखना वचनगुप्ति है इसको पालन करनेसे संवरकी प्राप्ति होती है तथा शरीरकी समस्त क्रियाओंका अभाव हो जाना अन्तकी कायगुप्ति है ॥ ७७-८१ ॥ जूरा प्रमाण जमीनको शोधकर चलना ईयसिमिति है । निर्दोष हितकारी और परमित वचन बोलना भाषासमिति है । जहाँपर कृत कारित और अनुमोदनासे किए गए आहारका त्याग है आहारमें आनेवाले अन्तरायोंका टालना है और उद्गम आदि छचालिस ४६ दोषोंका

क्रियते यच्छुभादाननिक्षेपं प्रतिलेख्य सा । दयया दाननिक्षेपणात्मा समितिरंजसा ॥८४॥
निरोध्य नयनाभ्यां यन्मलमूत्रादिकोज्ज्ञानं । किषीयते प्रतिष्ठापनात्मा सा समितिवर्णा ॥८५॥
त्रयोदशविधं होदं चारित्रं मुक्तिमुक्तिदं । महाधर्माकरं निश्चयरत्नत्रयकारणं ॥८६॥
सयमेन विनोल्कुष्टी (ष्टे) सम्यग्ज्ञानी (ने) क्षमो (मे) सतां । तदातुं नैव मुक्तिश्री कथं न श्लाघ्यतेऽन् सः ८७
वरं मुहूर्तमेकं हि जीवितं चरणान्वितं । तद्वोनं च वृथा वर्षकोटीकोल्यादिजीवितं ॥८८॥
दृढ़ब्रतात्मनां कर्म प्रणव्यति पुरातनं । प्रतिक्षणं तवं नैव यात्यतो मुक्तिसंगमं ॥८९॥
बृतसिहासनामीनं ह्यहो शक्तयो यदि । तमनि मेवका वाङ्मो माहात्म्यं वर्णतेऽन् कि ॥९०॥

रहितपना है वह एषणा समिति है । पुस्तक पीछी कमंडलु आदिका व्यापूर्वक अच्छी तरह देखभालकर ग्रहण करना और रखना आदान निक्षेपण समिति है और नेत्रोंसे अच्छी तरह देख भालकर जमीनपर मल मूत्र आदिका क्षेपण करना प्रतिष्ठापन नामकी समिति है इसका दूसरा नाम उसमें भी है । पाँच महाब्रत तीन गुणि और पाँच समिति इस प्रकार यह तेरह प्रकारका चारित्र संसारके समस्त भोगोंको प्रदानकर अन्तमें मोक्ष सुख प्रदान करनेवाला है । परम धर्मका कार है और निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयका साधक है । इस सम्यक्चारित्र के बिना सम्यादर्शन और सम्यज्ञानके अन्वर यह सामर्थ्यं नहीं कि वे मोक्षको प्राप्त करा सकें इसलिये सम्यक्चारित्रकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है ॥ ८२-८७ ॥ ग्रन्थकार सम्यक्चारित्रकी वास्तविक प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सम्यक्चारित्रसे युक्त हो एक मुहूर्त ही जीवित रहना अच्छा, परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्षपर्यंत भी जीवित रहना अच्छा नहीं । अर्थात् सम्यक्चारित्रके द्वारा ही जीवनकी सफलता नहीं हो सकतो इसलिये जीवनकी सफलता बनानेके लिये सम्यक्चारित्रसहित मुहूर्तमात्र भी जीवन अच्छा परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्ष तक भी जीता रहना अच्छा नहीं ॥८८॥ जो महात्मा वृढ़ब्रतात्मा हैं अर्थात् जिनकी आत्मा सम्यक्चारित्रके अन्वर दृढ़ हैं उन महानुभावोंका जो कर्म पुरातन है अर्थात् पहिलेसे आत्माके साथ बन्धको प्राप्त है वह हर एक क्षणमें नष्ट होता चला जाता है और उस महापुरुषकी आत्माके साथ नवीन कर्मोंका बंध भी नहीं होता इसलिये धीरे-धीरे समस्त कर्मोंके नष्ट हो जानेसे उन्हें बहुत जल्दी मोक्षलक्ष्मीका समागम प्राप्त हो जाता है ॥

जो महानुभाव चारित्ररूपी सिहासनपर विराजमान है अर्थात् दृढ़रूपसे सम्यक्चारित्रको पालता है उसे बड़े-बड़े इन्द्र आदि भी सेवककी तरह आकर नमस्कार

सर्वद्वंद्वपरित्यक्तं निश्चितवृत्तरत्नमान् । यथेह लभते सौर्यं स्वात्मजं संहयवर्जितं ॥९१॥
 नमस्कारं च पूजां च सन्मानं लोकत्रये । तथाऽमृत्र महाशम्भुं स्वर्गमुक्तचादिको ध्रुवं ॥९२॥
 इदं रत्नत्रयं पूर्सा विश्वाभ्युदयवारिदं । अनन्तपुण्यसन्तानकाणं सुखसागरं ॥९३॥
 सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं सुखं बाचागोचरं । भूकृत्वा मोक्षं प्रयात्येव रत्नत्रयभूषितः ॥९४॥
 ज्ञात्वेति संविधेहि त्वं दृष्टिहारं हृति दृतं । जानकुण्डलयुगमं च कण्ठयोः स्वस्य हे सुहृत् ! ॥९५॥
 बृत्तशोखरमुत्तुंगा मुक्तिस्त्रीबशहेतवे । संचयं च तपोलक्षण्या निर्भैलस्वं निजात्मनः ॥९६॥

करते हैं फिर इस सम्यक्चारित्रका जितना भी बर्णन किया जाय थोड़ा है ॥९०॥
 जो पुरुष निश्चितरूपसे चारित्ररूपी रत्नका धारण करनेवाला है वह इसी संसारमें
 सर्वप्रकारके द्वंद्वोंसे रहित, अपनी आत्मासे जायमान अगणित सुखका लाभ करता है
 अर्धे मध्य और पाताल लोकके लोग आकर उसे नमस्कार करते हैं उसकी पूजा
 अभ्यर्थना करते हैं और अत्यन्त सन्मानकी दृष्टिसे देखते हैं । तथा उस सम्यक्चारित्र-
 को पालन करनेवाले पुरुषोंको परभवमें भी महाकल्याणका कर्ता स्वर्गं मोक्षं आदिका
 सुख निश्चयसे प्राप्त होता है ॥९१-९२॥ इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूपसे सम्यगदर्शन
 आदिका स्वरूप और प्रयोजन बतलाकर ग्रन्थकार अब सामान्यरूपसे रत्नत्रयकी
 प्रशंसा करते हैं कि यह परमात्मन रत्नत्रय जीवोंको समस्त प्रकारके कल्याणरूपी
 कलोंका प्रदान करनेवाला है । अन्तातीत पुण्यकी परंपराका कारण है और इस रत्न-
 त्रयको पालन करनेवाले पुरुषोंको अविनाशी सुखसागरमें मरन हेतेका अवसर प्राप्त
 होता है । इसे अनुपम चमत्कारके धारक रत्नत्रयसे जिनकी आत्मा विभूषित है वे
 दचनसे न कहे जानेवाले सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सुखका अच्छी तरह रसास्वादनकर अन्तमें
 अचित्य अविनाशी मोक्ष सुखको प्राप्त करते हैं इसलिये ग्रन्थकार यह तात्त्विक उप-
 देश देते हैं कि भो मोक्षाभिलाषी जीवो ! इस प्रकार रत्नत्रयकी सर्वाच्च महिमा
 जानकर तुम्हें चाहिये कि तुम सम्यगदर्शनरूपी हारको शीघ्र ही अपने हृदयमें धारण
 करो, ज्ञानरूपी कुण्डलोंको अपने दोनों कानोंमें पहिनो और चारित्ररूपी मुकुटको
 अपने मस्तकपर धारण करो क्योंकि ये सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप
 तीनों रत्न ही मोक्षरूपी स्त्रोंके बश करनेमें कारण हैं अर्थात् इसी अद्भुत रत्नत्रयकी
 कृपासे मोक्षरूपी लक्ष्मी बश होती है इसी रत्नत्रयकी कृपासे तपरूप लक्ष्मीका भी
 संचय होता है एवं ताना प्रकारके कर्मभलोंसे मलिन आत्माका निर्भैलपना भी इसी
 रत्नत्रयके ह्वारा होता है । जिस महानुभाव पुरुषके पास सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान

यतोऽत्रेतेर्महाद् योऽलंकृतो मुक्तशंगना स्वयं । अत्यासक्ता वृणोत्येव तं दुर्घ स्त्रीव नान्यथा ॥ ९७ ॥
गता मोक्षं च ये केचिदांति यास्यन्ति भूतले । आराध्य केवल तेऽश्च भव्या रत्नत्रयं तपः ॥ ९८ ॥
तुच्छवीर्योऽपि लोकेत्ज्ञी रत्नश्रितयमदितः । यास्यत्येव क्रमान्मोक्षं तद्वीनः सबलोऽपि नः ॥ ९९ ॥
एतत् समयसर्वस्वमेतत् सिद्धांतजोवितं । एतन्मोक्षतरोर्बीजं ह्येतन्मार्गं शिवालये ॥ १०० ॥
मत्केत्यादी तराधीश ! गृहाण धर्मसिद्धये । इदं रत्नत्रयं सारं पश्चान्निश्चयसत्त्वकम् ॥ १०१ ॥

सम्यक्चारित्ररूपी निर्बल अलंकार मौजूद है उसी ज्ञानवान् महानुभावपर मोक्षरूपी स्त्री स्वयं आकर रीझती है एवं जिस प्रकार कोई खास स्त्री खास पुरुषको वरती है उसी प्रकार मुक्ति स्त्री भी उसे स्वयं आकर वरती है । किन्तु जिनके पास यह अनुपम रत्नत्रय नहीं वे कितना भी प्रयत्न करें मोक्षरूपी स्त्री उनकी ओर ताककर भी नहीं देखती ॥ ९७ ॥ आजतक जिन महानुभावोंने मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया है और अनादि अनन्त संसारमें आगे जाकर उसे प्राप्त करेंगे वह केवल इसी रत्नरूपी तपकी आराधनाका कल है—रत्नत्रयरूप तपके आचरणसे ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हो जाती है ॥ ९८ ॥ आत्मार्थी हात लातान है जिस प्रकार निर्बल भी धनवान् पुरुषपर स्त्री आसक्त हो जाती है उस प्रकार ललवान् होनेपर भी निर्धन पुरुषपर वह नहीं रीझती उसी प्रकार कोई जीव कितना भी निर्बल क्यों न हो यदि वह सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयसे विभूषित है—सम्यग्दर्शन आदि रत्न उसके पास है तो वह नियमसे क्रमसे मोक्षको प्राप्त करता है किन्तु जो पुरुष उक्त रत्नोंसे रहित है वह कितना भी विशिष्ट बलवान् क्यों न हो मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ९९ ॥ समय शब्दका अर्थ आत्मा भी है और शास्त्र भी है और ग्रन्थकार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह रत्नत्रय ही आत्मा वा शास्त्रका सर्वस्व है अर्थात् आत्माका सारभाग रत्नत्रय ही है क्योंकि कर्मरहित अवस्थामें स्वरूपमें लोन होता हुआ आत्मा रत्नत्रयके अन्दर ही आकर लीन होता है तथा शास्त्रका सारभाग भी रत्नत्रय है क्योंकि जिस शास्त्रमें रत्नत्रयका वर्णन है वही शास्त्र सुशास्त्र है किन्तु जिसमें रत्नत्रयका वर्णन नहीं वह शास्त्र नहीं कुशास्त्र है तथा यही रत्नत्रय सिद्धान्तका प्राण है क्योंकि सिद्धान्तका अर्थ शास्त्रका निचोड़ भाग है जो निचोड़ भाग रत्नत्रयस्वरूप न हो वह सिद्धान्त नहीं हो सकता । तथा यह रत्नत्रय ही मोक्षरूपी वृक्षका उत्पन्न करनेवाला बीज है और मोक्षस्थानमें ले जानेवाला रत्नत्रय ही उत्तम मार्ग है । इस प्रकार व्यवहार रत्नत्रयका संक्षेपसे स्वरूप वर्णन कर राजा बैश्वणसे मुनिराज सुगृप्तने कहा—हे राजन् ।

शृणु भूप ! प्रवक्ष्येऽहं साक्षान्मुक्तिमिवधनं । कृत्स्नकर्मादिनिर्मुक्तं दृगादित्रयमूल्तम् ॥१०२॥
 एवं लोकत्रयोनाथो ह्यनन्तगुणसागरः । ध्यानगम्यो निजात्मास्ति सिद्धसादृश्य एव हि ॥१०३॥
 एवं या क्रियते शद्भास्यन्तरे परमात्मनि । दर्शनं निश्चयाख्यं तत् परं मुक्तिवशीकरम् ॥१०४॥
 ज्ञानमूर्ति परात्मानं लोकालोकविभासकम् । मुक्त्वा त विद्यते ज्ञानमन्यमत्वेति धीष्ठनैः ॥१०५॥
 क्रियते यत्परिज्ञानं स्वसंवेदनचिदात्मनः । केवलज्ञानसंकर्तुं तज्ज्ञानं निश्चयाभिर्ष ॥१०६॥
 वृत्तरूपोऽयमात्मास्ति निष्क्रियोऽतिनिरजनः । कर्मस्त्रिवपरित्यक्तो विदित्वाऽत्रेति निश्चयात् ॥१०७॥
 अन्तरगे स्वयं स्वस्य यदाचरणमजसा । ध्यानेन क्रियते तस्मिन्निश्चयचारित्रमद्भुतं ॥१०८॥

ऊपर कही गई रीतिके अनुसार व्यवहार रत्नत्रयका स्वरूप अच्छी तरह समझकर तुम्हें परम धर्मकी सिद्धिके अदृश्य इस रत्नत्रयको धारण पारना चाहिये क्योंकि यह व्यवहार रत्नत्रय भी संसारमें सार पदार्थ हैं तथा इस व्यवहार रत्नत्रयको पूर्णताके बाद निश्चय रत्नत्रय धारण करना चाहिये । अब हे नरनाथ ! मैं निश्चय रत्नत्रयका भी स्वरूप वर्णन करता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—क्योंकि यह सम्यगदर्शन आदि निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्षका कारण है समस्त कर्म आदिको मूलसे उखाड़कर नष्ट करनेवाला है और परम उत्तम है ॥ १००-१०२ ॥

अपना निजी आत्मा ही तीन लोकका नाथ है । अनन्त अविनाशी गुणोंका समुद्र है । ध्यान मार्गसे उसका स्वरूप जाना जाता है एवं जिस प्रकार समस्त कर्मोंसे रहित सिद्धोंका स्वरूप शुद्ध है उसी प्रकार हमारी आत्मा भी शुद्ध है इस प्रकार अपने अन्तरंग परमात्मामें जो शद्भान होना है वह निश्चय सम्यगदर्शन है । यह निश्चय सम्यगदर्शन परम उत्कृष्ट है और भोक्षलक्ष्मीका संगम करने वाला है ॥ १०३-१०४ ॥ परमात्मा उत्कृष्ट आत्मा ज्ञानस्वरूप है और वह लोक एवं अलोकके समस्त पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला है इस उत्कृष्ट आत्माको छोड़कर ज्ञान कोई पदार्थ नहीं किन्तु वह उत्कृष्ट आत्मा ही ज्ञान है ऐसा विचारकर जो स्वसंवेदन स्वरूप आत्माका ज्ञान करना है वही निश्चय सम्यगज्ञान है एवं यह निश्चय सम्यगज्ञान केवलज्ञानको प्राप्त करनेवाला है ॥ १०५-१०६ ॥ यह निजात्मा सम्यक्चारित्र-स्वरूप है । हलन-चलन आदि क्रियासे रहित होनेके कारण स्वभावसे ही निष्क्रिय है । कर्मजनित कालिमासे रहित होनेसे निरंजन है और कर्मोंके आदागमनसे रहित है । ऐसा वास्तविक रूपसे जानकर अन्तरंगमें ध्यानके द्वारा जो स्थर्यं अपना आचरण करना है वह परमाश्र्वर्यकारी निश्चयचारित्र माना गया है ॥ १०७-१०८ ॥ ग्रन्थ-

इदं रत्नत्रयं बाहुक्रियाचित्तातिदूरणं । सर्वरागादिहोनं तद् भवतिबर्णिकारणं ॥१०९॥
बीतराग मुनीद्राणां जायते अन्तशर्मदं । ध्यानगम्य महानध्यं रागिणां न कदाचन ॥११०॥
अस्यात्राराधनेनैव धातिकर्माणि धीमतां । प्रणश्यति धणाधैनतमांसि भानुना यथा ॥१११॥
परात्मध्यानयोगेनैदं संपूर्णेषु लभ्यते । तस्मात्तद्यिनो ध्यायंतु चिदात्मानमंजसा ॥११२॥
यतो ध्यानाग्निना शीघ्रमन्तकर्मराशयः । भस्मीभावं प्रयत्न्याशु काष्ठानि च यथाग्निना ॥११३॥
तस्माद् भूप ! त्रिवा चेदं सुरत्नत्रयसेवनं । स्वीकुरु ध्यानयुक्तं त्वं हत्वा मोहमहाभट्टं ॥११४॥

इति निरूपमध्यमर्माराममूलं सुखाविधे दुरिततिमिरभानुं दुःखदावाग्निमेषं ।

रहितसकलदोषं भव्यसेव्यं सुरत्नत्रितयमसममार्या आचरन्तु प्रयत्नात् ॥११५॥

कार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस रत्नत्रयका ऊपर बर्णन किया गया है वह रत्नत्रय बाहु क्रियाओंकी चिन्ता आदिसे रहित है अर्थात् जबतक चिन्तमें बाहु क्रियाओंकी चिन्ताका समावेश रहेगा तबतक कभी भी रत्नत्रयका पालन नहीं हो सकता । समस्त प्रकारके राग आदि भावोंसे रहित है और जिस भवमें रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई उसी भवमें वह मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥१०९॥ यह निदच्य रत्नत्रय अनंत कल्याणका प्रदान करनेवाला है । ध्यानके द्वारा जाना जाता है । महान् अमूल्य है और बीतरागों भुनियोंके ही होता है रागियोंके कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥११०॥ जिस प्रकार सूर्यके उदयसे गाढ़ अन्धकार भी छणभरमें तितर-वितर होकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस संसारमें रत्नत्रयके आराधन करनेसे योगियोंके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय नामक चार धातिया कर्म भी क्षण-मात्रमें नष्ट हो जाते हैं ॥१११॥ जो महानुभाव उत्कृष्ट आत्मा परमात्माका ध्यान धरते हैं उन सबको यह पवित्र रत्नत्रय प्राप्त होता है इसलिए जो पुरुष इस परम हितकारी रत्नत्रयके बाल्छिक हैं उन्हें चाहिये कि अवश्य चैतन्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करें । क्योंकि जिस प्रकार अग्निकी तीव्र ज्वालासे अग्नित भी काष्ठ देखते-देखते राख हो जाता है उसी प्रकार ध्यानरूपा अग्नि से अनन्ते भी कर्मपिङ्ड देखते-देखते भस्म हो जाते हैं इसलिये हे राजन् ! तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि तुम मोहरूपी महायोधाको नष्टकर चैतन्यस्वरूप आत्माके ध्यानके साथ व्यवहार और निदच्यके भेदसे जो दो प्रकारका रत्नत्रय ऊपर बतलाया है उसका अवश्य सेवन करो, बिना उसका सेवन किए कभी भी संसारसे उद्धार नहीं हो सकता है ॥११२-११४॥

इस प्रकार परिच्छेदके अन्तमें ग्रन्थकार प्रेरणा करते हैं कि हे आयों ! मोक्षा-

सर्वानिर्भरं परायजनकं स्वर्मुक्तहेतुपरमतातीतगुणाणीं भवमयप्रध्वंसकं प्रत्यहं ।
विश्वासैकनिवंधनं जितपतिश्रीमलिलनाथं भजे वंदे तदगतिहेतये च परमं मूर्धा सुरतनत्रयं ॥१६॥

भिलाषी सज्जनों ! तुम्हें अवश्य प्रयत्नपूर्वक रत्नत्रयका आराधन करना चाहिये क्योंकि यह रत्नत्रय निःपम पदार्थ है कोई भी पदार्थ संसारमें इसकी तुलना नहीं कर सकता । धर्मरूपी मनोहर बगोचेका उत्पादक कारण है क्योंकि रत्नत्रयके सेवनसे ही धर्मरूपी आराम फलता फूलता है जिस प्रकारका अन्धकार मैटनेवाला सूर्य है उसी प्रकार यह रत्नत्रय भी पापरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिए सूर्य समान है । दावानलको जिस प्रकार मेघ शान्त कर देता है उसी प्रकार यह रत्नत्रय दुःखरूपी दावानलको बुझानेवाला है । समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित निर्दोष है । मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा इसकी सेवा करते हैं एवं असाधारण है हर एकको प्राप्त नहीं हो सकता । मैं भगवान मलिलनाथको मस्तक छुकाकर नमस्कार करता हूँ क्योंकि भगवान मलिलनाथ समस्त प्रकारके अनर्थोंको जड़से उखाड़कर कोकनेवाले हैं । उत्कृष्ट प्रयोजनको प्रदान करनेवाले हैं स्वर्ग और मोक्षको देनेवाले हैं । उत्कृष्ट हैं । अनंत गुणोंके समुद्र हैं संसारके समस्त भयोंको सर्वथा नष्ट करनेवाले हैं । विश्वासके प्रधान कारण हैं और आठों कम्सोंके जीतनेवालोंमें प्रधान हैं । तथा भगवान मलिलनाथने जिस मार्गका अनुसरण किया है उसी मार्ग और उसी स्वरूपको प्रदान करनेवाले सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रयको भी मैं मस्तक छुकाकर नमस्कार करता हूँ क्योंकि यह रत्नत्रय ही समस्त प्रकारके अनर्थोंका सर्वथा नाश करनेवाला है । उत्कृष्ट प्रयोजनका उत्पादक है । स्वर्ग और मोक्षका प्रदान करनेवाला है । उत्कृष्ट है अनंत गुणोंका भण्डार है समस्त संसारके अयको नष्ट करनेवाला है और विश्वासका एक प्रधान कारण है ॥१५-१६॥

इस प्रकार भट्ठाकर सकलकीर्ति विरचित मलिलनाथ पुराणमें रत्नत्रयका वर्णन करनेवाला पहिला परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ १ ॥



द्वितीयः परिच्छेदः

मोहमल्लारिहंतार कामाक्षारातिषातिन । श्रीमल्लनाथ तीर्थेशं स्तौगि सच्छक्तिसिद्धये ॥१॥
 अथ श्रुत्वा मुनेवाच रत्नत्रितयसूचिकां । वेराग्यमातरं राजा प्राह तज्जरणेऽप्यमः ॥२॥
 आर्तध्यानपरनैष्टवुद्धिभिर्मदृशेविभो । मोहिभिर्विषयासकृतैर्गृहव्यापारभासिते ॥३॥
 यत्र तदव्यवहारास्पभनुष्ठातुं च शक्यते । तथा शक्यं क्यं उपात्त्येन निश्चयाभिर्ध ॥४॥
 गजेन्द्रभारमुद्धतुं यथा न शक्यते बृषेः । तथा मुनीन्द्रभारं च निःशक्तमदृशेः प्रभो ॥५॥
 अतः स्वामिन् ! कृपां कृत्वा मदनुग्रहहेतवे । क्रमाद्रत्नत्रयप्राप्त्ये तादृक्प्रक्षेपदेशान् ॥६॥
 पूजोपवाससंभूतं येत मादृग्विष्णेजनैः । विभूत्या क्रियते तस्योपासनं पूजनादिभिः ॥७॥

संसारमें मोहनीयकर्म अत्यन्त बलवान है जिन्होंने बलवान वैरो मोहनीय-
 कर्मरूपी भल्लको सर्वथा नष्ट कर दिया है । जो भव्यंकर शश्रु कामदेव और इन्द्रियोंका
 पूर्णरूपसे घात करने वाले हैं और तीर्थंकर हैं ऐसे श्रीमल्लनाथ भगवानको उन्हींकी
 समस्त शक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं सस्तक मुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥
 सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके स्वरूपको जतलानेवाले
 वैराग्यके उत्पादक मुनिराज सुगुप्तके वचन सुन राजा वैश्वदण्डे उक्त प्रकारके
 रत्नत्रयके पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझा इसलिये विनयपूर्वक वह यह कहने
 लगा—कृपानाथ ! मुझ सरीखे मनुष्य सबा आर्तध्यानमें लीन रहनेवाले हैं सदा हम
 लोगोंको बुद्धियाँ विनष्ट सरीखी रहती हैं । धन कुटुम्ब आदिमें सबा मोही रहते हैं ।
 पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर सदा हमारी परिणति मुको रहती है और घरके
 व्यापारोंमें हम सबा संलग्न बने रहते हैं इसलिये भगवन् ! जब व्यवहार रत्नत्रयके
 पालन करनेके लिये भी हमारी सामर्थ्य नहीं तब हम अत्यन्त कठिन निश्चय रत्नत्रय-
 का पालन तो कर ही नहीं सकते क्योंकि यह एक सुनिश्चित बात है कि जिस महा
 भारको गजेन्द्र उठा सकता है उसे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय बैल नहीं
 उठा सकता । उसी प्रकार जिस चारित्रके महा भारको बड़े-बड़े मुनीन्द्र उठा सकते
 हैं उसे मेरे समान असमर्थ पुरुष नहीं उठा सकते । अर्थात् निश्चय रत्नत्रयका पालन
 करना बड़े-बड़े मुनियोंका काम है मुझ सरीखा असमर्थ पुरुष उस निश्चय रत्नत्रयका
 पालन नहीं कर सकता । इसलिये हे कृपा नाथ ! मेरे कल्याणके निमित्त मुझे उस
 रत्नत्रयकी प्राप्तिका कृपाकर ऐसा उपदेश दीजिये पूजा और उपवास आदिके द्वारा
 मुझे क्रम से प्राप्त हो जाय क्योंकि मेरे समान पुरुष पूजन आदिके द्वारा ही बड़ी

निशम्येति यसी प्राह यथोक्तं तदुपासनं । यदि कलुं समर्थो न तद्द्वि द्विमिथिमाचर ॥८॥
 समाकरणं लूपाल यशाचत्तारं लक्षणं । तत्पूजादिकम् सर्वं देशयामि व्रताप्तये ॥९॥
 भद्रे भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे वृषाकरे । द्वादशीदिवसे सारे भवेद्ग्रन्थो व्रतोद्यतः ॥१०॥
 धौतांवरधरा धीमात् जिमध्यानपरायणः । पूजोपलक्षितो भक्त्या यायाच्छ्रीमज्जिनालयं ॥११॥
 तत्र तीर्थेशसिद्धान्तगुह्नत्वा प्रपूज्य च । पुनः स्वगृहमागत्य दानं दद्यान्मुनोशिने ॥१२॥
 निर्दोषं प्रासुकं शुद्धं मधुरं तृप्तिकारणं । ततो मुंजीत चाहार शेषं स सपरिच्छेदः ॥१३॥
 प्रत्याख्यानोद्यतो भूत्वा ततो गत्वा जिनालयं । गुह्नत्वा विरात्रानशनं मुदा दधाति सः ॥१४॥

भक्तिपूर्वक और ठाट बाटसे उस रत्नत्रयकी उपासना कर सकता है ॥२-७॥ राजा वैश्वरणके ऐसे भक्तिसे गद्यव् वचन सुनकर परम संयमी मुनिराज सुगृप्तने कहा—

राजन् ! यदि तुम ऊपर कहे गये व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयका पालन नहीं कर सकते तो आम्नाय परिपाठोमें प्रचलित है और शास्त्रोंके अन्दर कहा गया है उस रत्नत्रयको जो कुछ विधि है उस विधिको ही तुम करो । सुनो उस रत्नत्रयको पूजा आदिके क्रमका विधान जिस तरहका है मैं उसे बतलाता हूँ । उस विधिके आचारण करनेसे ही तुम्हें नियमसे व्रतोंकी प्राप्ति होगी । वह विधि इस प्रकार है—

कल्याणकारी भावों मासके धर्मके स्थान स्वरूप शुक्ल पक्षकी द्वादशीके पवित्र दिनसे मोक्षाभिलाषी भव्यको रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिये । जो महानुभाव रत्नत्रय व्रतका आचरण करे उसे चाहिये कि वह उस दिन पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण करे । अपने चित्तमें प्रतिक्षण भगवान जिनेन्द्रका ही ध्यान रखें एवं पूजा-की महामनोहर सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें जाय ॥८-११॥ मन्दिरमें जाकर भगवान जिनेन्द्र आगम और गुरुओंको उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये और पूजा करनी चाहिये वहाँसे अपने घर आकर मुनियोंके लिये निर्दोष प्रासुक शुद्ध मधुर और तृप्तिका करनेवाला पवित्र आहारदान देना चाहिये उसके बाद जो आहार थके वह अपने भाई बन्धु आदि कुटुम्बियोंके साथ सानन्द खाना चाहिये ॥१२-१३॥ आहार आदिके आरम्भमें अनेक दोषोंका होना सम्भव है इसलिए उन दोषों के प्रत्याख्यानकी अभिलाषासे आहार करके बाद पुनः जिन मन्दिरमें जाना चाहिए वहाँ जाकर भले प्रकार गुरुओंको नमस्कार करना चाहिए और तीन दिन

नयेन्निशामसौ तत्र स्मरत् रत्नत्रयं हुदे । प्रातः सामायिकं कुर्याज्जनादीनां च पूजनं ॥१५॥
 गुरोः पुरस्सरो भूत्वा स्वामिन् । रत्नत्रयाच्चन् । वित्तनोमीति भक्तव्या यतोर्ष पृच्छेदव्रती स्फुटं ॥१६॥
 ततस्तेनाप्यनुज्ञाते गुरुणा हितमिक्खुना । आरम्भेत प्रमोदेन तत्सप्तर्णी परामिति ॥१७॥
 आदी संपूर्ज्य तीर्थेशान भवतथा तत्पुरतः पुनः । लिखेदष्टदलं पश्य स्थालादीव शिलातले ॥१८॥
 कणिकायां लिखेत्स्वर्णलेखिन्या चदनद्रवैः । लसदोकारहीकाराद्य सम्यग्दर्शनं परं ॥१९॥
 पथे स्वस्य लिखेन्निःशक्तिाद्यगानि धीधनः । वीजाक्षरयुतान्यष्ठौ प्रागुक्तान्यर्चनाय सः ॥२०॥
 ततः सूक्ष्मोदितं धीमान् मंत्रमुच्चारयन्मुदा । पूजनं विधिवद्दृष्टेविदध्याहृत्संपदा ॥२१॥

रात्रि पर्यंत बड़े हृष्टके साथ अनशन व्रतका पालन करना चाहिए । उस रात्रि को उसे मन्दिरमें ही रहना चाहिए और सम्यर्ददीन आदि रत्नत्रयका हृदयमें चिन्तन करना चाहिए । प्रातःकाल उल्फकर सामाधिक करना चाहिए और पीछे भगवान् जिनेन्द्र आदिकी पूजाके समारोहमें लग जाना चाहिए । जिस समय भगवान् जिनेन्द्र आदिकी पूजन करना समाप्त हो चुके उसके बाद गुरुके पास आना चाहिए और भवितपूर्वक उनके सामने खड़ा होकर व्रतीको उनसे यह पूछना चाहिये कि हे भगवन् ! मैं रत्नत्रय व्रतकी पूजाका आचरण करना चाहता हूँ आप आज्ञा दीजिये । जब सर्वथा हितकारी मार्गका उपदेश देने वाले गुरुकी रत्नत्रय व्रतकी पूजाको लिये आज्ञा मिल जाय उस समय व्रतीको चाहिये कि वह बड़े आनन्दके साथ रत्नत्रय व्रतकी परमोत्कृष्ट पूजाका आरम्भ कर दे ॥१४-१७॥

प्रपूजयाथ श्रुतं भक्तया भूत्या चाष्टविधाचर्तं । सम्यग्जानमथोद्भृत्यं पंकजस्य दलेष्वलं ॥२२॥
पश्चात्तदर्चनं भूत्या कुर्यात्सविधिपूर्वकं । नीरादिफलपर्यंतद्वयोर्धनिर्मले: करैः ॥२३॥
ततः सद्गुरुपादाल्बजौ पूजयित्वा महाचर्तं । त्रयोदशप्रकारस्य चारित्रस्यातिभक्तिः ॥२४॥
प्रागुक्तस्य समालिख्य यश्च पश्चान्मुदाचर्येत् । रत्नत्रय विधानोक्तविधिना बहुसंपदा ॥२५॥
अर्थसंते समृत्तार्थं फलपक्वान्नशोभितं । त्रिः परीत्य ततः कार्यास्तद्विष्युक्तव्योल्कार ॥२६॥
पूजा रत्नत्रयस्येति कृत्वा भक्तया मुदा गुरोः । मुखात्पानकं रम्यं श्रोतव्यं व्रतधारिभिः ॥२७॥
एव दिनवयेत्युच्चाविधेयं पूजनं परं । यंत्राणां च जिनादीनां बुधैः कालनये शुभं ॥२८॥

सम्यग्दर्शनकी पूजा करना प्रारम्भ कर दे ॥१८-२१॥ इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी पूजाके बाद अतीको श्रुतज्ञानको आठों द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक पूजाका प्रारंभ करना चाहिए । सम्यग्दर्शनके समान किसी थाल आदिमें आठ पाँखुड़ियोंका कमल लिखना चाहिए । चंदनका द्रव बनाकर सुबर्णकी कलीके मध्यभागमें ढँ और हीं बीजाकरणोंके साथ सम्यग्ज्ञान शब्द लिखना चाहिए और उसको आठों पाँखुड़ियोंमें बीजाकर मंत्रोंके साथ व्यंजनोर्जित आदि आठ आकारोंको लिखना चाहिए । इस प्रकार जिस समय सम्यग्ज्ञानका मंत्र तैयार हो जाय उस समय जलसे लेकर फल पर्यंत निर्मल और उत्कृष्ट अष्ट द्रव्योंसे विधिपूर्वक उस मंत्रकी पूजा करनी चाहिए ॥२२-२३॥ जिस समय सम्यग्ज्ञानके यंत्रको पूजा समाप्त हो चुके उस भक्तिपूर्वक उत्तम तप के स्थान परम गुरुओंका उत्तमोत्तम पूजाकी सामग्रीसे पूजाकर ऊपर विस्तारसे बतलाए गये तेरह प्रकार चारित्रका भक्तिपूर्वक यंत्र लिखना चाहिए और जब वह यंत्र लिखकर समाप्त हो जाय उस समय रत्नत्रय पूजाके विधानमें जो भी उस सम्यक्चारित्रके यंत्रको पूजाकी विधि कही गई है उसके अनुसार भक्तिपूर्वक विपुल आयोजनके साथ उस यंत्रकी पूजा करनी चाहिए ॥२४-२५॥ इस प्रकार रत्नत्रय विधानके बाद अन्तमें भाँति भाँतिके फल और पवद अन्नोंसे शोभित अर्घ—आरती उतारनी चाहिए और रत्नत्रय यंत्रोंकी तीन बार प्रदक्षिणा देकर रत्नत्रय विधानमें जो जप शास्त्रमें कहे गये हैं उन जापों को जपना चाहिये ॥२६॥ इस प्रकार भक्ति-

१. मिथ्या दुष्कृतामिषानामनिष्यक्तप्रतिक्रिया प्रतिक्रमण ॥३॥ कर्मवशप्रमादोदयजनितं मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमाद्यमिष्यक्त प्रतिकारः प्रतिक्रममित्युच्यते अर्थात् कर्मीके अधीन प्रमादक उदयसे जायमान जो भी भेरे अशुभ कर्मका उदय हुआ हो वह मिथ्या है इस प्रकार उस दोषके प्रतीकारका चित्रवत् प्रतिक्रमण है । राजकार्तिकालंकार पृष्ठ संख्या २४४ ।

महाभिषेकमत्युच्चैजिनागारे ऋतान्वितैः । कर्तव्यं सह सधेन महोत्सवपुरस्तर ॥२९॥
गृहारंभास्त्रिलं त्यक्त्वा पूजावश्यकतत्परः । धन्यव्यानेन तत्रासौ तिष्ठेत्रयमहनिशं ॥३०॥
पर्वप्यस्मिन् विधातव्यऽवशाकतया विविषोत्सवः । सर्वा ग्यभयदानादिगीतनृत्यादिभिर्बुधैः ॥३१॥
मौक्तिकान्वितयं रत्नवितयस्मरणहेतवं । ऋतां तदा प्रभृत्येव जारयेददांकणे करे ॥३२॥
अथ यंत्रजिनादीना कृत्याची प्रतिपद्धिने । पञ्चांशिशति (?) भेदोरुपकवान्नैरच्चयेन्मुदा ॥३३॥
ततस्त्रिविधपात्रेभ्यो दानं दत्त्वा यथाविषि । प्रासुकं मधुरं भक्तया पारणं तनुयात्ततः ॥३४॥
शुद्धरत्नत्रयस्फारभक्तिरागवशीकृतः । पारणे सोऽप्यहोरात्रं देवगेहेऽतिवत्येत ॥३५॥

पूर्वक बड़े समारोहसे रत्नत्रयकी पूजाकर रत्नत्रय ऋतको धारण करने वाले महापुरुषको गुरुके पास जाना चाहिये और उनके शोभुखसे आत्माका कल्याण करने वाला आगम का स्वरूप आनन्दपूर्वक सुनना चाहिए । इस रोतिसे जो पुरुष रत्नत्रय ऋतके पालन करने वाला है उसे तीनों दिन अर्थात् ऋयोदशी चतुर्दशी और पूर्णमासीके दिन प्रातःकाल मध्याह्न काल और सायंकाल रत्नत्रयके यंत्रों और जिन आदिकी बड़े समारोहसे शुभ और उत्कृष्ट पूजन करनी चाहिए । तथा इस प्रकार पूजाके बाद ऋतधारियोंको जिन मन्दिरके अन्दर अपने संघको साथ ले महान् उत्सवके साथ महा अभिषेक भी करना चाहिए ॥२७-२९॥ रत्नत्रय ऋत धारण करने वालोंका यह खास कर्तव्य है कि वे तीन दिन तक समस्त गृह सम्बन्धी आरम्भोंका त्यागकर बराबर जिन मन्दिरके अन्दर रहें और वहां पूजा और आवश्यक कृत्योंमें दत्तवित्त हो धर्मध्यानसे काल व्यतीत करें ॥३०॥ समस्त प्राणियोंको अभयदान आदि देकर गीत नृत्य आदि कराकर ऋतोंको इस महान् पर्वमें अपनी शक्तिको अनुसार नाना प्रकारका उत्सव करना चाहिए ॥३१॥ जो पुरुष रत्नत्रय ऋतका आचरण करने वाला है उसे चाहिए कि वह रत्नत्रय ऋतके बाद उस रत्नत्रयके स्मरणके लिए अपने वक्षिण हाथमें तीन भोतियोंको धारण करे ॥३२॥ इस प्रकार रत्नत्रयके यंत्र और जिनेन्द्र आदिकी ऋयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीन दिन पर्यंत भक्तिपूर्वक पूजाकर प्रतिपदाके दिन भी पंतीस (छत्तीस) प्रकारके व्यंजनोंसे आनन्दपूर्वक उनकी पूजा करे ॥३३॥ उसके बाद वह ऋती घर आवे और उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको यथायोग्य दान देकर प्रसन्नतासे प्रासुक और मधुर भोजनसे पारणा

१. रत्नत्रयके यन्त्र ताज्रपत्रपर लिचे हुए मन्दिरमें पाये जाते हैं अतः वही उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं । २ संस्कृत रत्नत्रय पूजामें रत्नत्रयकी जापोंका विस्तारसे इलेख है ।

विस्तरेण मयोक्तेषां पूजायुक्तिः परस्य च । प्रोच्यमाना समासेनाऽबुना सा शूक्रतां नृप ॥३६॥
 अरनाथलसन्मतिल्लभुद्रतानां जिनेशिनां । भक्तया विब्रत्रयं दक्षः स्नपयेत्सनायुक्तिभिः ॥३७॥
 तत्पुरः पूर्ववद्रत्नत्रयभुद्धृत्य भक्तितः । पूजयाशु यथाशब्द्या युगपत्पूजयेत्ततः ॥३८॥
 अहो भाद्रपदार्थ्योयं भासोनेक्त्रिव्रताकरः । धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥३९॥
 तस्मात्यक्त्वा गृहारंभमस्मिन् मासि विधीयते । पूजाद्रतोपवासाद्यैः सुधर्मच्चाधनाशनं ॥४०॥
 अनेन विधिना मावे मासि चेत्राभिष्ठे पनः । व्रतं रत्नत्रयस्येदं कर्तव्यं भुक्तिमोक्षदं ॥४१॥
 उपवासत्रयं कर्तुयेऽशक्ता भक्तितत्पराः । ते कुर्वति यथाशब्द्येहैकसत्प्राप्तधादिभिः ॥४२॥

करे । उसके बाद शुद्ध रत्नत्रयकी तीव्र भक्ति और प्रेमसे जिसकी आत्मा गद्गद है ऐसा वह रत्नत्रय द्रष्टव्य का आचारण करनेवाला व्रती पारणके दिनके अवशिष्ट सम्पदको और सम्पूर्ण रात्रिको जिनस्तेविरमे हो जाकर व्यतीत करे ॥३४-३५॥ इस प्रकार हे राजन् ! तुम्हारे सामने यह रत्नत्रयकी पूजाका विधान विस्तार से कहा है । तुम्हारेसे भिन्न दूसरे पुरुषके लिये वह संक्षेपसे कहा जा सकता है । वह संक्षेपसे कहा जानेवाला रत्नत्रयका विधान इस प्रकार है । तुम सुनो—

जो पुरुष रत्नत्रय द्रष्टव्य का पालन करनेवाला है उसे भगवान अरहनाथ महिलनाथ और मुनिसुद्रतनाथ इन तीनों भगवानोंकी प्रतिमाओंका जिसरूपसे शास्त्रमें अभिषेकका विधान लिखा हुआ है उस विधानसे भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिये । तथा इन तीनों प्रतिमाओंके सामने पहिलेके समान भक्तिपूर्वक रत्नत्रय यंत्रोंको लिखकर रख देना चाहिए और एक साथ सबका पूजन करना चाहिए । इस रूपसे भी रत्नत्रयका विधान संक्षेपसे माना गया है । रत्नत्रयका विधान भाद्रपद मासमें बताया गया है । इसलिए ग्रन्थकार भाद्रपद मासकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा माना जाता है उसी प्रकार समस्त मासोंके अन्दर भाद्रपद मास भी श्रेष्ठ है क्योंकि वह अनेक प्रकारके द्रष्टोंका स्थान स्थरूप है और धर्म प्रधान कारण है ॥३६-३९॥ इसीलिए समस्त गृहारंभका परित्यागकर इस भाद्रपद मासमें व्रती पुरुष पूजा द्रष्ट और उपवास आदिके द्वारा तथा धर्मके आचरणसे पापोंके नाशमें प्रबृत्त होते हैं ॥४०॥ जिसरूपसे भाद्रपद मासमें रत्नत्रय द्रष्टव्य का विधान बतलाया है उसी विधिसे वह माघ मास और चैत मासमें भी आचरण करना चाहिए । क्योंकि यह अनुपम रत्नत्रय द्रष्ट संसारके उत्तमोत्तम भोग प्रदानकर अन्तमें मोक्षसुखका प्रदान करनेवाला है ॥४१॥ जो महानुभाव तीन दिन पर्यन्त उपवास करनेके लिए असमर्थ

शक्तिः कियमाणेऽप्यन् त्यागतपसी सतां । स्यातां समीहितानेकफलसप्राप्तिहेतवे ॥४३॥
आवकः आविकाभिश्च मुनि भिश्चार्थिकादिभिः । व्रतमेतद्विधातव्यं पापहंत् सुखाकरं ॥४४॥
वर्षप्रित्यप्यतं विधायेद् व्रतोत्तमं । सम्पूर्णं ह्यनुकर्तव्यं स्वज्ञात्तथोद्यापनं दुष्टः ॥४५॥
निमाय जिनचेत्यालानुत्तुगान् सुभासुरान् । अरनाथादिविवानां प्रतिष्ठा कारयेत्तनः ॥४६॥
कर्त्तव्यादि जिनागारे मद्भूषिष्ठेकमद्भूतं । संवैश्वतुविधेः सार्वं महापूजादिकोत्सवं ॥४७॥

हैं किन्तु रत्नब्रय व्रतके पालन करनेमें पूरी-पूरी शक्ति और अद्वा रखते हैं वे शक्तिके अनुसार एक प्रोषध आदिसे ही रत्नब्रयव्रतके पालक माने जाते हैं । अर्थात् उनके लिए त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों दिनतक उपवास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । वे ऐसा भी कर सकते हैं कि त्रयोदशीके दिन एक बार भोजन कर सारा दिन और रात्रिका समय मंदिरमें ध्यान आदि कार्योंमें व्यतीत करें । चतुर्दशीके दिन पूरा उपवास करें और मंदिरके अन्दर ही स्वाध्याय आदिमें दत्तचित्त होकर अपना समय व्यतीत करें । पूर्णिमासीके दिन पूजा आदि आवश्यक कर्मोंके समाप्त हो जानेपर एक बार भोजन करें और फिर मंदिरमें ही जाकर दिनका और रात्रिका समस्त समय स्वाध्याय आदिमें लगावें, प्रतिपदाके दिन घर आवें और जो भी ऊपर विधि कहो गई है उसे करें । यहाँपर यह शंका न करनी चाहिए कि व्रतकी जो पूरी विधि बतलाई है उसीसे अभीष्ट फलकी सिद्धि हो सकती है और न्यूनता होनेसे वह फल प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि शक्तिके अनुसार किए जानेवाले दान और तप भी संसारमें अनेक अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेमें कारण माने गए हैं—उनसे भी संसारमें अनेक प्रकारके अभीष्ट और उत्तमोत्तम फलोंकी प्राप्ति होती है ॥४८-४९॥ जिस रत्नब्रयव्रतका ऊपर खुलासा रूपसे वर्णन किया गया है वह व्रत आवक-आविका मुनि और आर्थिका सबोंको पालन करना चाहिए क्योंकि वह पवित्र व्रत पापोंका सर्वथी नाश करनेवाला है और नाना प्रकारके सुखोंकी इससे प्राप्ति होती है ॥४४॥ यह परमोत्तम रत्नब्रयव्रत तीन वर्ष पर्यंत बराबर पालना चाहिए, जिस समय तन वर्ष समाप्त हो जाय और व्रत भी पूरा हो जाय उस समय जिसकी जैसी शक्ति हो भक्ति-पूर्वक उद्यापन करना चाहिये ॥४५॥ उद्यापनकी विधि इस प्रकार है—खूब ऊचे-ऊचे बिशाल और रत्नों की दोप्तिसे देवीप्रमाण जिन चंत्यालय बनावे और उनमें अरनाथ मत्लिनाथ आदिको प्रतिमाओंकी ठाट-बाटसे प्रतिष्ठा कराकर उन्हें उन चंत्यालयोंमें विराजमान करें । पश्चात् आवक-आविका एवं मुनि और आर्थिका इस चार प्रकारके

घंटाचामरचंद्रोपकभूगारातिकादयः । धर्मोपकरणानि श्रिसंख्यानिविष्णवानि च ॥४८॥
 पूजाद्रव्याणि पवकाशादीनि भक्त्या स्वशक्तिः । नालिकेरकदल्यादिमनोहरफलानि च ॥४९॥
 विस्तार्यते जिनागारे पूजाशोभादिहेतवे । महोत्सवं विधेय सुवाद्यगीतादिनर्तने ॥५०॥
 पुस्तकादिमहादानं भक्त्यादेयं वृषाकरं । आचार्येभ्यो यथायोग्यं रत्नत्रयव्रतान्वितः ॥५१॥
 चतुर्विष्णवाय संधायाहारादानादिकं मुदा । आमर्त्यं परया भक्त्या देयं सन्मानपूर्वकं ॥५२॥
 प्रभावना जिनेन्द्राणां शासने चेत्यवामनि । विधातव्या प्रयत्नेनानेकोत्सवशतेबुद्धै ॥५३॥
 येषामेतावत्तो शक्विन्स्त्यत्रोद्यापने सतां । ते कुर्वतु यथाशक्त्या स्तोकं चोद्यापनां मुदा ॥५४॥

संघको साथ लेकर जिन मंदिरोंमें सबोंको चमत्कारका करनेवाला महा अभिषेक करावे और बड़े समारोह के साथ महापूजा आदिका उत्सव करना प्रारम्भ करें । घंटा चमर चाँदनी झाड़ी और आरती आदि जितने भी धर्मके अनेक प्रकारके उपकरण हैं उनमें हर एकको तीन-तीन कर दे ॥४६-४८॥

पञ्च अन्न लाद, सेवर फौली आदि जो भी पूजाके दृश्य हैं अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उन्हें प्रदान करे और महा मनोहर नारियल केला आदिके उत्तमोत्तम फलोंको दे ॥४९॥ इस प्रकार पवव अन्न और नारियलके फल आदि पूजाके कारणोंको और घंटा चमर चाँदनी आदि शोभाके कारणोंको जिनमन्दिरमें प्रवानकर उत्तमोत्तम बाजे गीत और नृत्य आदिके अत्यन्त आयोजनसे जिनमंदिरमें महान् उत्सव भी करे ॥५०॥ तथा जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतसे विभूषित हैं उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्मके प्रधान कारण ग्रन्थ भी आचार्योंको भक्ति-पूर्वक भैंट करने चाहिए । शावक-धारिका और मुनि आर्यिकाके भेदसे जो ऊपर चार प्रकारका संघ कहा गया है उन्हें विशिष्ट सन्मानके साथ भक्तिपूर्वक बुलाकर अत्यन्त प्रसोदसे आहार औषध आदि दान देने चाहिए ॥५१-५२॥ प्रभावना अंगका स्वरूप ऊपर जहाँपर सम्यगदर्शनके आठ अंगोंका स्वरूप कहा है वहाँ विस्तारसे कह दिया है इसलिए जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतके पालक हैं उन्हें भगवान् जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रकटकर और मंदिरोंके अन्दर भी अनेक प्रकारके सैकड़ों उत्सव कराकर सम्यगदर्शनके प्रधान अंग प्रभावनाका पालन करना चाहिए ॥५३॥ यह तो हुई अत्यन्त व्ययसाध्य उद्यापनकी बात, किन्तु जो महानुभाव इतना महान् खर्चकर उद्यापन करनेमें असमर्थ हैं—उद्यापनके लिए इतना अधिक खर्च नहीं उठा सकते उन्हें चाहिये कि वे अपनी शक्तिके अनुसार भवित और हर्षके साथ योड़ा ही उद्यापन करें—उन्हें

सर्वथा येऽप्यशक्ता हि व्रतोद्यापनसविधी । ते कुर्वन् विधानं तदद्विगुणं मावपूर्वकं ॥५५॥
अनेकपुण्यसंतानकारणं स्वनिवंवनं । पापघ्नं च क्रमादेतद्ब्रतं मुक्तिवशीकरं ॥५६॥
यो विवत्त व्रतं सारभेतत्सबं सुखावहं । प्राप्य शोङ्कशमं (कं) नाकं स गच्छेत्क्रमतः विवं ॥५७॥
इत्यादि व्रतमाहात्म्यं शुन्दा राजातिभक्तितः । तदादाद मुनि नत्वा जगाम निजमंदिरं ॥५८॥
बिभूत्या परया भक्त्या राजा मुक्त्यंगनासये । एतद्व्रतं च संपूर्णं यात्यात्य्येन सत्कृतं ॥५९॥
पश्चादस्य व्रतस्यातेऽनेकव्यर्थायेशमंदिरान् । उद्यापनविधी मूपश्चके परमोत्सबं महत् ॥६०॥
जिनागारे जिनेद्वाणीं स्वगृहे च महामहं । करोति प्रत्यहं राजा सर्वाभ्युदयसाधनं ॥६१॥

उतने ही उद्यापनसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी परन्तु जो महानुभाव इतने भी असमर्थ हैं कि थोड़ासा भी उद्यापनका विधान नहीं कर सकते उन्हें चाहिए कि वे रत्नत्रय व्रतका जो विधान बताया गया है विशुद्ध भावोंसे उसका दूना विधान करें अर्थात् तीन वर्षकी जगह वे छह वर्षतक रत्नत्रयका विधान बराबर करें ऐसा होनेसे उन्हें उद्यापन करनेकी फिर आवश्यकता नहीं ॥५४-५५॥ यह रत्नत्रय व्रत अनेक पुण्यकी संतानका कारण है । स्वर्गका कारण है । संसारके समस्त पापोंका सर्वथा नाश करनेवाला है एवं मुक्तिरूपी महादुर्लभ लक्ष्मीको बश करनेवाला है ॥५६॥ रत्नत्रय व्रतकी प्रशंसा करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं कि परम सुखका स्थान स्वरूप और समस्त व्रतों में सार इस रत्नत्रय व्रतको जो महानुभाव धारण करते हैं वे सोलहवें स्वर्गके सुखका लाभ करते हैं एवं ओरे-धीरे अनुक्रमसे वे अविनाशी मोक्ष सुखका भी रसास्वावन करते हैं ॥५७॥

इस प्रकार मुनिराज मुगुप्तके मुखसे रत्नत्रयका माहात्म्य सुन राजा वैश्वदण को परमानन्द हुआ । भवित्पूर्वक उसने रत्नत्रय व्रत धारण किया और विनयपूर्वक मुनिराजको नमस्कारकर वह अपने राजमंदिरमें आ गया ॥५८॥ राजमंदिरमें आकर राजा वैश्वदणने परम भक्ति और अद्वाके साथ मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्तिके लिये रत्नत्रय-व्रतका प्रारम्भ किया एवं वास्तविक रीतिसे उसे पूरा किया ॥५९॥ व्रतके अन्तमें उद्यापनके समय राजा वैश्वदणने भगवान जिनेन्द्रके अनेक मंदिरोंका निर्माण कराया और महान् उत्सवका समारंभ किया ॥६०॥ तबसे राजा वैश्वदणने अन्य जिनमंदिरोंमें और राजमन्दिरके जिनमन्दिरोंमें समस्त प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाली महापूजाका प्रतिदिन करना प्रारम्भ कर दिया । वह नरपाल मोक्षलक्ष्मीकी प्रचुर लालसासे प्रतिदिन उत्तम पात्रोंको आहार औषध आदि चारों प्रकारका दान देने लगा

नित्यं सत्पात्रदानानि ददाति सम स मुक्तये । उपकारं च जैनानां वात्सल्यं भजते सुधीः ॥६२॥
 निधत्ते प्रोषधान् सर्वेषु पर्वेषु धराधिपः । भूत्वा यतिसमो हत्वा गृहव्यापारसंजसा ॥६३॥
 सर्वाण्यण्व्रतान्येव गुणशिक्षाव्रतानि च । त्रिशुद्धया त्यक्तदोषाणि स पालयति यत्ततः ॥६४॥
 शृणोति जैनशास्त्राणि जानायाज्ञानहानये । श्रीजिनेन्द्रमुखोत्पन्नान्यसौ नित्यं च मुक्तये ॥६५॥
 धर्मोपदेशमादत्ते स्वसभास्थाखिलांगिनां । वाग्मी तदुपकाराय दिव्यैवक्षयैमनोहरैः ॥६६॥
 यात्रापूजानमस्कारदानशीलव्रतादिभिः । सदेव धर्ममिकं स विधत्ते पुण्यकर्मभिः ॥६७॥

किसी भी जीन हालतमें जैनधर्म पालन करनेवालोंको सुनकर निरोह और निर्मल वृत्तिसे बड़े हृष्टसे उनका उपकार करने लगा एवं साधर्मी भाष्योंमें गाय दब्डाके समान प्रेम वशकर परिपूर्ण वात्सल्य अंगका उसने पालन करना आरम्भ कर दिया ॥६१-६२॥ वह महानुभाव वैश्वरण राजा अष्टमी चतुर्दशी आदि समस्त पर्वोंमें ऊपर कही गई विधिके धारक प्रोषध द्रतका आचरण करने लगा और निर्मल भाष्योंसे धरके कारोंहि सर्वथा शिष्युङ् हैं शहू पतिन्न धार्मदाताकर आचरण करनेवाले यतिके समान हो गया ॥६३॥ अहिंसा अचौर्य सत्य स्वदारन्संतोष और परिप्रह परिमाण ये पाँच अणुव्रत, दिव्यत भोगोपभोग परिमाणव्रत और अनर्थ दंडव्रत ये तीन गुणव्रत एवं देशादकाशिक सामायिक प्रोषधोपवास और वैयाकृत्य ये चार शिक्षाव्रत इस प्रकार आवकोंके बारह व्रत हैं । राजा वैश्वरण मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक पाँचों अणुव्रत तीनों गुणव्रत और चारों प्रकारके शिक्षाव्रतोंको निर्देषरूपसे बड़े यत्नके साथ पालन करने लगा ॥६४॥ वह महानुभाव उस दिनसे अज्ञानको सर्वथा निवृतको लिये और ज्ञान संपादन करनेके लिये भगवान अहंत (जिनेन्द्र) के मुखसे उत्पन्न जैन शास्त्रोंका अवण और मनन करने लगा और उससे मुक्ति प्राप्तिका अभिलाषा चित्तमें करने लगा ॥६५॥ हितकारी और परिमित वचनोंका बोलनेवाला वह वाग्मी राजा वैश्वरण, सभामें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको उनका उपकार हो—इस पवित्र अभिलाषासे प्रतिदिन दिव्य और मनोहर वचनों में धर्मोपदेश देने लगा ॥६६॥ जहांसे अगणित पवित्र आत्माओंने मोक्ष प्राप्त की है ऐसे तीर्थोंकी यात्रा करना, जिनेन्द्र आदिको पूजा करना, उन्हें भवितपूर्वक प्रणाम करना उत्तम पात्रोंको आहार आदि दान देना एवं भवितपूर्वक शीलव्रत आदिका पालन करना इस प्रकारके पुण्यको उत्पन्न

१. रस्मकरदप्रावकाचारमें इन बारह व्रतोंका विस्तारसे बर्णन है । उसीके अनुसार नामोंका उल्लेख किया गया है ।

चित्ते धृत्वा निजे धर्म बक्ति वाचा च देहिनां । तमाचरति कामेनेतिस धर्मभयोऽभवत् ॥६८॥
धर्मार्पितान् परान् भोगान् यथाकालं भुनक्ति सः । सर्वाक्षतृप्तिदान् भूपः कुर्वन् धर्ममनारतम् ॥६९॥
अथेकदानुपो द्रष्टुं जृभमाणां बनावलीं । प्रवृद्धे प्राबृडारं ऐवेण्टितोभूमिपैरयात् ॥७०॥
मार्गस्य निकटे दृष्टवा बटं तूंगं मनोहरं । शाखोपशाखसंकीर्णं वृत्तं पक्षिशताकुलम् ॥७१॥
ब्रजता सूभुजेत्युक्तं पश्य पश्यास्थ विस्तृति । तुञ्जल्वं बद्धमूलत्वं सुन्दरत्वं घनात्मकं ॥७२॥
इत्याकर्णं ब्रजन्मार्गं पुरतः पाश्वर्वतिना । साश्चर्यं बहूदयो राजा बनातरं क्रमादगात् ॥७३॥

करनेवाले पदित्र कार्योंसे वह राजा सदा हो धर्मका आचरण करने लगा ॥६७॥ वह राजा चित्तमें जिस किसी भी पदार्थका विचार करता था उस समय केवल धर्मका ही विचार करता, धर्मके चिच्चारके सिवाय अन्य किसी विचारको उसके हृदयमें जगह नहीं मिलती थी । जब कभी मनुष्योंके सामने कुछ बच्चन बोलता था उस समय धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला ही बच्चन बोलता था उसके मुखसे सिवाय धर्म सम्बन्धी बच्चनके अन्य बच्चन नहीं निकलता था । शरीरसे भी वह धर्म क्रियाओंका ही आचरण करता था । अन्य किसी प्रकारको क्रियाओंका उसके शरीरसे आचरण नहीं होता था इसलिये वह राजा साक्षात् धर्मस्वरूप था ॥६८॥ वह राजा बैश्वण सर्वदा धर्मका आचरण करता था इसलिये यद्यपि वह समस्त इंद्रियोंको तृप्ति करनेवाले भोगोंका भोग करता था परन्तु धर्मनिकूल उत्कृष्ट भोगोंका ही भोग करता था धर्म विरुद्ध मर्यादासे अतिक्रान्त भोगोंका भोग नहीं करता था ॥६९॥

कदाचित् वर्षा श्रुतुका पूर्ण प्रारंभ हो चुका था और उसके निमित्तसे बनकी वृक्षावली फल फूलोंसे युक्त हरी भरी झोभित हो रही थी । उस समय राजा बैश्वणको बनकी वृक्षावली देखनेका कौतूहल हुआ इसलिये वह अनेक अपने बशबसी राजाओंके साथ बनकी झोभा निरखने चल दिया ॥७०॥ मार्गके समीपमें ही एक बड़का वृक्ष था जो कि अत्यन्त ऊँचा था महामनोहर था गोदे और डालियोंसे व्याप्त था, गोलाकार था और सैकड़ों पक्षियोंसे व्याप्त था ॥७१॥ मार्गमें जाते हुए राजाने वह बड़का वृक्ष देखा और आश्चर्यसे युक्त हो इस प्रकार कहने लगा—देखो ! देखो ! यह वृक्ष कितना ऊँड़ा है कितना ऊँचा है । इसका मूलभाग कैसा जिकड़ा हुआ है एवं कैसा सुन्दर और सघन है तथा ऐसा कह कर और साथमें रहनेवाले लोगोंके सामने उस वृक्षके विषयमें अस्यन्त आश्चर्य कर वह मार्गमें और भी आगेको चल दिया एवं क्रमसे चलता चलता बनके मध्यभागमें जा पहुँचा ॥७२-७३॥

नानाकीडादिभिस्तत्र चिकोड़ पृथिवीपतिः । स्वेच्छयामा च रामाभियथाकालं नृपात्मजः ॥७४॥
 ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्यागच्छन्मुदा नृपः । विद्युत्प्रपातघातेन ब्रीक्ष्य तं भस्मितं क्षणात् ॥७५॥
 इति चितां बद्धतेऽहो बद्धमूलस्त्वंतः । शंखात्र विस्तृतिनिरद्या तुञ्जल्वं कस्य वा भुवि ॥७६॥
 यथाशार्थं वटः प्राप्तो शुभस्थामीदूर्शीं गहान् । क्षणार्थेन ततः कस्य स्थिरस्त्वं जीवितादिषु ॥७७॥
 मस्मीभावमगाधद्वामूलांतं क्षणाद्विटः । विद्युत्साऽस्त्रिलज्जोवास्तद्विद्यास्याति यमाग्निनाम ॥७८॥
 राज्यं रजोनिमे निद्य दुःखचितादिसागरं । महारंभाघदुध्यानाद्याद्यं कः पालयेत्सुधीः ॥७९॥
 छायेव चपला लह्नोः कृत्स्नचिन्ताखनिः खला । रागद्वेषमदोन्मादमाता किं रंजयेत्सतां ॥८०॥

मनमें जाकर वहां राजा वैश्वरण उत्तमोत्तम स्त्रियोंके साथ एवं राजपुत्रोंके साथ अपनी इच्छासे अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करने लगा । जब क्रीड़ा समाप्त हो गई और नगरको लौटने लगा तो जिस मार्गसे गया था उसी मार्गसे नगरको बड़े आनन्दसे लौटा । रास्तामें वेष्टता क्या है कि जिस बड़े बृक्षको वह आश्चर्यकारी लंबाई छोड़ाई बाला छोड़ गया था वही क्षणभरमें बिजलीके गिरनेसे खाल हुआ पड़ा है ॥७४-७५॥ बस ! कुछ ही क्षणोंमें बृक्षकी यह अचरज करनेवाली अवस्था देख उसे संसारसे एकदम चैराय हो गया और वह मनमें इस प्रकारकी चिता करने लगा । संसारमें बद्धमूलता—मजबूत जड़ सदा किसीको भी नहीं रहती । न किसीका विस्तृति—फलना फूलना सदा रहता है और न तुंगत्व—अभिमान किसीका सदा स्थिर रहता है ॥७६॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि देखो ! कुछ देर पहिले यह बृक्ष कितना विशाल और विस्तृत था सो जब आधे ही क्षणमें ऐसी विलक्षण अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् खालमें मिल गया तब किसीके जीवन जबानी सुन्दरता आदि स्थिर रहेंगे यह क्या निश्चय है ? मेरा तो यह निश्चय है कि जिस प्रकार यह बड़का बृक्ष मूलसे लेकर चोटी पर्यंत बिजलीकी तीक्ष्ण ज्वालासे जलकर खाक हो गया है उसी प्रकार यमराजरूपी अग्निसे ये समस्त जीव—जीवोंके शरीर खाकमें मिल जायंगे अर्थात् किसी जीवको पर्याय सदा काल स्थिर नहीं रह सकतो ॥७७-७८॥ जिस राज्यको पाकर लोग मदमें मत्त हो जाते हैं वह राज्य धूलके समान है । महा निद्य है दुःख और चिता आदिका समुद्र है । अनेक प्रकारके इसके निमित्तसे आरंभ करने पड़ते हैं और उनसे जयमान पापोंकी उत्पत्ति होती है तथा सदा इसके लिए निन्दित ध्यान ही बना ही रहता है इसलिये ऐसे निन्दित राज्यका कोई चुद्धि-मान पालन नहीं कर सकता ॥७९॥ लक्ष्मीका घमंड लोगोंको पागल कर देता है

वात्सवा बन्धनान्येव भार्या हि निगदोपमा । गलशूखलाभाः पुत्राः कुटुम्बं पाशसक्षिनः ॥८१॥
कारागरनिभे घोरे चिन्तादुःखादिसंकुले । सर्वपापाकरीभूते धर्मविध्वंसकारणे ॥८२॥
कामकोषमहामोहरामाद्यब्धी गृहाश्रमे । मतिमान् को रति धते ह्यनन्तं भवदायिने ॥८३॥
उरगाभान् खलान् दुष्टान् सद्यः प्राणापहारिणः । दुखोद्भवान् महादुःखहेतूनत्यंतचलान् ॥८४॥

सो यह लक्ष्मी छायाके समान चंचल है । अर्थात् जिस प्रकार वृक्षको छाया कभी पश्चिम की ओर तो कभी पूर्वको ओर हो जाती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी आज किसीके है तो कल किसीके है तथा यह समस्त चिन्ताओंको उत्पन्न करनेवाली है अर्थात् लक्ष्मीके सम्बन्धसे हो अनेक प्रकारकी चिन्ता लगी रहती है निर्धनको विशेष चिन्ता नहीं व्यापती । तथा यह लक्ष्मी महा दुष्ट है एवं रागद्वेष अहंकार और उन्माद सबको उत्पन्न करनेवाली है इसलिये जो पुरुष सज्जन हैं वास्तविक रूपसे हित अहितके जानकार हैं उन्हें यह लक्ष्मी कभी भी रंजायमान नहीं कर सकते ॥८०॥ मोहके तीव्र जालमें जिकड़कर लोग भाई पिता पुत्र स्त्री आदि बांधवोंको अपना मानते हैं परन्तु वे बांधव सर्वया बंधन स्वरूप ही हैं क्योंकि स्त्री तो बेड़ीके समान है अर्थात् जिस पुरुषके पैरमें बेड़ी पड़ी हुई है वह पुरुष जिस प्रकार कहीं नहीं जा सकता और जाता है वहाँ बेड़ी सहित हो जाता है उसी प्रकार जिस पुरुषकी स्त्री मौजूद है वह पुरुष भी कहीं नहीं जा सकता और जहाँ जाता है वहाँ स्त्रीको भी साथ ही रखना पड़ता है इसलिये दीक्षा आदि शुभ कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती । तथा गलेमें जिस प्रकार शूखला (तोक) पड़ी रहती है उसके समान पुत्र हैं और समस्त कुटुम्ब पाशके समान है ॥८१॥ यह गृहाश्रम कारागर—केवलानेके समान है महा घोर है । नानर प्रकारकी चिन्तायें और उनसे जायमान दुःख शोक आदिसे व्याप्त हैं । समस्त पापोंका स्थान है । वास्तविक धर्मको जड़से उखाड़कर फेंक देनेवाला है एवं काम क्रोध तीव्र मोह रागद्वेष आदि का समुद्र है तथा अनंते भवोंका प्रदान करनेवाला है अर्थात् गृहस्थाश्रमका सम्बन्ध रहना अनन्त काल पर्यंत मोक्ष सुखका बाधक है इसलिये ऐसे महादुःखदायी पापी गृहस्थाश्रममें कोई बुद्धिमान प्रेम नहीं कर सकता ॥८२-८३॥

जिनके जालमें निरन्तर यह जीव फेंसा रहता है ऐसे ये भोग काले भुजंगके समान हैं क्योंकि जिस प्रकार भुजंग ऊपरसे अच्छा पर भीतरसे महादुष्ट जान पड़ता है उसी प्रकार ये भोग भी भोगते समय तो मधुर जान पड़ते हैं परन्तु अन्तमें ये

अतृप्तिजनकान् क्रूरान् क्रूरकर्मविषयिनः । पपुकदर्थनोत्पल्नान् भोगान् कः सेवते दुषः ॥८५॥
 शुक्रशोणितसंभूते सप्तधातुमयेऽशुभे । क्षुत्रृद् कामजराकोषरोगाग्नि ज्वालसंकुले ॥८६॥
 विष्णादिनिचिते निद्ये पूतिगच्छे यमाश्रमे । अनिद्ये कः सुधीः स्थातुमच्छेत्कायकुटीरके ॥८७॥
 इव भ्रवाङ्गं भीरे कृत्स्नाशमांबूपूरिते । रोगमर्त्यादिसंकीर्णे पंचाक्षतस्करान्विते ॥८८॥

महादुःखदायी होते हैं । भुजंग जिस प्रकार महादुष्ट होता है उसी प्रकार ये भोग भी महादुष्ट हैं । भुजंग जिस प्रकार कटते हो शीघ्र प्राणोंका नाश करनेवाला है उसी प्रकार ये भोग भी प्राणोंका नाश करनेवाले हैं । भुजंगकी उत्पत्ति जिस प्रकार महान् कष्टपूर्वक होती है उसी प्रकार विषय भोगोंकी प्राप्ति भी अनेक प्रकारके दुखोंको न्यौल कर ही होती है । भुजंगका काटना जिस प्रकार अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण होता है उसी प्रकार ये विषय भोग भी अनेके दुःखोंके कारण हैं । सर्व जिस प्रकार अत्यन्त चंचल होता है उसी प्रकार ये भोग भी अत्यन्त चंचल हैं क्षणभरमें आने वाले हैं । भुजंग जिस प्रकार किसीको संतोष प्रदान नहीं कर सकता उसी प्रकार ये भोग भी किसी प्रकार का सन्तोष उत्पन्न नहीं कर सकते । जितने-जितने अधिक भोगे जाते हैं उतनी-उतनी ही अशान्ति बढ़ती चली जाती है । भुजंग जिस प्रकार क्रूर होता है और सदा क्रूर कर्मोंका करनेवाला होता है उसी प्रकार ये विषय भोग भी अत्यन्त क्रूर हैं और इनको भोगनेसे सर्वदा महा क्रूर कर्मोंका आलब होता रहता है । भुजंग जिस प्रकार शरीरके कदर्यनसे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ये विषय भोग भी शरीरके कुत्सित आचरणसे पैदा होते हैं । इनके भोगनेसे शरीरका सर्वनाश होता है इसलिए ऐसे महा दुःखदायी भोगों का बुद्धिमान कभी सेवन नहीं कर सकता ॥८४-८५॥ यह शरीररूपी क्षोपड़ा माताके रज और पुरुषके शीर्यसे उत्पन्न हुआ है । हड्डी मज्जा आदि सात धातु स्वरूप है । महा अशुभ है । भूख प्यास काम बुद्धावस्था क्रोध और अनेक प्रकारके रोगोंकी ज्वालाओंसे व्याप्त है तथा विष्णादि महा अपवित्र पदार्थोंका घर है । अत्यन्त निन्दनीय है । पीव सरोखी सड़ी इससे दुर्गति छूटती रहती है । यमराजका आश्रम है—जिस समय यमराजका प्रकोप होता है तत्काल इसे खालमें मिल जाना होता है और क्षणभरमें विनाशीक है ऐसे इस शरीररूपों क्षोपड़ेमें जिहान कभी ठहरनेकी लालसा नहीं कर सकता और न वह शरीरको ही सर्वस्व मानकर हड्डी तेल आदिसे उसकी सेवा कर सकता है ॥८६-८७॥

यह संसार जिसकी आदि है न अन्त है ऐसा विशाल समुद्र है क्योंकि जिस

जन्ममृत्युजरावायुसंकुलेऽतिभयानके । चचले विषमे घोरेऽसारे पारातिगेऽशुभे ॥८९॥
अनन्तेऽनादिसंसारे पाराबारे निरन्तर । मज्जनोन्मज्जने कुर्याधर्मपीतादृतेऽग्निः ॥९०॥
प्रातर्दर्भदलाच्छस्थविद्वामि जीवितं नृणां । बलकायाक्ष सामग्री शपेव चंचलाऽशुभा ॥९१॥
प्रतिक्षणं सतामायुहीयते समयादिभिः । न्यस्तं जलं यथा हस्ते छिद्रे च यौवनादिकं ॥९२॥

प्रकार समुद्रमें बड़वानल होती है उसी प्रकार इस संसारमें भी घोर नर्करूपी बड़वानल भौजूद है—तकोंमें जाकर नारकी सदा अग्निके भयानक कुण्डोंमें जलते पजलते रहते हैं अतएव यह संसार समुद्रके समान गंभीर है । तथा जिस प्रकार समुद्रमें अथाह जल होता है उसी प्रकार यह संसार भी समस्त प्रकारके अकल्याणरूपी जलसे भरा हुआ है । जिस प्रकार समुद्रमें बड़े-बड़े मत्स्य होते हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी भयंकर रोगरूपी मत्स्योंसे खचालच भरा हुआ है । जिस प्रकार जहाजोंको लूटनेके लिए समुद्रमें और डाकुओंका जमघट रहता है उसी प्रकार इस संसारमें भी समस्त जीवोंको लूटनेवाले पाँच इन्द्रियरूपी पाँच चोर हैं इनके जालमें फँसकर निरंतर जीव ठगे जाते हैं । जिस प्रकार समुद्र भयंकर पवनसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह संसार भी जन्म-मरण और बुद्धापालरूपी तीव्र पवनके झकोरोंसे व्याप्त है समुद्र जिस प्रकार महाभयानक होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाभयानक है । समुद्र जिस प्रकार महाचंचल महाविषम महाधोर और असार होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाचंचल महाविषम महाधोर और निस्सार है । जिस प्रकार समुद्रका पार पाना कठिन है उसी प्रकार इस संसार समुद्रका भी जलदी पार नहीं पाया जा सकता एवं समुद्र जिस प्रकार अगम्य है उसी प्रकार यह संसार भी महा अगम्य है । संसारमें हलनेवाले जीव कभी शुभगतिको प्राप्ति नहीं कर सकते । ऐसे इस महाभयानक संसारमें धर्मरूपी जहाजमें न बैठनेवाले ये दीन जीव निरंतर छूटते और उछलते रहते हैं ॥८९-९०॥ प्रातःकालमें दर्भ-दामकी अनीपर लगो हुई जलकी धूंद जिस प्रकार चंचल है थोड़ी ही देरमें विनश जानेवाली है उसी प्रकार यह मनुष्योंका जीवन भी विनाशीक है, जलद नष्ट हो जानेवाला है जिस प्रकार बिजली अत्यन्त चंचल पदार्थ है क्षणभरमें विनश जानेवाला है उसी प्रकार मनुष्योंकी सामर्थ्य शरीर इन्द्रियोंकी सामग्री अत्यन्त चंचल है—देखते-देखते विनष्ट हो जानेवाली है तथा अशुभ कर्मका कारण होनेसे यह अशुभ है ॥९१॥ समय आदि कालके भेदोंसे प्रतिक्षण मनुष्योंकी आयु क्षीण होती रहती है तथा जिस प्रकार

क्षीयते यावदायुर्तं शक्तिश्च योवनोद्यमः । पद्मनि यावन्न हौकतेजरा ॥९३॥
 तावत्कार्यं तपोघोरं मुक्तियोचितरंजनं । दीक्षामादाय संछिद्य मोहपाशं मुमुक्षुभिः ॥९४॥
 इत्यादिचितनात्प्राप्य गवेगं द्विगुणं हृदि । भवांगभोगेहादी दीक्षादानमना नृपः ॥९५॥
 निराकांक्षी स्वराज्यादी साकांक्षी मुक्ति माधने । अगाद गृहमनुप्रेक्षाः संचितश्चन्मुहुर्मुहुः ॥९६॥
 प्रदाय विविना राज्यं सतां त्याज्यं स्वसूनवे । स्वभूतिं तृणवं यथो त्यक्त्वा श्रीनागपर्वतं ॥९७॥
 नृपोत्तमेः समं राजा तत्र श्रीनागयोगिनं । नागपाशोपम सर्वकषायाक्षारिबंधने ॥९८॥
 त्रिःपरीत्य प्रणम्योच्येमर्घ्ना पीत्वा वृषामृतं । यत्यास्येदुभवं हित्वा मोहान्निं सोऽभवत्सुखो ॥९९॥

छिद्रयुक्त हाथमें रक्खा हुआ जल प्रतिक्षण गिरता रहता है उसी प्रकार मनुष्योंके योवन आदि भी प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं ॥९२॥ इसलिए जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं—मोक्षके अविनाशी सुखका अनुभव करना चाहते हैं उन्हें जबतक आयु क्षीण न हो जाय, बराबर कार्य करनेको सामर्थ भी रहे, योवन अवस्था भी शरीरमें जाज्वल्यमान रहे, अपने-अपने विषयोंके भान वारायें इन्द्रियों द्वारा जबल रहे और जबतक बुद्धावस्था शरीरपर अपना भाव न डाले उसके पहिले ही गृहरूपी पापका सर्वथा त्यागकर देना चाहिए एवं दिग्म्बर जैनेंद्री दीक्षा धारणकर मोक्षरूपी लक्ष्मीके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला घोर तप तपना चाहिये ॥९३-९४॥

राजा वैश्वदणको बटवृक्षके अकस्मात् जल जानेसे संसार शरीर भोग और गृह आविसे बैराग्य तो हो ही गया था परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे उनके स्वरूपका विचार करनेसे और भी उसे दूना बैराग्य हो गया । संसार शरीर आदि पदार्थोंसे उसका सर्वथा ममत्व स्फूट गया एवं दिग्म्बरो दीक्षा धारण करनेके लिये उसने पूर्णरूपसे चित्तमें ठान ली ॥९५॥ वह राजा अपने राज्य आविसे तिराकांक्ष—विमुख हो गया और मुक्ति लक्ष्मीके सिद्ध करनेके लिये उसकी पूरी-पूरी अभिलाषा हो गई । बड़के बृक्षके पाससे प्रतिक्षण अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंका ही आरंबार चित्त-बन करता हुआ राजमहल तक पहुँचा ॥९६॥ राजमहलमें पहुँचकर राजा वैश्वदणने सज्जनोंको सर्वथा छोड़ने योग्य ऐसे राज्यको अपने पुत्रके लिये प्रदान किया एवं जीर्ण तृणके समान अपने ऐश्वर्यका सर्वथा परित्यागकर वह श्रीनामपर्वतकी ओर चल दिया । श्रीनाग पर्वतपर समस्त कषाय और इन्द्रियोंके वाँधनेमें सर्वथा नागपाशके समान अर्थात् जिनके पास कषाय और इन्द्रियोंके विषयकी लोलूपता फटकने तक नहीं पाती थी ऐसे श्रीनाग नामके मुनिराज विराजमान थे । अनेक बड़े-बड़े राजाओंके साथ

ततो वाह्यांतरं संगं त्रिशुद्धया परित्यज्य सः । राजभिर्बहुगि सार्वे प्रवद्राज महीपतिः ॥१००॥

इति सुकृतविपाकाद्वयंकर्मयोर्सारान्तिखिलवरसुखाङ्गीन् संभजित्वा मुमुक्षुः ।

पुनरपि शिवसिद्धयै स्वीचकाराशु दीक्षां सकलसुख निथः सोऽन्न नद्यान्मुनीशः ॥१०१॥

येनोच्चैः प्रविधाय सदूत्रतभ्यो रत्नत्रयाख्यं पुरा मुक्त्वा सीर्वयमहिनिशं नृजनितं दिव्याहमिद्रोद्धवं ।
तीर्थेश्वरमवाप्य घोरतपसा मुक्त्यंगना स्वीकृता वालत्वेऽपि स मल्लिनाथजितनपो दध्यात्स्वशक्तियम् ॥

इति श्रीमल्लिनाथनरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते वैश्ववणनृपदीक्षावर्णनो
नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥

राजा वैश्ववण उनके पास गया और भवितपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक मुका-
कर नमस्कार किया । मुनिराजके मुखरूपी अंद्रमासे शरनेकाला धर्मरूपी अमृत पीया
जिससे उसको भोग्यरूपी अ होन शांत हो गई और वह अपनेको मुखी अनुभव करने
लगा । उसी समय उसने मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके
परिप्रहका त्यागकर दिया एवं अनेक राजाओंके साथ उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण
कर ली ॥९७-१००॥

जिन मुनिराज वैश्ववणने पहिले तो तीव्र पुण्यके उदयसे समस्त उत्तम सुखके
समूद्र स्वरूप सारभूत धर्म कायोंको किया पोछेसे "अविनाशी अनुपम मोक्ष सुख प्राप्त
हो जाय" इस अभिलाषासे समस्त सुखोंकी स्थान स्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा धारण की ।
वे मुनियोंके शिरोमणि मुनिराज वैश्ववण चिरकाल इस संसारमें जयवंते होकर
बृद्धिको प्राप्त हों ॥१०१॥ जिन पवित्र भगवान मल्लिनाथने पहिले तो रत्नत्रय
नामका परम पावन ऋत पालन किया पोछे रात-दिन मनुष्य लोकके उत्तमोत्तम भोग
भोगे । तीर्थकर पद प्राप्त किया एवं बाल अवस्थामें ही घोर तपके द्वारा मोक्षरूपी
स्त्रीको स्वीकार किया वे मल्लिनाथ जिनेन्द्र हमें दिव्य शक्ति प्रदान करें ॥१०२॥

भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी प० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ
विरचित द्वचनिकामें रत्नत्रयका दूसरा परिच्छेद संपूर्ण हुआ ॥ २ ॥



तृतीयः परिच्छेदः

धातिकमर्मिरहृतारमन्तसगुणवारिषि । निजगत्सेवितं तौमि श्रीमल्लिंत द्वूषाप्तये ॥ १ ॥
 अथासौ निःप्रमादेन विनयेन स सद्विद्या । एकादशांग सिद्धांताब्धेः पारमगमन्मुनिः ॥ २ ॥
 अथाच्छाद्य स्वसामव्यं द्विषद्भेदं तपोऽनव्य । दुष्कर्मारामदावानलं कुर्यात्प्रत्यहं यतिः ॥ ३ ॥
 शून्यागारे इमशाने वा गुहाद्वी वा वनादिषु । सिहवच्च वसेन्नित्यं निजंने तस्कोटरे ॥ ४ ॥
 अथानाध्ययनकर्मणि निःप्रमादो जितेन्द्रियः । विष्टतेऽन्नानिषां नेत्रं स्वप्नेऽपि विकाशादिकान् ॥ ५ ॥
 स्थिरचित्तेन नित्यं स धर्म्यशुक्लानि मुक्ताये । सद्वधानानि करोत्यैव नासद्वधानानि जातुचित् ॥ ६ ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय नामक घारं घातिया कर्मरूपी बैरियोंको जड़से उखाड़कर फेंक देनेवाले, अनन्त गुणोंके समुद्र एवं तीनों लोकके जीव भक्तिपूर्वक जिमकी सेवा और पूजा करते हैं ऐसे भगवान् श्रीमल्लिनाथको मैं उनके अनुग्रह सुष्ठोंके वहाँ लिये सज्जित्वूर्त्तिं लक्ष्मकार करता हूँ ॥ १ ॥ समस्त प्रकारके प्रमादोंको छोड़कर विनयपूर्वक मुनिराज वंशवणने अंगोंका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें वे मुनिराज अपनी श्वेष बुद्धिसे ग्यारह अंग स्वरूप सिद्धांत समुद्रके पारको प्राप्त हो गये अर्थात् उन्हें ग्यारह अङ्गोंका परिपूर्ण ज्ञान हो गया ॥ २ ॥ वे परम धीर थीर मुनिराज अपनी सामर्थ्यको न छिपाकर प्रतिविन घारह प्रकारके तपोंको तपने लगे जो तप निर्दोष थे और दुष्कर्म रूपी वनको भस्म करनेके लिये दावानलके समान थे ॥ ३ ॥ वे मुनिराज शून्य खंडहरोंमें इमशान भूमियोंमें पर्वतकी गुफाओंमें और जनशून्य बृक्षोंकी लोलारोंमें सिहके समान निर्भय होकर निवास करते थे ॥ ४ ॥ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंपर परिपूर्ण रूपसे विजय पानेवाले और प्रमाद रहित वे मुनिराज सदा उत्तम ध्यान और अध्ययनमें प्रवृत्त रहते थे और स्वप्नके अन्दर भी वे राजकथा आदि विकथाओंका उल्लेख नहीं करते थे ॥ ५ ॥ आत्म, रौद्र, धर्म और शुक्लके भेदसे ध्यानके घार भेद माने जाते हैं इनमें आदिके ध्यान निवित हैं क्योंकि उनसे निवित गतियोंकी प्राप्ति होती है और अन्तके धर्म्य और शुक्ल ये दो ध्यान प्रशस्त हैं क्योंकि उनसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं । वे

१. छह प्रकारका बाहु और छह प्रकारका अभ्यन्तर हस प्रकार तपके बाहु भेद है अनशन अवमोदयं पुत्ति-संस्थान रसपरिस्काग विविजक्षम्यासन और कायमलेश में छह भेद बाहु तपके हैं और प्रायश्चित्त विनय वंशावृत्य स्वाध्याय और व्युपसर्ग ये छह भेद अभ्यन्तर तपके हैं मिलकर तप बाहु प्रकारका है । तत्त्वार्थ सूत्र अ० ९ सू० १९-२० ॥

शामखेट मटुंबारम्यदेशादि नवादिषु । एकाकी वायुवस्त्रित्वं विहरत्येव शीरषीः ॥७॥
शंकादिदोषनिर्मुक्तां निश्चंकादिगुणांकितां । तत्त्वार्थंश्रद्धया सोऽचाद्यर्थान्स्यविशुद्धितां ॥८॥
दर्शनज्ञानचारित्रपसां तद्वतां सदा । हृदा च वपुषा वाचा भुक्त्ये स विनयं भजेत् ॥९॥
शीलवत्समूहं निरतिचारं पालयेत् । निरंतरं श्रुतज्ञानं पठेत्संपाठ्येत्सतां ॥१०॥

मुनिराज वैश्वदण मोक्ष प्राप्तिपूर्ण अस्तित्वात् उद्दिष्ट विद्वान् वर्णन ध्यान—
धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान का ही चित्तवन करते थे, आत्म ध्यान और रौद्र ध्यान-
रूप अशुभ ध्यानोंका कभी भी अपने चित्तमें विचार न लाते थे ॥६॥ वे शीर बुद्धिके
धारक मुनिराज जिस प्रकार पद्मन सर्वत्र अकेला विचरता रहता है उसी प्रकार गाँव
स्थेट मटुंब जंगलके प्रदेश पर्वत और वन आदिसे अकेले ही विहार करते फिरते थे
निर्भयबुद्धिके कारण किसीका भी संग नहीं चाहते थे ॥७॥

दर्शनविशुद्धि १ विनयसंपन्नता २ अतीचार रहित शीलवत्सोंका पालना
३ सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना ४ संवेग रखना ५ शक्तिके अनुसार बान करना ६
शक्तिके अनुसार तप तपना । ७ साधुसमाधि ८ वैयाकृत्य करना ९ अहंत भगवानकी
भक्ति करना १० आचार्य भगवानकी भक्ति करना ११ शास्त्रोंके बहुत जानकार
उपाध्यायोंकी भक्ति करना १२ प्रवचनकी भक्ति करना १३ छह आवश्यकोंका
पालन करना १४ मोक्षमार्गकी प्रभावना करना १५ और बात्सल्यभाव रखना
१६ ये सोलह भावनाएँ हैं । इन सोलह प्रकारकी भावनाओंके भानेसे तीर्थंकर पदकी
प्राप्ति होती है मुनिराज वैश्वदणने भी इस प्रकार सोलह भावनाओंका भाना प्रारंभ
कर दिया—

मुनिराज वैश्वदणका जीवादिपदार्थोंका अद्वान, शंका कांक्षा आदि बोधोंसे
रहित था एवं निःशक्तितत्व और निकांक्षितत्व आदि गुणोंसे भूषित था इसलिए सदा
सम्यगदर्शनके अन्दर विशुद्धता रहनेके कारण उनके दर्शन विशुद्धि भावना थी ॥८॥
सम्यगदर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंका तथा इन
चारों प्रकारकी आराधनाओंको पालन करनेवालोंका दे अच्छी तरह विनय करते थे
इसलिये उनके विनय भावनाका पालन था ॥९॥ किसी प्रकार शीलवत्सोंमें अतीचार

१. दर्शनविशुद्धिविनयसंपन्नताशीलवत्सेष्वनतिचारोऽभीक्षणज्ञानोपयोगसंवेगो शक्तितस्यागतपसी साधुसमाविर्वेद-
वृत्त्यकरणमहेदाचार्यवहुश्रुतप्रवचनभवितरावस्यकापरिहाणिर्मार्गंप्रभावमाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकर-
त्वस्य ॥२४॥ अ० ६ । तत्त्वार्थसत्र ।

देहभोगभवादौ स संवेग चितयेदूषृदि । सिद्धांतादिमहादानं दत्तेऽ ग्यनुग्याय सः ॥११॥
शक्त्या खिलतपांस्येव करोति कर्महानये । साधूनां स समाधि च प्रत्यूहपीडितात्मनां ॥१२॥
सूर्योदियोगिनां वैयावृत्त्य स दशधा भजेत् । अहंदाचार्य वर्णाणां सोऽधाद्वक्षित्रियोगतः ॥१३॥
बहुश्रुतवतां भावैः प्रवचनस्य श्रुताप्तये । मनोवाक्काययोर्गेश्य भक्ति मुक्तिसखीं व्यवात् ॥१४॥

न लग जाय इस रूपसे वे शील व्रतोंका पालन करते थे इसलिये उनके अतीचार रहित शील व्रतोंका पालनारूप भावना थी वे श्रुतज्ञानका निरन्तर अध्ययन करते थे और दूसरोंको अध्ययन कराते थे इसलिये उनके सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना रूप भावना थी ॥१०॥ शरीर भोग और स्त्री पुत्र आदि समस्त संसारके पदार्थसि उन्हें प्रति समय संवेग रहता था । इसलिये वे संवेग भावनाका पालन करते थे । अन्य मुनियोंको सिद्धान्तका रहस्य प्रदान करते थे इसलिये शक्तिके अनुसार दान देना रूप उनके भावना थी । ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मको जड़से नष्ट करनेके लिये वे शक्तिको न छिपाकर समस्त तप तपते थे इसलिये उनके शक्तिके अनुसार तप भावनाका पालन था । मुनियोंके तपमें किसी प्रकारका विघ्न आकर उपस्थित हो जाय और उससे उनके आवश्यक कर्ममें किसी प्रकारकी रुकावट उपस्थित हो जाय तो उनका समाधान कर देना समाधि है । मुनिराज वै वण अच्छी तरह साधुओंको समाधि करते थे इसलिये वे पूर्णरूपसे साधु समाधि नामक भावनाके पालक थे ॥११-१२॥ आचार्य १ उपाध्याय २ तपस्वी ३ शैक्ष्य ४ ग्लान ५ गण ६ कुल ७ संग ८ साधु ९ और मनोज १० इस प्रकार ये बश भेद साधुओंके होते हैं । इन दश प्रकारके साधुओंको दुःख उपस्थित होनेपर दुखके दूर करनेकी इच्छासे जो टहल चाकरी करना है वैयावृत्य करना रूप भावना मुनियोंकी बड़े प्रेमसे टहल चाकरी करते थे इसलिये वैयावृत्यकरण नामकी भावनाका भी उनके अखंडरूपसे पालन था । वे मुनिराज मन-धन और कायकी शुद्धि रखकर अहंत और आचार्योंकी पूर्ण भक्ति करते थे इसलिये उनके अहंत भगवानकी भक्ति और आचार्य भगवानका भक्ति ये दोनों भावनाये भी

१. मुनिगणतां मध्यारणं समाधिः भाष्टापाराग्निप्रशमनवत् ॥८॥ जिस प्रकार अन आदिसे परिपूर्ण कोठरमें किसी कारण से आग लग जाय तो उनका बुझाना अत्यन्त डाकारता करनेवाला है इस बुद्धिसे वह बुझ दी जाती है उसी प्रकार अनेक पकारके बन और शीलोंके पालन करनेवाले साधुओंके तरामें यदि किसी रूपसे विष्ण उपस्थित हो जाय तो उसे दूरकर साधुओंका समाधान कर देना साधुसमाधि है या १० वा १० २६६ ।

प्रमादेन बिना यागी षडावस्यकपूर्णतां । काले काले करोत्येव तद्वानि न च जातुचित् ॥१५॥
जिनशासनमाहात्म्यं व्यक्तीकुर्यात्पश्चिदा । वत्सलत्वं विधत्ते प्रवचनस्य च दृग्भूषां ॥१६॥
एतानि कारणान्येव तीर्थकृन्नामकर्मणः । भावदामास सिद्धये त्रिशुद्धधा हृदि स बोहश ॥१७॥

अखण्डरूपसे थीं । वे मुनिराज श्रुतज्ञानकी प्राप्तिके लिये बहुत शास्त्रोंके जानकार उपाध्यायोंकी और शास्त्रोंकी भी मन वचन काय रूप योगोंकी शुद्धतासे मोक्षरूप स्त्रीकी सखी स्वरूप अखण्ड भक्षि करते थे इसलिए उनके बहुश्रुतभक्षि और प्रवचनभक्षि नामकी भी दोनों भावनाओंका अखण्डरूपसे पालन था ॥१४॥ सामायिक १ चतुर्विशतिस्तत्व २ बंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ और कायोत्सर्व ६ ये छह भेद आवश्यक क्रियाओंके माने हैं । जहाँपर हिंसादि समस्त पापयोगोंकी निवृत्ति है वह सामायिक नामका आवश्यक है । चौबाँसों तीर्थकरोंके गुणोंका कीर्तन करना चतुर्विशतिस्तत्व नामका आवश्यक है । मन वचन कायकी शुद्धि रखना दोनों प्रकारके आसनोंका उपयोगमें लाना, चारों दिशाओंमें चारबार मस्तकका सुकाना और प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके भेदसे बारह आवर्त्त करना बंदना है, भूतकालमें लगे हुए दोषोंका परिहार करना प्रतिक्रमण, भविष्यत्में लगनेवाले दोषोंका परिहार करना प्रत्याख्यान एवं कुछ परिमित कालका संकल्प कर “यह मेरा है” इस रूपसे शरीरसे ममत्व बुद्धिका त्याग कर देना कायोत्सर्व है । वे मुनिराज प्रमादको सर्वथा दूर कर जिस आवश्यक क्रियाका जिस समयमें विधान था उसी समयमें परिपूर्ण रूपसे करते थे किन्तु किसी आवश्यक क्रियाकी हानि वे कभी नहीं करते थे इस रूपसे छहों आवश्यकोंका पालन होनेसे वे ‘छह आवश्यकोंका नियमसे पालना’ नामकी भावनाको अच्छी तरह पालते थे ॥१५॥ वे मुनिराज नाना प्रकारके उग्र तथोंको तपकर भगवान जिनेश्वरके शासनका माहात्म्य भी अच्छी तरह प्रदर्शन करते थे इसलिये मार्ग प्रभावना नामकी भावना भी उनके अच्छी तरह पालत होता था तथा सम्यग्दृष्टि पुरुषोंमें गाय बच्छाके समान प्रेम रखना प्रवचन वत्सलत्व नामकी भावना है । वे मुनिराज साधमों भाइयोंमें गो बच्छाके समान अत्यन्त प्रेम रखते थे इसलिये प्रवचनवत्सलत्व नामको भावना भी उनके अखण्ड रूपसे पालन था ॥१६॥ इस प्रकार वे मुनिराज तीर्थकर

१. राष्ट्रवार्तिक पृष्ठ संख्या २६६। २ वत्से वेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्व ॥१३॥ पृष्ठ संख्या २६७। ३ बहिंसा आदि पौच महावन, ईर्षा आदि पौच सामति, पौचों इन्द्रियोंका दमन, ऊपर कहे छह आवश्यक २१ यावज्जीवन स्नानका स्पाग २२ भूमिपर शयन २३ वस्त्रस्पाग २४ केशलोच २५ एक बार लघु-भोजन २६ दंतधावन नहीं करना २७ खड़े होकर आहार २८ वे अद्वाईस मूल्युण हैं ।

तेषां माहात्म्ययोगेन तीर्थकृतकर्म सोज्ज्वलं । वबंधानंतशार्माभिं श्रेलोक्यक्षोभकारणं ॥१८॥
 पालयन्त्रिरतीचारान् सर्वादि मूलगुणान्मुनिः । अनेकद्विसमूहं स प्रापोग्रतपसा चिदा ॥१९॥
 तपस्यन् सुचिरं ज्ञात्वा स्वल्पायुरतिद्वर्लभं । ततोऽते स ममाद्यादिसिद्धं सन्यासमाददौ ॥२०॥
 सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपसां मुक्तिदायिनां । आराधनां परा आराधथत्येवाघहानये ॥२१॥
 सर्वान् परीषद्वान् जित्वा सत्त्वोत्साहकलाद् बली । कृशदेहोऽपि घते न मानकृ क्लेशं क्षुधादिभिः ॥२२॥
 आर्तरीद्रद्वयं हत्वा धर्म्यशुक्लात्तमानसः । स्थिरचित्तेन योगी स महाद्यानं सदा भवेत् ॥२३॥
 ध्यानमादौ करोत्येव पञ्चानां परमेष्ठिनां । मनशुद्धये च तत्वानामामुप्रेक्षादिचित्तकः ॥२४॥

नामकी प्रकृतिके असाधारण कारण दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके भन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक सदा अपने मनमें भाले रहते थे । दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके भानेसे उनके अनंते कल्याणोंका करनेवाला और तीनों लोकको खलबला डालनेवाला तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बैंध गया ॥१८॥ सर्वथा अतीचारोंसे रहित समस्त मूलगुणोंको पालन करनेवाले उन मुनिराज वैश्ववणके सम्यग्ज्ञानपूर्वक उत्तम तप तपनेसे अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका समूह प्रफट हो गया । इस प्रकार बहुत काल तक तप करते-करते मुनिराज वैश्ववणको यह ज्ञान हो गया कि मेरी आयु बहुत हो कम रह गई है और इस प्रकारकी उत्तम आयुका पाना द्वुर्लभ है उन्होंने अन्त-कालमें समाधि आदिकी सिद्धिके लिये निर्मल परिणामोंसे संन्यास धारण कर लिया ॥२५-२०॥

उन मुनिराजने समस्त पापोंके नाशके लिये साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्वाचित्र और तप इन चारों आराधनाओंका भक्तिपूर्वक बड़े उत्साहसे भावना किया ॥२१॥ क्षुधा तृष्णा शोत उष्ण आदि समस्त परीषद्वाहोंको उत्साह और बलसे जीतनेके कारण यद्यपि उन मुनिराजका शरीर नितान्त कृश हो गया था तथापि भूख प्यास आदिके कारण उनके चित्तमें रंचमात्र भी क्लेश न था, परमात्मपदकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा उनका चित्त प्रसन्न रहता था ॥२२॥ मुनिराज वैश्ववणके चित्तसे आर्त और रोद्र ध्यान सर्वथा नष्ट हो चुके थे सदा धर्म-ध्यान और शुक्लध्यानका ही चित्तवन था इसलिये चित्तको स्थिरकर बे सदा इन्हीं द्वीनों प्रशस्त ध्यानोंका चित्तवन करते रहते थे निन्दित ध्यानकी ओर स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि नहीं जाती थी ॥२३॥ अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंके चित्तवन करनेवाले बे मुनिराज मनकी विशुद्धताके लिये सबसे पहिले अहंत सिद्ध आचार्य

ततः स्थिरमना ध्यानो चिदानन्दमयं परं । अनंतगुण कर्तरं ध्यायेत्स्वात्मानमंजसा ॥२५॥
तेन ध्यानेन योगीद्रः प्रसन्नमनसा दश । प्राणान्विद्वहितानते विसर्ज समाधिना ॥२६॥
रत्नब्रह्मतपोयोगमहापुण्योदयात्तः । सोऽनुतरत्रिमातेषु हृपराजितनामनि ॥२७॥
शिलासंपुटमध्यस्थे दिव्ये पल्यककोमले । शुक्लरत्नहृतध्वांते अहर्मिद्रो बभूव हि ॥२८॥
घटिकाद्यकालेन प्राप्य संपूर्णयोवनं । दिव्यस्त्रभूषाद्य दिव्यं त्यक्तोपमम् महत् ॥२९॥
उत्थाय शयनाद्येवो वीक्षते स्म दिशोऽखिलाः । चाहर्मिद्रविमानानि महदीन् विस्मिताश्रावः ॥३०॥
ततोऽप्यनंतरं प्राप्यवधिज्ञानं स तत्कर्ण । तेनाज्ञासीद्धि सर्वं प्रागजन्मकृततपः फलं ॥३१॥

उपाध्याय और सर्वं साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंका ध्यान करते थे, पश्चात् जीव अजीव आवि तत्त्वोंका ध्यान करते थे ॥२४॥ पाँचों परमेष्ठि और तत्त्वोंके चिन्तवनके बाद वे मुनिराज मनको सर्वथा निश्चल कर चिदानन्द चंतस्य स्वरूप और अनंत गुणोंके स्थान अपनी आत्माका भले प्रकार ध्यान करते थे ॥२५॥ स्पर्शन रसना प्राण चक्र और शोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ मनोबल वस्त्रनवल और काष्ठबल ये तीन बल एवं इवासोऽच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं ।^१ इस प्रकार ध्यान करनेवाले योगियोंके इन्ह मुनिराज वैश्रवणने प्रसन्न चित्त होकर अन्तमें समाधिके द्वारा समस्त लोगोंका हितकारी इन दश प्राणोंका परित्याग किया ॥२६॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्-शारित्र और तपके सम्बन्धसे मुनिराज वैश्रवणके महा पुण्यका उदय हो चुका था इसलिये उस तीव्र पुण्यके उदयसे उन्होंने विजय वैजयंत जयन्त अपराजित और सदर्थसिद्धि ये जो पाँच अनुत्तर विमान हैं उनमें चौथे अपराजित विमानमें जन्म लिया एवं वहाँ पर शिलाके मध्यभागमें एक अत्यन्त दिव्य कोमल सेज बनी हुई है जो कि अपने महा उज्ज्वल सफेद रत्नोंकी प्रभासे समस्त अंधकारको नष्ट करनेवाली है उस कोमल सेज पर उत्पन्न हो अहर्मिद्र पदका लाभ किया ॥२७-२८॥ अपनी उत्पत्ति कालके दो घड़ी बाद उस अहर्मिद्रने भूषित, दिव्य अनुपम और महान् ऐसी पूर्ण दिव्यमाला वस्त्र और यौवन अवस्थाको प्राप्त भूषणोंसे किया हो । इसके बाद महान् ऋद्धिका धारी वह अहर्मिद्र देव उस अनुपम सेजसे उठा और आश्चर्यसे विस्मित उसने समस्त विशा और अहर्मिद्रोंके विमानोंको बड़े ध्यानसे देखा । उसके बाव उसे काणभरमें अवधिज्ञान प्राप्त हो गया एवं “पहिले जन्ममें मैंने रत्नब्रह्म ब्रत और उत्तम

१. वृद्धि इन्द्रियपाणा मनवस्त्रकामेण तिज्ञि बलपाणा । आणविष्वाणपाणा आउगपाणव हुंति वहपाणा ॥ यह पाणा मूल प्रतिकी टिप्पणीमें है इसका अर्थ ऊपर लिखा है ।

अहो पवय व्रतस्येदं माहात्म्यमद्भुतोदर्य । अत्रेति हृदि सचित्य धर्म दध्यात्परां भर्ति ॥३२॥
 ततोप्यादो जिनागारे गत्वानेकधिसंकुलः । अहमिद्रेः सम दिव्यसामग्या श्रीजिनेशिनां ॥३३॥
 महामहं चकारोच्चैः सकल्पोत्पलवस्तुभिः । निरोपम्यैर्महानीरादिफलातिर्भनोहरे: ॥३४॥
 भक्तस्या नुतिस्तवाद्यैश्च विधायोत्सवमद्भुतं । उपाज्यं बहुधा पुण्यं निजस्थानमगात्तः ॥३५॥
 विशुद्धे स्फटिके रम्ये विमानेऽत्यन्तसुन्दरे । विश्वर्द्धिसंकुदे सारे संख्योजनविस्तरे ॥३६॥
 सद्गुणोपवनादी च क्रीडाद्वौ तुंगधामनि । अहमिद्रेः सम सोऽन् रमतेस्म ववचिन्मुदा ॥३७॥
 अहमिद्रैरनाहृतमिलितैः सार्थमात्मवान् । क्वसित्स कुष्ठते गोष्ठीं महाधर्मभवांपरन ॥३८॥
 निसर्गं सुन्दरे तत्रास्थानेऽतीव मनोहरे । या रतिजर्जिते तेषां ना नोऽन्यथ ववचिद्भुवि ॥३९॥

तपका आचरण किया था उसका यह फल है ।" ऐसा अवधिज्ञानके बलसे जान लिया जिससे इसका समस्त आश्चर्य दूर हो गया ॥२९-३१॥

ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि व्रतका माहात्म्य बड़ा ही आश्चर्यकारी है देखो ! कहाँ तो राजा वंशवणका जीव मुनि अवस्थामें था और कहाँ जाकर अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें महान् शृङ्खिका धारक अहमिद्र हो गया इसलिये सत्पुरुषोंको चाहिये कि ये यह परम आश्चर्यकारी व्रतका माहात्म्य अच्छी तरह विचारकर सबा अपनी उत्कृष्ट बुद्धिको धर्मके अन्दर ही लगावें—किसी भी अवस्थामें धर्मके स्वरूपको न छिसारें ॥३२॥ जिस समय उस अहमिद्रको अपने स्वरूपका पूर्णरूपसे ज्ञान हो गया वह सबसे पहिले भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें गया और वहाँ स्मरण करते ही सामने आनेवाली अनुपम मनोहर ऐसी जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप और फलरूप दिव्य सामग्रीसे बड़ी-बड़ी शृङ्खियोंके कारण अहमिद्रोंके साथ भगवान जिनेन्द्रकी भक्तिपूर्वक महा पूजा की ॥३३-३५॥ महापूजाके बाद बड़ी भक्तिसे भगवानको नमस्कार किया । ललित शब्दोंमें स्तुति की । अत्यन्त आश्चर्य करनेवाला उत्सव किया । जिससे उसे बहुत प्रकारके पुण्यकी प्राप्ति हुई पश्चात् वह अपने स्थानस्वरूप विमानमें आ गया ॥३५॥ वह अहमिद्रका जीव निर्मल स्फटिकमयी रिङ्गानेवाले अत्यन्त सुन्दर, समस्त प्रकारकी शृङ्खियोंसे व्याप्त उत्कृष्ट और संख्यात योजन चौड़े अपने विमानमें उत्तमोत्तम थन और उपवन आदिमें क्रीड़ा पर्वतोंमें और ऊँचे-ऊँचे महलोंमें अहमिन्द्रोंके साथ मनमानी आनन्द क्रीड़ा करता था, कभी-कभी बिना बुलाये अपने आप आये हुए अहमिन्द्रोंके साथ महाधर्म-जैनधर्मपर विचार करने-वाली गोष्ठी करता था ॥३६-३८॥ स्वभावसे ही सुन्दर अतएव मनोहर उस

अहमिद्रोऽहमिद्रोऽस्म मत्तो नान्यो हरिमहान् । वितक्येति हृदा ते लभते स्वोन्ततिर्गुणं ॥४७॥
समशोगोपभोगाछ्याः सादृश्या दिव्यमूर्त्यः । समज्ञानकलातेजःकांतिकल्पाणसदगुणाः ॥४८॥
समप्रेमभृद्धोऽशाः समधर्मपरायणाः । समानोत्कृष्टसच्छुक्ललेश्याः शुद्धाशयान्विताः ॥४९॥
समाचरणपुण्योत्थविषाक्तेनातिसुन्दराः । सादृशा अहमिद्रास्ते भवति भुक्तिगामिनः ॥५०॥
यत्सुखं जायते स्वर्गं शक्ताणां देवतोभवं । तस्मत्तेषामसंख्यातं निःप्रबीचारभेद तत् ॥५१॥

विमानमें जितना उन अहमिद्रोंका घनिष्ठ प्रेम था उतना पुणियोंके अन्य किसी स्थानपर उनका प्रेम न था ॥३९॥

बहुपर अहमिद्रः अहमिद्रः अर्थात् मैं इन्हं हूँ, मैं इन्हं हूँ मुझसे बढ़कर कोई भी इन्हं नहीं, सदा ऐसा विचार हृदयमें उछलता रहता है इसलिये सर्वदा ऐसा मनके अन्वर किचार रखनेसे वे अपनी उन्नतिसे उत्पन्न स्वाधीन सुखका भोग करते हैं ॥५०॥ समस्त इन्द्रोंके भोग और उपभोग समान रूपसे होते हैं—रंचमात्र कमी-वेशी नहीं होती । उनकी विव्यमूर्ति भी समान होती है—जो एकको मूर्ति होगी वही दूसरेकी होगी, रंचमात्र भी उसमें भेद नहीं हो सकता । समस्त अहमिद्रोंका ज्ञान भी समान रहता है । कला प्रताप कीति कल्प्याण और उत्तम गुण भी सबोंके समान ही होते हैं । सबोंका प्रेम भी समान ही होता है । महान् ऋद्धियोंका स्वामी-पन भी सबोंका एकसा है । धर्ममें तत्परता भी सबोंका समान है । सदा शुद्ध आशय रखनेवाले उन अहमिद्रोंके उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या भी समान हैं तथा समान रूपसे चारित्रके पालनेसे जायमान पुण्यके विषाक्तसे समस्त अहमिद्र अत्यन्त सुन्दर होते हैं इस रूपसे समस्त अहमिद्र सब बातोंके समान हैं किसीमें किसी प्रकारकी हीनाधिकता नहीं तथा वे समस्त अहमिद्र मोक्षगामी हैं अधिकसे अधिक दो बार मनुष्य भव आरण कर वे नियमसे मोक्ष चले जाते हैं ॥४१-४३॥ स्वर्गोंके अन्वर जो सुख देव-रूपसे इन्द्रोंको प्राप्त हैं उस सुखको अपेक्षा अपराजित विमानवासी अहमिद्रोंका सुख

१. विजयादिषु द्विचरमा ॥२६॥ अर्थात् विजय आदि चार विमानवासी देव द्विचरम हैं, अधिकसे अधिक दो बार मनुष्यसत्र आरणकर नियमसे मोक्ष चले जाते हैं सर्वार्थसिद्धि विमानवासी एक भवावतारी ही है । क० ४० ४० सत्त्वार्थसूत्र ।

२. कायप्रबीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ अर्थात् सौघर्म ऐशान स्वर्गनिवासी देवोंमें कायजनित प्रबीचार—संधुन देवन है “शोषाः स्वर्णरूपशब्दमनः प्रबीचाराः” ॥८॥ अर्थात् पहिले और दूसरे स्वर्गोंके सिवाय अन्य स्वर्गोंके देवोंमें स्पृश्य आदि जनित प्रविचार हैं । तथा “परेऽप्रबीचाराः” ॥९॥ अर्थात् सोलह स्वर्गोंके अपरके देव प्रबीचार रहत हैं—उनके प्रबीचार जनित किसी प्रकारका सुख नहीं । सत्त्वार्थसूत्र क० ४१ ।

सर्वोत्कृष्टं सुखं यच्च संसारे पुण्यसंभवं । अत्यन्तं विद्यते तेषां तत्र शांतिरंगं ॥४५॥
 तेजः पुंजनिभ्य दिव्यं शरीरं सत्यं विद्यते । निःसागरं सुन्दरं विश्वस्त्रभूषांवरशोभितं ॥४६॥
 हस्तोच्छ्रुतिष्वरं रम्यं कांतिष्ठोतितदिमुखं । पुण्यमूर्तिरिवात्यतसुभगं विक्रियातिगं ॥४७॥
 नयस्त्रिशास्त्रमुद्रायुः स शुभध्यानतत्परः । अस्मदनयनो रेजे ध्यानारुढो मुनिर्यथा ॥४८॥
 नयस्त्रिशास्त्रहस्त्रोक्तवस्त्रराणां व्यतिक्षेपे । मनेसा दिव्यमाहारमादतेऽतिसुखप्रदं ॥४९॥
 अतिक्रान्ते नयस्त्रिशास्त्रकाणां लभते मनाक् । उच्छ्रवासं सोऽहमिद्रोऽतिसुगधीकृतदिव्यजं ॥५०॥

अत्यन्त्यात् गुणा अधिक हैं और वह सुख प्रबोचार—मैथुनको अभिलाषासे रहित है अर्थात् सोलह स्वर्गं पर्यन्त देवोंका सुख हो जातीचारलक्षित है । इनसे शौधर्य और ऐशान स्वर्गनिवासी देव मनुष्योंके समान शरीरसे मैथुन सेवन करते हैं आगे के स्वर्गों-के देवोंमें कोई कोई अपनी देवांगनाओंके स्पर्शमात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं कोई-कोई रूप देखकर तो कोई-कोई भूषणोंका शब्द सुनकर एवं कोई-कोई अपनी देवांगनाओंका मनमें स्मरण करनेसे ही तृप्त हो जाते हैं किन्तु सोलह स्वर्गोंके आगे के देवोंमें प्रबोचारका कोई सम्बन्ध नहीं देव प्रबोचार रहित हैं इसलिये अपराजित विमानवासी देव भी प्रबोचाररहित दिव्य सुखके भोगने वाले हैं ॥४४॥ पुण्यसे जायमान संसारमें जो भी उत्कृष्ट सुख माना गया है वह समस्त शान्तिस्वरूप और अन्तरंगसे जायमान सुख अहमिन्द्रोंके मौजूद है ॥४५॥ अनिराज कंथवणके जीव अहमिन्द्रका शरीर साक्षात् तेजका पुंज ही है क्या ऐसा था । स्वभावसे ही सुन्दर था एवं सब प्रकारकी माला उत्तमोत्तम भूषण और वस्त्रोंसे अत्यन्त शोभित था । तथा वह एक हाय ऊँचा था । महामनोहर था । अपनी अनुपम कांतिसे समस्त विशाओंके मुखोंको जगमगाने-वाला था, पुण्यकी साक्षात् मूर्तिके समान—अत्यन्त सुभग था और विक्रियासे रहित था ॥४६-४७॥ उस अहमिन्द्रकी तेतीस सागरकी आयु थी । सदा वह शुभ ध्यानमें लीन लगा रहता था और उसके नेत्र स्पंदन क्रियासे रहित निनिमेष थे इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानो ध्यान क्रियामें तल्लीन यह साक्षात् भुनि है ॥४८॥ जिस समय तेतीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाते थे उस समय वह मनसे संकल्पित दिव्य आहार ग्रहण करता था जो कि अत्यंत सुख प्रबान्न करनेवाला होता था ॥४९॥ वह पुण्यात्मा अहमिन्द्र जब तेतीस पक्ष बीत जाते थे तब थोड़ासा उच्छ्रवास लेता था और वह इतना उत्कट सुगंधित होता था कि उसकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंके समूह महुक जाते थे—समस्त विशाओंमें सुगंध ही सुगंध फैल जाती थी ॥५०॥ वह महा-

लोकनाड्यंतरालस्थं मूर्ति वस्तु चराचरं । सर्वजानाति शकासौ सावधिज्ञानशक्षुषाः ॥५१॥
समर्थः स्वावधिज्ञानसमझेत्रे सुरोत्तमः । विक्रियद्विवलात्कर्तुं गमनाद्यस्तिलक्रियां ॥५२॥
निसर्गाद्यरचित्तोऽसौ सर्वकार्यादिवर्जितः । न कुर्याद्विक्रिया जातु निराशो गमनादि च ॥५३॥
स्थानस्थोऽपि जिनेशानां कृत्रिमाकृत्रिमाणि सः । ज्ञात्वा ज्ञानेन विकानि नमति स्म निरंतरं ॥५४॥
पञ्चकल्याणकालेऽपि जिनेद्राणां वृषाप्तये । प्रणम्य विनये भवत्या कुर्यात्तत्रस्थ एव हि ॥५५॥
मुनीनां ज्ञाननिर्बणिकालं ज्ञात्वावधेवलात् । नमस्कारं सदा कुर्यान्मूल्या भवितमराङ्गुतः ॥५६॥
इत्यादि बहुधा धर्मं भजमानस्तथा सुखं । निमग्नस्तत्र शमाव्यौ सोऽस्थाच्चित्तातिगो महान् ॥५७॥

प्रतापो अहमिन्द्र तीन सौ तेतालीस योजन घनाकार लोक नाड़ीके अन्दर जितने स्थावर जंगम मूर्तिक पदार्थ भरे हुए हैं अपने दिव्य अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे भले लोक नाड़ीके अन्दरका ऐसा कोई भी मूर्तिक पदार्थ बाकी नहीं बचा था जिसे वह अपने अवधिज्ञानसे न जानता हो ॥५१॥ उस अहमिन्द्रके अवधिज्ञानका विषय लोकनाड़ी बतलाया है इसलिये जिनका क्षेत्र लभके अवधिज्ञानका विषय है उतने क्षेत्र तक वह अपनी विक्रिया शृङ्खिके बलसे गमन आगमन आदि समस्त क्रियाओंके करनेमें समर्थ था तथापि वह स्वभावसे ही स्थिर चित्तका धारक था समस्त कार्य आदिसे रहित था कोई भी उसे कार्य करना न था इसलिये कभी भी विक्रिया शक्तिको काममें नहीं लाता था एवं कहीं भी जाने आनेकी उसकी इच्छा न होती थी इसलिये वह कहीं पर जाना आना नहीं करता था अपने निजी स्थानमें ही अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंको करता हुआ आनन्दसे रहता था ॥५२-५३॥ अपने स्थान पर रहकर केवल क्रीड़ा कौटूहलोंमें ही वह दिन नहीं बिताता था किन्तु अपने अवधिज्ञानके बलसे कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंको अच्छी तरह जानकर उनमें विराजमान भगवान जिनेन्द्रके प्रतिबिम्बोंको सदा भवितपूर्वक नमस्कार करता था ॥५४॥ जिस समय तीर्थंकरोंके गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्बाणरूप पांचों कल्याणोंका समारोह होता था उस समय भी वह पुष्यात्मा अहमिन्द्र धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे तीर्थंकरोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था और उनके गुणोंमें चित्तके अन्दर बड़ी भारी विनय करता था ॥५५॥ जिस समय उसे अवधिज्ञानके बलसे सामान्य मुनियोंके ज्ञान कल्याणका भी पता लगता था उस समय उन्हें भी वह शक्तिके भारसे नशीभूत हो सदा मस्तक शुकाकर नमस्कार करता था ॥५६॥ इस प्रकार अनेक प्रकारसे धर्मका आराधना करता हुआ वह महान् शृङ्खिका धारी अहमिन्द्र कल्याणके समुद्रस्वरूप उस अहमिन्द्र पदके सुखमें सदा निमग्न

वथात् भारते क्षेत्रे महापूरुषसंभृते । वंगदेशोऽतिविल्यातो भवेद्भक्तिरो महान् ॥५८॥
यत्र पत्तनसत्त्वेऽपुरुषामादयो बुद्धेः । धार्मिकैश्च जितागरेभाति धर्मकिरा इव ॥५९॥
वनानि तृप्तिकर्तुणि रम्यानि सफलानि च । आजते यत्र तुरेणानि यतेराचणानि वा ॥६०॥
तृष्णाशमपिनोदाश्च स वो वाप्यादयः पराः । गंभीराः शोतकाः स्वच्छा मुन्यावया इवाचभुः ॥६१॥

रहता था एवं उस समय उसे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ी थी—वह वहाँ निविष्ट हो सुखसे काल व्यतीत करता था ॥५७॥

अनेक महापूरुषोंके स्थान स्वरूप इसी भरत क्षेत्रमें अत्यन्त मनोहर एक बंग (बङ्गाल) देश है जो कि पृथ्वीपर अत्यन्त विल्यात है धर्मका परम स्थान है और धन-वान्य आविसे समुद्र होनेके कारण अत्यंत महान् है ॥५८॥ उस समय उसे देशके पत्तन लेट पुर और गांव आविमे धर्मत्मा लोग निवास करते थे । जगह-जगह भगवान् जिनेंद्रके मन्दिर जगमगाते थे इसलिये वह देश उस समय धर्मकी खानि सरीखा जान पड़ता था । इस बंग देशके स्वभाव सिद्धवन मुनियोंसे आचार सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार मुनियोंके आचार मनोहर आनन्दको प्रदान करनेवाले हैं उसी प्रकार ये बन भी अत्यन्त मनोहर थे । जिस प्रकार मुनियोंके आचार फलविशिष्ट होते हैं अर्थात् स्वर्ग मोक्ष आदि फलोंके प्रदान करनेवाले होते हैं उसी प्रकार ये बन भी फल विशिष्ट थे नारंगो संतरा अनार अंगूर आदि उत्तमोत्तम फलोंसे सदा लबे रहते थे एवं जिस प्रकार मुनियोंके आचार तुंग—उच्च होते हैं उसी प्रकार ये बन भी महा ऊचे-ऊचे और विशाल थे ॥५९-६०॥ उस बंगदेशकी वापियाँ भी मुनिराज-के चित्तोंके समान एवित्र थीं क्योंकि जिस प्रकार मुनियोंके चित्त तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित हैं उसी प्रकार ये वापियाँ भी तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित थीं अर्थात् उन्हें देखते ही लोगोंकी तृष्णा और उससे जायमान क्लेश पूर भाग जाता था । मुनियोंके चित्त परम शीतल और स्वरूपमें लीन रहते हैं उसी

१. ये वैमानिक देवोंमें विशिष्ट जातिके देव हैं । इनका निवासस्थान ब्रह्मस्वर्गके अन्तर्में है । इन देवोंमें बड़े छोटेका विभाग इसलिये नहीं स्वतन्त्र है । विषय-वासनासे रहित ब्रह्मचारी हैं इसलिये इन्हें वैदिषि [देवोंमें शृणि] कहा जाता है तथा इसी कारण जय देव इनको पूजा सत्कार करते हैं । ये चोदह पूर्वके घारी सदा ज्ञानकी भावना भावनामानेवाले, संसारसे भयभीत, अनिष्ट आदि भावनाओंके सदा चित्तवन करनेवाले, परम सम्पदाष्टि भगवान् तीर्थकरके तप कल्याणके समय आकर दीषनेवाले होते हैं और एक भव धारण कर मोक्ष लेने जाते हैं ।

विरहंति यतीशाश्च भव्यानुग्रहकारिणः । साधै संघाटकेनात्र धर्मवर्त्तनहेतवे ॥६२॥
तीर्थयात्रादिसंभूतो धर्मप्रभावनोद्भवः । जिनपूजादिजो यत्रोत्सवो नित्यं प्रवर्तते ॥६३॥
यत्रोत्पन्नाः विदः केचित्पसा याति निवृत्तिः । केचिच्च गृहिधर्मेण ताकं लौकांतिकास्पदं ॥५४॥
केचित्सत्पात्रदानेत भोगभूमि सुखाकरां । भजतीद्रपद केचिच्छीजिनेन्द्रादिपूजया ॥५५॥
यत्रेहते स्वजन्माहु धर्मसिद्धये सुधाभुजः । तस्य स्वर्मुकितहेतोहिदेशस्य का वर्णना परा ॥५६॥
दृश्यादिवर्णनोपेतदेशस्य नाभिवत्तरां । मिथिलास्या पुरी भाति स्वपुरीव सुषार्मिकः ॥५७॥
तुण्डालप्रतोलीभिर्दीर्घस्त्रातिक्या च सा । अयोध्येवाभाच्छ्रूणामागम्या च भटोत्तमैः ॥५८॥

प्रकार वे शापियाँ परम शीतल और अपने परिमित स्वरूपमें विराजमान थीं ॥६१॥ संसारमें वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति है इस अभिलाषासे मोक्षाभिलाषी भव्योंपर उपकार वृद्धिसे प्रेरित हो सदा वहाँ अपने संघके साथ मुनिगण विहार करते थे ॥६२॥ वहाँ कोई कोई पवित्र तीर्थोंकी यात्राकी तैयारियाँ करते थे । कोई कोई धर्मकी प्रभावना करने वाले कार्य करते और कोई कोई भगवान जिनेन्द्रकी पूजा आदिका बड़े ठाट-बाटसे समारोह करते थे इसलिये उस देशमें तीर्थयात्रा धर्म प्रभावना और भगवान जिनेन्द्रकी पूजा आदिका उत्सव सदा होता रहता था ॥६३॥ उस बंग देशमें उत्पन्न होनेवाले कोई कोई विद्वान् पुरुष घोर तपोंको तपकर मोक्ष प्राप्त करते थे और कोई वास्तविक रूपसे गृहस्थ धर्मके पालन करनेवाले पुरुष, उस गृहस्थ धर्मकी कृपासे जहाँपर लौकांतिक देवोंका निवास स्थान है ऐसे पांचवें स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते थे ॥६४॥ कोई कोई महानुभाव उत्तम पात्रोंमें आहार आदि दानोंके देनेसे सदा सुखस्वरूप भोगभूमिके सुखका रसास्थावन करते और कोई कोई पुण्यात्मा भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्र आदिकी पूजाकर दिव्य हन्द्रपद प्राप्त करते थे ॥६५॥ बंगदेशमें उस समय जैनधर्मका ही सर्वत्र प्रचार था और उसके द्वारा लोग सदा स्वर्ग और मोक्ष पदोंको प्राप्त करते थे इसलिये परम धर्मके स्थान और मोक्षके कारण उस देशमें सदा अमृत पान करनेवाले देवगण भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे ॥६६॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनके धारक बंग देशमें एक मिथिला नामकी नगरी है जो कि मनुष्यके शरीरमें नाभि (टूँडी) के समान ठोक उस देशके मध्यसागमे है । अपनी अनुपम शोभासे स्वर्गपुरीके समान है एवं सर्वत्र धर्मात्मा लोगोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त शोभाधारण जान पड़ती है ॥६७॥ जिस प्रकार ऊँचे ऊँचे परकोटे विस्तीर्ण

आहयंतीव देवेशां सानेकद्वियुता वभौ । प्रसादाप्रध्वजाक्राते: समीरांदोलितांशुकैः ॥६९॥
 उत्तुङ्गतोरणोपेता यथ प्रासादपंक्तयः । सशालाः शोजिनेन्द्राणां शोभन्ते वा वृषाभ्ययः ॥७०॥
 हेमरत्नादिविंश्चै गीतनृत्यस्त्वादिभिः । दिव्योपकरणेवाद्यर्थातायातेष्व धार्मिकैः ॥७१॥
 कचिरसुपात्रदानोऽद्वसद्रत्नादिवृष्टिभिः । नित्यमन्यैः सुपांगलथैर्वततेऽप्यां महोत्सवः ॥७२॥
 जिनेन्द्रगुरुमत्काश्च ज्ञान विज्ञानवेदिनः । दानिनो धर्मशीलाः सद्वासाः पुष्यानुगामिनः ॥७३॥

गलियाँ और विशाल खाइयोंसे भूषित अयोध्याकी शोभा शास्त्रमें वर्णित है उसी प्रकार मिथिलापुरीमें भी उसी समय बड़े ऊंचे-ऊंचे परकोटे थे । विस्तीर्ण गलियाँ थीं और चारों ओर विशाल खाई थी इसलिये वह साक्षात् अयोध्या सरीखो जान पड़ती थी तथा उसमें अयोध्याके समान बड़े बड़े ढोर पुरुषोंका निवास स्थान था इसलिए वह धर्मपुरियोंके लगात्य थीं कोई भी शत्रु उस समय उसको ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता था ॥६८॥ उस मिथिलापुरीके बड़े बड़े महलोंके अग्रभागोंमें रंग खिरणों अनेक ध्वजायें लगी हुईं थीं और उनके वस्त्र पबनके झकारोंसे फरहरा रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था कि अनेक प्रकार की शृङ्खियोंसे शोभायमान मिथिलापुरी अपनी शृङ्खियोंका भोग करानेके लिये देवोंको दुला रही है ॥६९॥ बड़े बड़े ऊंचे तोरणोंसे भूषित और अटारियोंसे शोभायमान भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरोंको पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो वे साक्षात् धर्मकी समुद्र हैं—कोई भी आकर उनमें धर्मलाभ कर सकता है इसलिये जिन मन्दिरोंकी पंक्तियोंसे वह मिथिलापुरी उस समय अत्यन्त शोभायमान थी । मिथिलापुरीके जिन मन्दिरोंमें सुबर्णमयी और रत्नमयी प्रतिविम्ब विराजमान थे । सदा उनमें गीत नृत्य और स्तुतियाँ आदि हुआ करते थे । छत्र चमर आदि दिव्य उपकरण भी जगह-जगह मन्दिरोंकी शोभा बढ़ाते थे । नौवत घुरा करती थी और धर्मस्त्वा लोगोंका सदा आवागमन बना रहता था इसलिये वे मन्दिर महारमणीक जान पड़ते थे ॥७०-७१॥

उस समय मिथिलापुरीमें उत्तम पात्रोंको दानसे तीक्र पुण्यका बंध होता था इसलिए उसके फल स्वरूप रत्न पुण्य और गंधोदक आदिकी वर्षा होती रहती थी तथा अन्य भी नाना प्रकारके मांगलिक कार्य हुआ करते थे इसलिये वह मिथिलापुरी अनेक महोत्सवोंसे सदा जगमगाती रहती थी ॥७२॥ उस मिथिलापुरीके रहने वाले पुरुष भगवान जिनेन्द्र और गुरुओंके परम भक्त थे । अनेक प्रकारके ज्ञान विज्ञान-

सदृष्टयोऽतिर्जेनः सविनयाः शद्रू चेतसः । भोगिनो धार्मिकः शूरा विचारचतुरा नराः ॥७४॥
नार्यस्तादृग्गुणोपेतः प्राच्यजन्माजितपुण्यतः । तस्यामुत्तुंगसीधेषु निवसति महाकुलाः ॥७५॥
इत्यादिवर्णनाल्प्यार्थी नगर्वा भूपतिर्महान् । कुंभनामातिविश्वातो बभूवादभुतपुण्यवान् ॥७६॥
विश्वातलोचनो वाग्मी इक्ष्वाकुकुलवांशमान् । न्यायमार्गरतः काश्यपगोत्रतिलकोपमः ॥७७॥
विश्वामरणदिव्यांवरमालादीप्तिकांतिभिः । भूषितांगोऽतिधर्मात्मा सदाचारपदार्थवित् ॥७८॥
दाता भोक्ता महादक्षो व्रतशीलादिमठितः । जिनरक्तो विवेको सदृष्टिलोकप्रियोमहान् ॥७९॥

फलाकौशलोंके जानकार थे । सदा आहार आदि दानोंके देनेसे परम दानी थे, धर्मात्मा और शीलवान थे । उत्तमोत्तम व्रतोंके आचरण करने वाले थे । जो भार्ग पुण्य प्राप्ति करनेवाला था उसीके अनुयायी थे, पापवर्धक मार्गका कभी अनुगमन नहीं करते थे । परम सम्प्रदावृष्टि थे । जैनधर्मके परम श्रद्धानो थे । अत्यंत विनयालु और सदा शुद्धचित्तके धारक थे, धर्मानुकूल भोगोंको भोगने वाले थे, धर्मको ही सब कुछ माननेवाले थे, शूरद्वीर थे एवं अच्छे बुरे विचारोंके करनेमें अत्यंत प्रबोध थे । जिस प्रकार पुरुषोंके अन्वर गुण थे उसी प्रकार स्त्रियोंके अन्वर गुण ये अथात् वे भी पुरुषोंके ही समान भगवान जिनेंद्र और गुरुओंकी भूक्त थीं एवं अनेक प्रकारके फलाकौशलोंकी जानकार आदि थीं । इस प्रकार पहले जन्ममें कमाए गए पुण्यके उदयसे महान् कुलोंमें उत्पन्न वे स्त्री पुरुष उस मिथिलापुरीके ऊचे-ऊचे महलोंमें वहे आनन्दसे निवास करते थे ॥७३-७५॥

इस प्रकार उत्तम वर्णतको धारक उस मिथिलापुरीका राजा कुम्भ या जो कि अनेक राजाओंका शिरोमणि था । पृथ्वीपर प्रसिद्ध था और अत्यन्त पुण्यवान था ॥७६॥ वह राजा कुम्भ मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोंका धारक था । हित-कारी और परमित वचनोंके बोलनेके कारण वाग्मी था । इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशके लिए दीर्घीप्यमान सूर्य था । सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला एवं काश्यप गोपका तिलक स्वरूप था ॥७७॥ समस्त लोकके आभूषण, दिव्य और मनोहर वस्त्र, माला, तेज और मनोहरतासे उसका शरीर शोभायमान था । अत्यन्त धर्मात्मा था । उत्तम आचरणका आचरनेवाला और पवार्थोंके स्वरूपका भले प्रकार जानकार था ॥७८॥ उत्तम आदि पात्रोंको आहार आदि दान देनेके कारण दाता था । धर्म-नुकूल भोगोंका भोगनेवाला होनेके कारण भोक्ता था । राजकार्यमें अत्यन्त प्रबोध था । अहिंसादि पात्र अणुश्वत एवं तीन गुणवत्त और चार शिखावत इस प्रकार सात

विश्वद्विसंकुलो मान्यो राजते न्यायवर्त्मना । चक्रीव सोऽतिपुण्यात्पा जिनधर्मं प्रवर्धकः ॥८०॥
 प्रजावतो महादेवी तस्यासीत्प्राणवल्लभा । पुष्यलक्षणपूणींगा सत्प्रभाभरणांकिता ॥८१॥
 द्विपंचनखचंद्राशुद्धा॑सिद्व्यक्तमाम्बुजा । कदलीगभंसादृम्यचारुंधा मनोहरा ॥८२॥
 कांचिदामांशुके॒ सारेवभूषितकटीतटा॑ । कृषोदरा॒ सुवृत्तांतन्नभिश्वाह्ययोधरा॑ ॥८३॥
 अनध्यंहारसंयुक्तदिव्यवक्षःस्थला॒ सती॒ । मुद्रिकाकंकणाह्यातीवकोमललस्त्करा॒ ॥८४॥
 विम्बाभरणदोप्तंगा॒ दिव्यकंठातिसुस्वरा॒ । महातेजःकलाकांतिकपोलांकितसन्मुखा॒ ॥८५॥

प्रकारका शीलवत् एवं अन्यान्य ऋतोंका भी भले प्रकार आचरण करनेवाला था । भगवान् जिनेद्रका परम भक्त था । विवेकी और सम्यावृष्टि था । समस्त लोकका प्यारा था और महान् था ॥७९॥ वह महानुभाव कुम्भ नामका राजा चक्रवर्तीके समान था क्योंकि चक्रवर्ती जिस प्रकार समस्त प्रकारको शृद्धियोंसे व्याप्त रहता है । उसी प्रकार यह राजा भी अनेक प्रकारको शृद्धि-दिभूतियोंसे व्याप्त था, चक्रवर्तीका जिस प्रकार सब लोग आदर सत्कार करते हैं उसी प्रकार राजा कुम्भका भी सब लोग आदर सत्कार करते और मानते थे । चक्रवर्ती जिस प्रकार नीतिमार्गसे प्रजाकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजा कुम्भ भी नीतिमार्गसे प्रजाका पालन करता था तथा वह राजा चक्रवर्तीके समान अत्यन्त पुण्यवान् और जीनधर्मका संसारमें प्रवतनी वाला था ॥८०॥

महानुभाव राजा कुम्भकी प्राणोंको अतिशय प्यारी प्रजावती नामकी पटरानी थी जो कि समस्त शुभलक्षणोंके धारण शरीरसे शुभ यी एवं दैदीप्यमान प्रभाके धारक अनेक प्रकारके आभूषणोंसे भूषित थी । महादेवी प्रजावतीके दशों नखरूपी अन्द्रमाकी किरणोंसे झोभित और दिव्य दोनों चरण कमल थे । केलाके यंभोंके समान अत्यन्त मनोहर दोनों जंघायें थीं ॥८१-८२॥ करधनोंकी महामनोहर और सारभूत किरणोंसे उसका कटिभाग अत्यन्त जाज्वल्यमान था । उसका उदर अत्यन्त पतला होनेसे वह कृषोदरी थी । उसकी नाभि भीतरमें चक्करदार और गोल थी और दोनों स्तन अत्यन्त मनोहर थे ॥८३॥ उसका उदर वक्षःस्थल महामूल्यवान होरोंसे युक्त होनेके कारण जगमगाता था और उसके अत्यन्त कोमल महा मनोहर दोनों हाथ मुद्रिका और कढ़ोंसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते ॥८४॥ संसारके समस्त उत्तमात्म आभूषणोंकी काँतिसे उसका सारा अंग अत्यन्त दैदीप्यमान था । कंठ अत्यन्त मनोहर था इसलिये उसका बहुत ही मीठा और मनोहर स्वर था एवं

चाहनेश्रीत्पला तु गनासा भ्रूलोपशोभिता । न्यम्ताभरणसत्कर्णा अलिकेशी सुमस्तका ॥८६॥
 दिव्यांशुकसुपथ्यस्त्रिभिः सर्वविभंडिता । दिव्यलक्षणसम्पूर्णा महारूपा जनप्रिया ॥८७॥
 कलाविज्ञानज्ञातुर्यशानसौभाग्यभागिनो । जिनभक्ता सदाचारा विनयाढ्या महासती ॥८८॥
 दिव्यभोगोपभोगादिसंप्राप्तप्रस्वमनोरथा । पुण्यकर्मकरा दक्षा व्रतशीलादिभूषिता ॥८९॥
 मान्या सर्वजनैः सा भाङ्गारतीव प्रजावती । रूपलावण्यसौभाग्यसुखवारिधिपारगा ॥९०॥
 तथा साधं तृपोद्द्यंतप्रेष्णा भोगान्निरंतरं । भुनक्ति स्म यथाकाले तृप्तिकर्तुं स्वपुण्यजान् ॥९१॥
 अथ तस्याहमिद्रस्य शेषं षण्मासजीवितं । ज्ञात्वा शकाशया रद आगतो मिथिलापुरीं ॥९२॥

उसका उत्तरानन्दोहर चुह लेजोक्त्वा लावण्यसे देवीष्यमान काँतिके घर कपोलोंसे भूषित था ॥८५॥ उसके नेत्ररूपी कमल महामनोहर थे, ऊँची नाक थी सुन्दर भुकुटिये थीं उसके दोनों कान पहिने हुए आभूषणोंसे जाज्वल्यमान थे, भौरोंके समान काले केश थे और सुन्दर ललाटसे वह शोभायमान थी ॥८६॥ वह महारानी प्रजावती महामनोहर बस्त्रोंकी पोशाक पहिनती थी । माला आदिका मंडन करती थी समस्त दिव्य गुणोंसे परिपूर्ण थी अतएव महारूपवती और समस्त लोककी प्यारी थी ॥८७॥ अनेक प्रकारकी कलाएँ विज्ञान ज्ञान और सौभाग्यसे शोभायमान थी भगवान जिनेंद्रके गुणोंमें अत्यन्त भक्ति करती थी । सदाचारका आचरण करती थी । अत्यन्त विनय करनेवाली और महासती थी । पुण्यके उदयसे उसे भाँति-भाँतिके विव्य भोग और उपभोग आदि प्राप्त थे इसलिये उसके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि होती थी । वह महारानी प्रजावती समस्त पवित्र कायीको ही करनेवाली थी, हर एक ब्रह्म में अत्यन्त चतुर थी और व्रतशील आदिको भले प्रकार पालन करनेवाली थी ॥८८-८९॥ जिस प्रकार सरस्वती देवीका सब लोग आदर सत्कार करते और उसे मानते हैं उसी प्रकार महारानी प्रजावतीको भी सब लोग अति आदरकी दृष्टिसे देखते थे । तथा रूप लावण्य सौभाग्य और सुखरूपी समुद्रके पारको प्राप्त थी अर्थात् परम रूपवती थी, परम लावण्यवती थी और परम सुखको भोगनेवाली थी ॥९०॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम गुणोंकी स्थान उस महारानी प्रजावतीके साथ वह राजा कुम्भ तृष्णिके करनेवाले और निज पुण्यसे प्राप्त नाना प्रकारके भोगोंको यथाकाल बड़े स्नेहके साथ निरंतर भोगने लगा ॥९१॥

राजा वंशवंणका जीव जो कि अपराजित विमानमें जाकर अहमिद्र हुआ था जब उसको आयुक्ती समाप्तिमें केवल छह मासका समय बाकी रह गया-

अनव्यनिकषा रत्नत्रयस्वर्णेषारात्रजे: परैः । स्यूलैर्जकराकारैः पुष्टांबुकणसंकुलैः ॥५३॥
 मणिरचिमहतभ्यातः कुरुते सधनादिपः । रत्नवृष्टिं मुदा नित्यं तथोषमिनि मन्दिरे ॥५४॥
 तदा नृपांगणं सर्वं हेमरस्तादिपूरितं । धर्मस्येवं फलं दृष्ट्वा मर्ति घर्मे व्यषाज्जनः ॥५५॥
 प्रत्यहं रत्नवृष्ट्या स पूरथामास यक्षराद् । स्वर्णरस्तैर्नुपागारं वर्णासांतं लुभाप्तये ॥५६॥
 अथ सुप्तेकदा वेवी सा सौधे मुदुतल्पके । निशायाः परिच्छमे यागेऽपश्यत् स्वप्नांहच वोद्देश ॥५७॥
 ऐंद्रं गर्जेद्वासुसंगं गर्वेद्वं पांडुरद्वुति । मृगेऽद्विमिदुसच्छायं स्नाप्यां मां हरिविष्टरे ॥५८॥
 सुरेषपुष्पमाले च पूण्यचट्ठं सतारकं । हस्तभ्यांतं च भास्वतं पद्मास्थी हिरण्यघटी ॥५९॥

उस समय वह भगवान मलिलनाथ तीर्थंकर होनेवाला था और भगवान तीर्थंकरके जन्मसे पन्द्रह मास पहिले उनको जन्मभूमिमें कुबेर द्वारा रत्नोंकी वर्षा होने लगती है यह नियम है इसलिए इन्द्रने मिथिलापुरी जानेके लिए कुबेरको आज्ञा दी और इन्द्रको आज्ञानुसार वह शोध द्वारा मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गया ॥५२॥ मिथिलापुरीमें आकर उसने भोटी भोटी हाथीके सूढ़की आकारके, पुष्प और जल-कणोंसे व्याप्त अमूल्य अनेक प्रकारके रत्नोंकी धारायें वर्षनी प्रारम्भ कर दीं जिनमें कि वर्षनेवाली मणियोंकी प्रभासे समस्त अन्धकार नष्ट होता था इसप्रकार उस दिनसे वह कुबेर राजा और रानीके मनोहर महलमें बड़े आनन्दसे रत्नोंकी वर्षा करने लगा ॥५३-५४॥ उस समय राजा कुम्भके समस्त आंगनको रत्न और सुवर्ण आदिसे परिपूर्ण देख मनुष्योंने उसे साक्षात् धर्मका फल समझा एवं उस दिनसे उन्होंने धर्मके अन्दर शिशेष रूपसे चित्त लगाया ॥५५॥ वह कुबेर पुण्य फलकी प्राप्तिकी अभिलाषासे प्रतिदिन रत्नवृष्टि करता था इसलिये छहमास पर्यन्त वह राजा कुम्भके मकानको सुवर्ण और रत्नोंसे प्रतिदिन भर दिया करता था ॥५६॥

कदाचित् महारानी प्रजावती अपने शयनागारमें अत्यन्त कोमल मनोहर सेबपर सो रही थी कि अक्षमगत् जद रात्रिका कुछ ही भाग शेष रह गया उस समय उसने महामनोहर सोलह स्वप्ने देखे । सबसे पहिले स्वप्नमें उसने इन्द्रका ऐरावत (१) हाथी देखा जो कि महामनोहर अत्यन्त विशाल था । उसके बाद अत्यन्त उन्नत, २ द्वैल देखा जो कि अत्यन्त सफेद काँतिका धारक था । उसके बाद अत्यन्त पराक्रमी, ३ सिंह देखा जो कि चांदमाको काँतिके समान काँतिका धारक था । उसके बाद, ४ लक्ष्मी देखी जो कि महामनोहर सिंहासनपर दुर्घषके घड़ोंसे स्नान कराई जा

मत्स्यो मरसि पद्माक्षे चावजपूर्ण सरोवरं । क्षुभ्यंतमन्तिष्ठमुक्तेलं हैमं सिहासनं परं ॥१००॥
नाकालयं स्फुरद्ग्रीष्मं कणीद्रमवनं महत् । रत्नाशि हृतम्बांहं निर्षूर्यं विषमाचियं ॥१०१॥
दृष्टाविमान् षोडश स्वप्नास्तदंते सा ददर्शं च । प्रविष्टं स्वष्ट्वक्षाव्ये गजेन्द्रं तुगविश्वं ॥१०२॥

इति सुकृतिविपाकारप्राप्य रत्नादिवृष्टिं स्वजनन् सुरमान्या प्राप्तसौभाग्यसारा ।

जिनपतिसुतकर्त्त्वाः स्वप्नराशीद्वय दृष्टवा सकलसुयुवतिमध्येऽप्यभूता प्रभूता ॥१०३॥

रही थी । उसके बाद, ५ वो पुष्प मालायें देखीं जिनकी सुरांषिसे समस्त दिग्गायें
सुगम्भित थीं । उसके बाद आकाशमें महामनोहर अखंड, ६ चंद्रमा देखा जो कि
अपने परिकर ताराओंके समूहसे व्याप्त था । उसके बाद अत्यन्त देवीप्यमान, ७ सूर्य
देखा जिसकी प्रभासे समस्त अन्धकार विनष्ट हो रहा था । उसके बाद अत्यन्त देवीप्यमान, ८ सूर्य-
मयो घर देखे जिनका कि मुख कमलोंसे ढका हुआ था । उसके बाद कमलोंसे परिपूर्ण
सरोवरमें किलोल करता हुआ, ९ मीनोंका जोड़ा देखा उसके बाद विशाल स्थिर,
१० सरोवर देखा जो कि सर्वत्र कमलोंसे व्याप्त था । उसके बाद खलबलाता हुआ,
११ समुद्र देखा जिसका जल तीरसे भी ऊपर बहुता था । उसके बाद एक सुवर्णमयी
महामनोहर, १२ सिहासन देखा । उसके बाद देवोंका स्थान १३ स्वर्ग देखा जो कि
अपनी जगमगाती हुई कांतिसे अत्यन्त शोभायमान था उसके बाद १४ नागेन्द्रका भवन
देखा जो कि कांतिसे जगमगाता हुआ अत्यन्त विशाल था उसके बाद जगमगाती हुई
१५ रत्नोंकी राशि देखी जिनकी उग्र प्रभासे अन्धकार दीप तक नहीं पढ़ता था उसके
बाद जलती हुई १६ अग्नि की शिखा देखी जिसमें धुआंका नाम निशान तक भी न
था ॥१७-१०१॥ जिस समय वह महादेवी उपर्युक्त सोलह स्वप्न देख चुकी उस
समय अन्तमें देखा जिए कि एक अत्यन्त सुन्दर शरीरसे शोभायमान विशाल हाथी
उसके मुख कमलमें प्रवेश कर रहा है ।

रानी प्रजावतीके तीव्र पुण्यके उदयसे पहिले तो रत्नसुवर्ण आवि पवार्थोंकी
बर्बा हुई जिससे उसके कुटुम्बोंजन अन्य मनुष्य बड़े बड़े देव उसका आवर सत्कार
करते थे और समस्त सौभाग्यका सार प्राप्त किया था उसके बाद उस महारानी
प्रजावतीने भगवान जिनेन्द्रकी उत्पत्तिको सूचन करनेवाले उपर्युक्त सोलह स्वप्न देखे
जिससे रनवासके अन्वर अनेक रानियोंके रहते भी उनकी शिरोमणि पटरानी
बहो हुई ॥१०३॥

स्वर्मोषकक्षिलविज्ञहर्ता सुमुक्तिभर्ता वरधमनेता ।
कर्मारिहताऽखिलविद्विधाता दाता विजेता मम सोऽस्तु सिद्धं ॥१०४॥

इति भट्टारकश्रीसकलकीतिविरचते श्रीमल्लिनाथचरित्रे अहमिदभववर्णनो नाम
तुल्योः परिच्छेदः ॥ ३ ॥

स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले, समस्त विज्ञोंके नाशक, मोक्ष-
लक्ष्मीके जीवोंको धर्म मार्ग पर ले चलनेवाले, ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मरूपी
विरियोंको मूलसे नष्ट करनेवाले अखंड ज्ञानके विधाता एवं जगशील वे भगवान्
मल्लिनाथ हमारे लिये सिद्धि प्रदान करे ॥१०४॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी प० गजाघरलालजी
न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी बचनिकामें अहमिदका भव वर्णन करनेवाला
तो सरा परिच्छेद सनात्त हुआ ॥ ३ ॥



चतुर्थः परिच्छेदः

इन्द्रनीललसत्कार्यं मुक्तिकांतप्रियंकरं । त्रिजगत्सवामिनं वदि पाश्वनाथं जगद्धितं ॥ १ ॥
 अथ प्रबोधकास्तूर्यान् अवन्तः सुखरान्परात् । बदिनां च सुगीतानि मंगलान्यप्यनेकशः ॥ २ ॥
 प्रातर्भेदोरत्वं श्रुत्वा दरनिद्रान्विता सती । प्रबोधमगमद्वेदी विश्वमांगल्यधारिणी ॥ ३ ॥
 अनुत्थाय स्वपत्यकाद्विश्वमांगल्यसिद्धये । सामायिकादिं च देवी धर्मध्यानं चकार सा ॥ ४ ॥
 स्नान्वालकृत्य भूषाद्यैः स्वात्मानं हर्षितानना । जनैः कलिपयैः सार्थं नृपास्थानं ययौ मुदा ॥ ५ ॥
 आगच्छंतीं स्वकांता तां दृष्ट्वा वाक्येयथोचितेः । संतोष्य प्रददो तस्मै सोऽहं सिहासनं मुदा ॥ ६ ॥

जिनके शरोरकी काँति इन्द्रनील मणिके रंगके समान महामनोहर है जो सोक्षमपौ लक्ष्मीके परम प्यारे हैं । तीनों लोकके स्वामी हैं एवं समस्त जगतका हित करनेवाले हैं ऐसे श्रोपाइर्वनाथ भगवानको मैं मरुतक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥
 वह प्राचीन प्रथा है कि महाराज और महारानियोंका जो समय उठनेका होता है उस समय मधुर शब्द करनेवाले बाजे बजाए जाते हैं और बन्दीगण स्तुति बलानते हैं उनके शब्दसे महाराज और महारानीको निद्रा भंग होती है और उस समय वे उठकर अपनी प्रातःकालकी नित्य क्रियामें प्रवृत्त होते हैं प्रातःकालमें जिस समय महारानी प्रजावतीके उठनेका समय उपस्थित हुआ उस समय उसे जगानेवाले उत्कृष्ट एवं महामनोहर शब्द करनेवाले तूर्य जातिके बाजे बजाने लगे तथा बन्दीगणोंके हुआ अत्यन्त मंगलको सूचन करनेवाली महामनोहर अनेक प्रकारकी स्तुतियाँ बखानी जाने लगीं । महारानी प्रजावती उस समय सूक्ष्म निद्रासे निश्चित पलंगपर लेटी हुई थी ज्योंही प्रातःकालमें उसने महामनोहर भेरीका शब्द सुना समस्त जगतका मंगल करनेवाली वह पलंगसे उठकर बैठ गई ॥ २-३ ॥ कुछ समय बाद शातिपूर्वक उसने पलंगका परित्याग किया और वह देवी समस्त जगतके मंगल सिद्धिकी कामनासे सामायिक आदि क्रियाओंके हुआ धर्मध्यानका आचरण करने लगी ॥ ४ ॥ सामायिक आदि नित्य क्रियाओंके बाब उसने प्रसन्न चित्तसे स्नान किया । उत्तमोत्तम आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया एवं कुछ खास मनुष्योंके साथ हृदयमें अत्यन्त प्रभोद रख वह राजसभाकी ओर चल दी ॥ ५ ॥ इस प्रकार ठाटवाटसे राजसभामें आनेवाली अपनी परम प्यारी महारानी प्रजावतीको देखकर राजा कुम्भ बड़ा प्रसन्न हुआ । महामनोहर वचनोंसे उपका शिष्टाचार उसे अत्यन्त सन्तुष्ट किया एवं बड़े भानन्दसे

सुखासीना ततो राज्ञो विधाय त्वमुखे मुद । भर्त्रे दिव्यासनोत्थाय दिअवाष्या व्यजिक्षपत् ॥७॥
 देवाच्च यामिनीभागे पदिच्चमे सुखनिद्रिता । अद्राक्षं षोडश स्वप्नान् गर्जेद्रादोन् शुभोदयान् ॥८॥
 स्वमिस्तेषां फलं सर्वं कृपां कृत्वा ममादिषः । शृणु प्रिये फलं तेषां वक्ष्ये कृत्वा वशोभनः ॥९॥
 गजेक्षणान्पहन् पुत्रो भविष्यति सुरावितः । देवि ! ते बृषभालोकाज्ज्येष्ठां धर्मधुरधरः ॥१०॥
 सिहेनानंतवीर्यैषच दामाभ्यां धर्मतीर्थकृत् । लक्ष्म्याभिषेकमाप्नासौ सुरेमेघमस्तके ॥११॥
 पूर्णेदुना जनाह्नादी मोहध्यांतविनाशकृत् । भास्वता चासलः भानतभीहंतः स्फुरद्युतिः ॥१२॥

आथा सिहासन उसके बैठनेके लिये प्रदान किया । अपने स्वामी महाराज हारा इस प्रकारका सम्मान पा रानी प्रजावतीका मुख आनन्दसे पुलकित हो गया वह सुखपूर्वक आसनपर बैठ गई एवं दिव्य आसनसे कुछ उठकर अपनी विध्य वाणीसे गद्गद होकर इस प्रकार अपने स्वामीसे निवेदन करने लगी—हे देव ! आज प्रातःकाल जब कि रात्रिका कुछ ही भाग शेष रह गया था उस समय मैं पलंगपर सुखपूर्वक सो रही थी, अचानक ही अस्यन्त शुभ फलके प्रदान करनेवाले गजेन्द्र भाविके सोलह स्वप्न मुझे दीख पड़े हैं । स्वामिन् ! उन पवित्र स्वप्नोंका फल क्या है कृपाकर उस समस्त फलको मुझे बतलाइए—मुझे उन फलोंके जाननेकी बड़ी भारी अभिलाषा और उत्कण्ठा है । फलोंको जाननेके लिए रानीको इस प्रकार उत्कण्ठित दीख राजा कुंभ बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रियवचनोंसे वह इस प्रकार कहने लगा—प्राणप्यारी ! तुम चित्तको स्थिरकर सुनो—मैं उन स्वप्नोंका विस्तारसे फल कहता हूँ ॥७-९॥

देवि ! स्वप्नमें जो तुमने विशाल गजराज देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे एक महान् पुत्र होगा जिस बड़े बड़े श्रद्धिधारी देव आकर पूजेंगे और अपने-को अन्य समझेंगे । विशाल बैलके देखनेका यह फल है कि तुम्हरा पुत्र ज्येष्ठ होगा—समस्त लोक उसे बड़ा मानेगा और उसकी आज्ञाका पालन करेगा एवं वह धर्मकी धुराका धारण करनेवाला अर्थात् धर्मका स्वामी होगा । स्वप्नमें जो सिंह देखा है उसका फल यह है कि वह पुत्र जिस प्रकार सिंह बलशाली होता है उसी प्रकार अनन्त बलका धारक होगा वो मालायें जो देखी हैं उनका फल यह है वह धर्म तीर्थका प्रवत्तक होगा । दुर्घटके घड़ोंसे स्नान करती हुई जो लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि बड़े बड़े देव आकर तुम्हारे पुत्रको मेर पर्वतके मस्तक पर ले जाकर स्नान करावेंगे । स्वप्नमें जो पूर्ण चंद्रमा देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार चंद्रमा जीवोंको आनंद प्रदान करनेवाला है और अंधकारका नाशक है उसी प्रकार

कुंभाम्यां निधिभागी च मत्स्याभ्यां स्वान्महासुखी । सरसा लक्षणः पूर्णः सोऽधिता केवलेक्षणः ॥१३॥
सिहासनेन साम्राज्यपदयोग्यो जगन्मुतः । विमानदर्शनात्कल्पातीतादवत्प्रिष्ठति ॥१४॥
कणीन्द्रमवनालोकादवधिजाननेत्रभक् । भवेद् दृक्विदावृत्तानामाकर रत्नराशितः ॥१५॥
अग्निना कर्मकाष्ठानां भस्मराशि करिष्यति । तव पुत्रो जगन्नायः शुबलध्यानोरुद्धिना ॥१६॥
गजेंद्रास्यप्रवेशेन द्रत्वर्भे निर्मले परे । मलिनायोजिनाधीश स्वमाधास्यति निश्चितं ॥१७॥
अवधिज्ञानिना तेनेत्युक्तं राजा तदा सती । शुच्वानंदं परं सापात्मुञ्चं प्राप्तेव तत्कर्ण ॥१८॥

तुम्हारा पुत्र भी संसारको आनन्दका प्रदान करनेवाला और मोहरूपी अंघकारका सर्वथा नाश करनेवाला होगा । सूर्य जो देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अंघकारका नाशक है अर्थात् उसके उदय होते ही संसारके घट पट आदि पदार्थ स्फुट रूपसे दीख पड़ते हैं एवं सर्वेष उसकी कांति देवोप्यमान रहती है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी समस्त अज्ञानरूपी अंघकारका नाश करनेवाला होगा एवं सर्वत्र संसारमें उसका प्रताप फैलेगा । दो सुवर्ण मध्यी घड़े जो देखे हैं उनका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र निधियोंका स्वामी होगा । किलोल करती दो भीन देखी हैं उसका फल यह है कि वह पुत्र परम सुखका स्थान होगा । जलसे लबालब भरा हुआ जो सरो-वर देखा है उसका फल यह है कि वह पुत्र समस्त मनोहर लक्षणोंमें पूर्ण होगा । तीरको भेदकर बहुनेवाले जलसे युक्त जो समुद्र देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र लोकालोकको प्रकाश करनेवाले केवलज्ञातका स्वामी होगा । सिहासन-के देखनेका फल यह है कि वह साम्राज्य पदके योग्य होगा और समस्त जगत उसे नमस्कार करेगा । स्वप्नमें जो विमान देखा है उसका फल यह होगा कि वह कल्पा-शीत विमानसे तुम्हारे गर्भमें आवेगा । जगमगाता हुआ जो नगेंद्रका भवन देखा है उसका फल यह होगा कि वह अवधिज्ञानरूपी नेत्रका धारक होगा, रत्नराशिके देखनेका यह फल है कि वह अखंड सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका खजाना होगा । जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि जो देखी है उसका फल यह है समस्त जगतका स्वामी तुम्हारा पुत्र शुबलध्यानरूपी तीव्र अग्निसे कर्मरूपी काष्ठको खाल कर डालेगा तथा सोलह स्वप्नोंके अंतमें मुखमें गजेंद्र प्रवेश करता हुआ देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भमें उन्नीसवें तीर्थकर भगवान मलिनाथ गिरेंद्र स्वयं अवसीर्ण होकर निश्चयसे जन्म धारण करेंगे ॥१९-२७॥ राजा कुम अवधिज्ञानके धारक थे इसलिये उसके मुखसे स्वप्नोंका इस प्रकार उत्तम फल सुन-

सौधर्मेद्रोपदेशोनाथा गत्यात् हृदालयः । क्याच्चा षट् देव्य एवाशु भक्त्या सद्धर्मवासितः ॥१९॥
 गर्भं संशोध्व तीर्थेशमातुर्दर्ढ्यैः सुनिर्मलैः । कुर्युः सेवां च शुश्रूषा तत्कालोचितकर्मभिः ॥२०॥
 श्रीः श्रियं ह्लीः सुलज्जां च धृतिधैर्य किलादधुः । कीतिः सुनि च बोधि च बुद्धिलक्ष्मीदच वैभवं ॥२१॥
 तस्या गुणानिमान् स्वांश्च सा प्राग्निसग्ंमुन्दग्म पुनः । सुसंस्कृता तामीरेजेऽनृती यथा मणिः ॥२२॥
 चैत्रमासे सिते पक्षे सुलग्ने प्रतिपाद्मने । अश्विनोनार्त्तम् अक्षक्रं शुभयोगादिके सति ॥२३॥
 सोऽहमिद्रस्ततश्च्युत्वा त्रिबोधो मृक्षितहेतवे । तस्या गर्भेऽवतीर्णोऽतिशुद्धस्फाटिकसन्तिमे ॥२४॥

कर महारानी प्रजावतीको परमानन्द हुआ एवं मारे आनंदसे उसको यह उस समय
 मालूम पड़ने लगा मानो साक्षात् पुन्र ही प्राप्त कर लिया है ॥१८॥

अथानंतर माता प्रजावतीको सेवाके लिये सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञासे श्री
 ह्ली धृति बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ बड़ी भक्तिसे शोभ्र ही मिथिलापुरी
 आ गईं । ये समस्त देवियाँ भरतक्षेत्रके पश्च आदि सरोवरोंके कमलोंमें रहनेवाली हैं एवं
 परम धर्मकी सदा सेवन करनेवाली हैं ॥१९॥ मिथिलापुरीमें आकर समस्त देवियोंने
 अत्यंत निर्मल पदार्थोंसे माता प्रजावतीके गर्भका संशोधन किया । एवं जिस समयमें
 जिस कार्यके करनेकी आवश्यकता होती थी उसे कर दे भक्तिपूर्वक माताकी सेवा
 और आज्ञाका पालन करती थीं ॥२०॥ श्री देवी माताके शरीरके अन्दर अनेक
 प्रकारकी शोभा उत्पन्न करती थीं । ह्ली देवीकी सेवासे माताके हृदयके अंदर विशेष-
 रूपसे लज्जाका प्रचार था । धृति देवीको कृपासे विशेषरूपसे धोर बोरता उत्पन्न हो
 गई थी । कोई देवीको सेवासे यह गुण प्रगट हुआ था कि सर्वत्र उसको कीर्ति फैल
 गई थी इसीलिये सब लोग बड़ा भक्तिसे उसकी स्तुति करते थे । बुद्धि देवीकी सेवा-
 से माताके सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यक्चारित्रके अंदर विशेष निर्मलता होने
 लगी थी एवं लक्ष्मी देवीकी सेवासे माताको अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंका लाभ या
 तथापि वह माता प्रजावती अपने तीव्र पुण्यके उदयसे स्वभावसे ही सुन्दर थी तथापि
 स्वभावसे निर्मल भी । मणिपर जिस प्रकार संस्कार कर देनेसे और भी अधिक
 चमक आ जाती है उसी प्रकार श्री आदि देवियोंके द्वारा शोभा आदि गुणोंसे संस्कार
 युक्त की गई वह माता और भी विशेष रूपसे सुन्दर जान पड़ने लगी ॥२१-२२॥

कवाचित् चैत्रमासके शुक्लपक्षको प्रतिपदाके दिन जब कि शुभ लगत था
 अश्विनो नामका शुभ नक्षत्र था और योग आदि भी शुभ थे वह अहमिद्र भगवान्
 मल्लिनाथका जीव अपराजित नामके विमानसे चर्या एवं भति श्रुत और अवधिरूप

घंटादिनादिसिंह। सनकपादिसुलाल्लनः । ज्ञात्वा तदावतारं हि चतुर्णिकायनिर्जरा ॥२५॥
 संद्राः स्ववाहनारुद्धाः सकलश्च नभोऽग्नां । शोतर्यस्त्वयैस्तत्राजग्मुः शिवाप्तये ॥२६॥
 तुनः प्रथमकल्प्याणे अमृत्वा गर्भगतं जिन । गर्भवत्याः प्रजावत्याः पांदावुष्ट्योर्मुदा ॥२७॥
 प्रणामं शिरसा चक्रे मणिशेखरशालिना । सौधमैदीऽस्त्रिलैदैः साधै भक्त्या वृषाप्तये ॥२८॥
 ततः प्रपूज्य तीर्थेणपितरो भूषणादिभिः । प्रशास्य कृतकार्यस्ते स्वं स्वं स्थानमगुः सुराः ॥२९॥
 नित्यं शक्तशया दिक्कुमायैस्तद्वोग्यकर्मभिः । कुर्वति परमां सेवो जिनमातुः स्वशर्मणे ॥३०॥
 काश्चिच्चन्मांगल्पशारिष्यः काश्चिच्चद्भूषणदायिकाः । काश्चिच्चत्रप्रसाधिकाः ॥

तोत ज्ञानका धारक वह मोक्षमार्गको प्रगट करनेके लिए अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक पाषाणके समान माता प्रजावतीके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया ॥२३-२४॥ भगवान मलिलनाथके गर्भमें आते ही भवनवासी आदि चारों निकायोंके देवोंके घरों-में घंटा आदि बजने लगे एवं सिंहासन आदि कौप गये । बस ! घंटा आदिका बजाना एवं सिंहासनका कपना आदि शुभ लक्षणोंसे उन्हें भगवान मलिलनाथके गर्भमें आनेका निश्चय हो गया । वे अपने अपने निकायोंके इन्द्र और अपनी अपनी देवीगनाओं के साथ शीघ्र ही अपने अपने बाहुनों पर सवार हो गये एवं अपनी देवीप्यमान प्रभासे समस्त आकाशको प्रकाशमान करते हुए वे मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषासे शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये ॥२५-२६॥ गर्भवितार नामक पहिले कल्याणमें आये हुए सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने समस्त देवोंके साथ घर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे गर्भमें आये हुए भगवान जिनेन्द्रके गुणोंका भवित्वावसे स्मरण किया एवं गर्भवती माता प्रजावतीके दोनों चरण कमलोंको मणिमयी मुकुटोंसे चमचमाते हुए अपने मस्तकोंसे हृष्पूर्वक नमस्कार किया ॥२७-२८॥ उसके बाद इन्द्र आदि देवोंने भगवान मलिलनाथके माता पिता दोनोंको पूजा की । भूषण आदि प्रदानकर सन्मान किया एवं इस प्रकार पवित्र कार्यको पूराकर वे समस्त देव अपने अपने स्थानोंपर उल्ले गये ॥२९॥ उस दिनसे छत्तीन दिक्कुमारियाँ इन्द्रकी आज्ञासे सदा माताके पास रहने लगीं एवं जिसे जो कार्य करनेके लिए सौंपा जाता था उसे आनन्दपूर्वक पूराकर अपनेको कल्याणकी प्राप्ति हो इस अभिलाषासे वे माता प्रजावतीकी बड़ी भक्तिसे सेवा करने लगीं ॥३०॥ उनमें बहुत सी कुमारियाँ माताके चित्तको प्रसन्न

१ मवनवासी २ ब्यंतर ३ ज्योतिषं ४ और वैगानिक ये देवोंकी चार निकाय हैं ।

काश्चिचन्मउज्जनपालित्यः काश्चिचच्चौग्नसुरभिकाः । तस्याः पर्वतवायिन्यो बभूवुस्ता: सुरांगना ॥३२॥
 काश्चिचन्सम्माजनं कुर्युः काश्चिद्रसवतीं पराः । काश्चिन्मणिप्रदोपाश्चास्या गेहेऽमरयोषितः ॥३३॥
 काश्चित्तत्तुतज्जर्णिने: काश्चिद्द्वाष्ट्रेश्च नर्तने: । काश्चित्कोङ्काविनोदादीस्तन्मनोरंजयत्थलं ॥३४॥
 घनदोऽपि मुदा नित्यं प्रतिचक्रे तदालये । हेमरत्नपयीं वृष्टिं नवमासान्महर्धिकां ॥३५॥
 अंतवंलीमथाभ्यर्थे नवमे मासे तामिति । रंजयति च ताः श्लोकैर्गृहार्थः प्रश्नराशिभिः ॥३६॥
 नित्यं कांताविरक्तो यः सकामः कापनित्महान् । साकाशो च निराकांशो त्रिनेत्रो वर्तते स कः ॥३७॥

करनेके लिये मंगलीक पदार्थ हाथमें लेकर खड़ी रहती थीं । बहुत सी माताको भाँति भाँतिके भूषण पहनातीं थीं । कोई कोई उसे रेशमी वस्त्र पहिनातीं थीं और मालायें प्रदान करती थीं बहुत माताका शुंगार करती थीं कोई कोई कुमारियां माताके लिए स्नानकी तैयारियाँ करतीं । बहुत-सी उबटन आदि लगाकर उनके शरीरकी रक्षा करती थीं । बहुतसी कुमारियाँ 'माताको सुख मिले' ऐसे उपायोंको रचा करती थीं । कोई कोई देवांगना माताके रहनेके मकानको झाड़ बुहारकर साफ करती थीं । बहुत-कुमारियाँ माताकी छुच्छानुसार महास्वादिष्ट रसोई करतीं । कोई-कोई देवांगनायें माताके मकानमें मणिमयी दीपक जलाती थीं । कोई-कोई बालकके जन्मकालमें जो गीत गाये जाते हैं उन गीतोंको गाती थीं । कोई-कोई महामनोहर शब्द करनेवाले बाजे बजाती थीं । कोई कोई महामनोहर नृत्य करतीं एवं कोई कोई कुमारियाँ नाना प्रकारकी क्रीडायें एवं मनको प्रसन्न करनेवाली कथायें करती थीं । इस प्रकार वे समस्त कुमारियाँ भाँति भाँति की मनोहर क्रियायें कर माताका चित्त अत्यन्त प्रसन्न रखती थीं ॥३१-३४॥ भगवान मलिलनाथके गर्भमें आते हो कुबेरको भी परमानन्द हुआ था । इसलिये नौ मास पर्यन्त बड़ी रिद्धिके साथ वह प्रतिदिन बराबर उनके महूलमें सुवर्ण और भाँति भाँतिके रत्नोंकी वर्षा करता रहता था ॥३५॥ आठ महीनों के बीत जानेपर जब नवमें मासका आरम्भ हुआ उस समय गर्भवती माता प्रजावती के समीपमें बैठकर वे देवांगनायें गूढार्थक अर्थात् जिनका अर्थ गूढ़ होता था हर एक नहीं समझ सकता था ऐसे श्लोकोंसे एवं नाना प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्नोंसे माताके मनको रिप्ताती थीं ॥३६॥ कोई कोई कहती थीं अच्छा माता ! इस पहलीका अर्थ बताओ कि—

ऐसा त्रिनेत्र—तीन नेत्रोंका धारण करनेवाला संसारके अन्दर महादेव कौन है जो 'नित्यकांताविरक्तः' अर्थात् सदा स्त्रियोंसे विरक्त हो अथवा नित्यकांता-मोक्ष-

(प्रहेलिका) मनोहरादिहर्वादीनां^१ च त्वद्गर्भसंमवात् । भजस्वज्ञसुमांगल्यान्विसवान् देव सुभगले १८

रूपी स्त्रीमें विशेषरूपसे रक्त हो । प्रारम्भमें काम सहित हो परन्तु पीछेसे सर्वथा कामका विजय करनेवाला हो, अत्यन्त महान हो । तथा प्रारम्भमें कुछ परिग्रहसे आकांक्षा रखनेवाला हो परन्तु पीछेसे जो सर्वथा उनकी आकांक्षासे विमुख हो गया हो । यदि कहा जायगा कि संसारके अन्वर जो महादेव प्रसिद्ध हैं वही इन गुणोंका धारक महादेव हो सकता हैं सो ठीक नहीं क्योंकि वह पार्वती नामकी स्त्रीको अपना आधा अंग बनाये हुए हैं इसलिये स्त्रीमें अत्यन्त रक्त रहनेके कारण वह सदा स्त्रियोंसे विरक्त नहीं माना जा सकता तथा अत्यन्त विषयलोलुपी होनेके कारण वह मोक्षरूपी स्त्रीमें भी विशेष रूपसे रक्त नहीं हो सकता क्योंकि इस प्रकारकी विषयवासनामें लिप्त पुरुषोंसे मोक्ष स्त्री अत्यन्त दूर रहती है । तथा वह आदिमें काम सहित हो पीछेसे कामका जीतनेवाला हो यह भी बात उसके अन्वर नहीं बन सकती । क्योंकि जो कामके अत्यन्त वशीभूत होकर पार्वती नामकी स्त्रीको सदा बगलमें रखता है वह कभी कामका जीतनेवाला नहीं कहा जा सकता । इसलिये संसारमें जो प्रसिद्ध महादेवके कामका बेरी माना जाता है वह सर्वथा मिथ्या है । तथा वह पहले परिग्रहोंसे आकांक्षा रखनेवाला हो और पीछेसे उनकी आकांक्षासे विमुख हो यह भी बात नहीं क्योंकि वह स्त्रीरूप परिग्रहको एक क्षण भी अपनेसे दूर नहीं कर सकता । प्रत्युत उनमें ऐसा लिप्त है कि स्त्रीको ही अपना आधा अंग मानता है और उसीमें अपनी शोभा समझता है । माता प्रजावतो इस प्रश्नका यह उत्तर देती थी कि—ऐसा महादेव भगवान् तीर्थकर ही हो सकता है क्योंकि भगवान् तीर्थकर ही भावोंकी अपेक्षा सदा स्त्रियोंसे विरक्त रहते हैं अथवा सदा विद्यमान रहनेवाली मोक्षस्त्रीमें वे ही अत्यन्त रक्त रहते हैं । प्रारम्भमें कामदेवके जालमें फँस जाने पर भी अन्तमें वे कामदेवको सर्वथा नष्ट करने वाले होते हैं । प्रारम्भमें परिग्रहमें कुछ आकांक्षा रखने पर भी पीछे वे उससे सर्वथा रहित हो जाते हैं एवं जन्मते ही नियमसे मति श्रूत और अवधि इन तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक होते हैं ॥३७॥ कोई कोई जिसमें क्रिया गुप्त है ऐसा श्लोक कह कर इस प्रकार माताकी प्रशंसा करती थी—

हे देवी ! हे मंगलमयी माता ! तुम्हारे गर्भमें भगवान् महिलनाथने जन्म

१. मनोहायादिहर्वादीत्यादि पाठ ठीक जान पड़ता है ।

(क्रियागोपित) अन्तातीतगुणावारो जगन्नाथो जगद्गुरुः। नित्यस्त्रोरक्तचिसो थो जयतात्सखि । ते सुतः
 (नैरोष्य) कात्र त्वत्सदृशी रामा ? या सूते धर्मनाथकान् ।
 को गुरुर्थैः सुतरवज्ञो निर्देशं स्वान्यतारकः ॥४० ।
 कुगुरुःकोऽक्षसंसक्तः संप्रन्योऽतिप्रमादवान् । कः पुरुषोत्तमो यस्तु स्यक्तमोहः शिवोद्यतः ॥४१॥

धारण किया है इसलिए उस विशिष्ट गर्भके द्वारा आदिहर्यदीनां मनः अहारि अर्थात् प्रथम स्वर्गके इन्द्रको आदि लेकर समस्त देवोंका मन हुरा गया है—ये भी तुम्हारे सेवक हो गये हैं अतः तुम मनुष्य लोकके उत्तमोत्तम पदार्थोंके भोगके साथ स्वर्ग लोकके समस्त मंगलीक—उत्तमोत्तम पदार्थोंका भी भोग करो। यहाँ पर 'अहारि' यह क्रिया पद गृह्ण है। कोई-कोई देवांगना जिनके उच्चारण करनेमें ओठ आपसमें न लगें ऐसे अक्षरोंका इलोक बनाकर इस प्रकार माताकी प्रशंसा करने लगीं—हे सखी ! अनन्ते गुणोंका धारण करने वाला, तीनों लोकका नाथ, सकल संसारका गुरु और नित्य स्त्रो अर्थात् शिवरूपी स्त्रीके गुणोंविष्वे सबा अनुराग करने वाला तेरा पुत्र चिरकाल तक जयवन्त हो। इस इलोकमें ओष्ठस्थानीय अर्थात् जिसका उच्चारण ओठोंकी सहायतासे हो एसा कोई भी वर्ण नहीं है ॥३८-३९॥ बहुत-सी देवांगनायें माताके पास बैठकर अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्न करतीं थीं और माता प्रजावती बुद्धिपूर्वक उसका स्पष्ट उत्तर देती थीं। उनमें कुछ प्रश्नोत्तर इस प्रकारके थे—

प्रश्न—माता ! इस संसारमें तुम्हारे समान परम सौभाग्यवती अन्य कौन स्त्री हो सकती है ? उत्तर—जो स्त्री धर्मके स्वामी तीर्थंकरोंको उत्पन्न करनेवाली हो। प्रश्न—संसारके अन्दर अज्ञातको दूर करनेवाला उत्तम गुरु कौन हो सकता है ? उत्तर—जो गुरु वास्तविक रूपसे तत्त्वोंका जानकार हो, वाहु अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिप्रहोंसे रहित हों एवं अपनेको और संसार समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंको पापसे तारनेवाले हों।

प्रश्न—संसारमें कुगुरु—मिथ्या गुरु कौन है ? उत्तर—जो स्पर्शन रसना आदि पांचों इन्द्रियोंके विषय में आसक्त हो, वाहु अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परि-

१. इकारका अर्थ स्वर्ग भी है इसलिये 'शृजमुर्मागल्यान् भजस्व' अर्थात् स्वर्ग सम्बन्धी अत्यन्त मांगलिक पदार्थोंको प्राप्त करो, यहाँ पर 'भजस्व, यहु भी एक गुप्त किया है परन्तु यह स्पष्ट जान पड़ती है एवं इस क्रियाको गुप्त माननेपर अर्थका अच्छी तरह संघटन नहीं होता बलः 'अहारि' यही क्रियापद चमत्कार परिपूर्ण है अथवा 'मनीहरध्युहर्यादीना' ऐसा भी पाठ हो सकता है और उस पाठमें 'अहरत्' यह क्रियापद गुप्त है। 'महारि' और 'अहरत्' का अर्थ एक समान है।

कोऽधमो यस्तपस्योऽप्यक्षमोऽक्षार्द्धात्मने । को विद्वान् यो विज्ञारको हेयादेयागमादिवित् ॥४३॥
 को मूर्खो यः श्रुतज्ञोऽपि समदः पापमाचरेत् । त्वरिति कि बुधेः काय साधनं स्वर्गमोक्षयोः ॥४४॥
 कि पथं घलपो दानं वृत्तं शीलदृगादित् । कि मवलं वृषं यत्सत्तपोदानादिभिः कृतं ॥४५॥
 कीदृशं वचनं श्लाघ्यं हितं तथं पित शुभं । को जागर्ति निजात्मजो मोहनिद्रातिगोऽन्नय यः ॥४६॥
 कि प्रशास्यं कृतं यच्च तपोदानं सुदुर्बलः । के वेरिणः कषायाश्च दुध्यनिविषयादयः ॥४७॥

यहमें ममत्वं रखनेवाला हो एवं क्रोधी मानी आदि होने से अत्यन्त प्रसादी हो ।
 प्रश्न—संसारमें समस्त पुरुषोंमें उत्तम पुरुष कौन है ? उत्तर—जो मोहसे रहित हो और मोक्षके लिए सदा प्रयत्न करनेवाला हो ॥४०-४१॥ प्रश्न—संसारके अन्दर सबसे नीच पुरुष कौन है ? उत्तर—जो अनेक प्रकारसे तपोंको आचरण करनेवाला तो हो परंतु इन्द्रियरूपी शत्रुओंके घातनेमें असमर्थ हो अर्थात् विषयोंका लंपटी होने-के कारण इन्द्रियोंको बश करनेवाला न हो । प्रश्न—संसारमें विद्वान् पुरुष कौन है ? उत्तर जो हर एक पदार्थका वास्तविक रूपसे विचार करनेवाला हो, यह पदार्थ छोड़ने योग्य है और यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य है इस प्रकारका अच्छी तरह जानकार हो तथा आगमका भी जानकार हो ॥४२॥ प्रश्न—संसारके अन्दर मूर्ख कौन है ? उत्तर—जो अनेक प्रकारके शास्त्रोंको जानकर भी अत्यन्त अहंकारी हो और सदा पापोंका आचरण करनेवाला हो । प्रश्न—संसारमें सबसे जलदी मनुष्यों-को क्या कार्यं करना चाहिये ? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षका साधन ॥४३॥ प्रश्न—इस संसारमें पथ—हितकारी पदार्थ क्या है ? उत्तर—तप दान द्वतोंका पालन और सम्यग्दर्शन आदिका धारण । प्रश्न—संसारमें सबसे बलवान् पदार्थ क्या है ? उत्तर—उत्तम तप और दान आदिके द्वारा प्राप्त किया हुआ उत्कृष्ट धर्म । प्रश्न—संसारमें कैसा वचन बोलना अच्छा माना जाता है ? उत्तर—हितकारी सत्य परिभित और शुभ । प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन है ? उत्तर—जो महापुरुष सदा अपनी आत्माके स्वरूपका चिन्तवन करनेवाला हो एवं मोह और निद्रासे रहित हो । प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्यं क्या माना जाता है ? उत्तर—जो पुरुष अत्यन्त दुर्बल है तप और दानके करनेमें असमर्थ है उनके द्वारा किया गया तप और दान । प्रश्न—संसारमें सामान्य रूपसे जीवोंके बंरी कौन है ? उत्तर—क्रोध, मान, साया, लोभ ये चार कषाय, निद्रित ध्वान और इन्द्रियोंके विषय ॥४४-४६॥

को मित्रः (?) साहृकर्ता यो धर्म वृत्तार्चनादिषु । कः शत्रुयस्तपोदानं धर्मकर्त्रं ददाति न ॥४७॥
 पीयूषमिव कि पेयं जिनेन्द्रवचनामृतं । कः सुखी योऽन्नं सतोषी को दुःखी योऽक्षलंपटः ॥४८॥
 को धनी योल्पद्रव्योऽपि बहुदानादिकारकः । को दरिद्री धनाळ्योऽपि ऋगेददेशान् धनाशयः ॥४९॥
 सर्वोत्कृष्टोऽन्नं को यः सत्पंचकल्पाणशर्मभाक् । किकराः कस्य देवेन्द्रा मत्पुत्रस्य न वान्यथा ॥५०॥
 कि कार्यं येन जायेत यशोषमास्ति लं सुखं । किमकार्यं च येनोत्पद्यते पापायशोऽसुखं ॥५१॥
 इत्यादि बहुप्रश्नानि प्रयुक्तानि शुभानि च । दुष्कराण्यपि देवीभिर्जिनेशमातरं प्रति ॥५२॥

प्रश्न—संसारमें वह पुरुष कौन है जो मित्र हो ? उत्तर—जो धर्मका पालन करनेवाला, चरित्रका आचरण करनेवाला और पूजा आदि उत्तम कार्योंमें सहाय करनेवाला हो ।
 प्रश्न—शत्रु पुरुष कौन है ? उत्तर—जो धर्म करनेवालेको न तपका उपदेश देता है और न दान आदि देता है ॥४७॥ प्रश्न—संसारमें अमृतके समान पीने योग्य पवार्य क्या है ? उत्तर—भगवान जिनेन्द्रका बचनरूपी अमृत । प्रश्न—संसारमें सुखी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो संतोष रखनेवाला है । प्रश्न—संसारमें दुखी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियोंके विषयमें लंपट है ॥४८॥ प्रश्न—संसारमें अत्यन्त धनवान पुरुष कौन साना जाता है ? उत्तर—धन तो जिनके पास कम हो परन्तु वान आदि उत्तम कार्योंको अधिकतासे करनेवाला हो । प्रश्न—संसारमें निर्धनी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो अत्यन्त धनवान होने पर भी धनको आशासे परदेशोंमें घूमता फिरता हो एवं दान आदि उत्तम कार्योंमें धन खर्च करनेवाला न हो ॥४९॥ प्रश्न—संसारमें सबसे उत्कृष्ट पुरुष कौन है ? उत्तर—जिसके गर्भ जन्म आदि पाँचों कल्पाण हों । प्रश्न—इस संसारमें ऐसा पुरुष कौन है जिसके नौकर बड़े बड़े देवेन्द्र भी होते हैं ? उत्तर—मेरे पुत्रके अर्थात् तीर्थंकर भगवानके देवेन्द्र आदि नौकर रहते हैं । अन्य किसीके द्वे नौकर नहीं हो सकते ॥५०॥ प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्य क्या साना जाता है ? उत्तर—जिसके करनेसे सर्वत्र यश विस्तरे, धर्मका लाभ हो और समस्त प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति हो । प्रश्न—संसारमें अकार्य-निन्दित कार्य क्या है ? उत्तर—जिससे पापकी उत्पत्ति हो । सर्वत्र निदा फैले एवं अनेक प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति हो ॥५१॥ भगवान मल्लिनाथकी माता प्रजावतीके प्रति देवियोंने ऊपर कहे गए प्रश्नोंको आदि लेकर और भी शुभ अत्यन्त कठिन प्रश्न किए थे जिनका कि उत्तर देना साधारण न था तथापि उस माताके गर्भमें तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक स्वयं भगवान

तेषां प्रस्तुतरं राज्ञी ददो व्यवतं सुयुक्तिभिः । त्रिज्ञाननेत्रतीर्थेशतदग्भर्मस्थप्रभावतः ॥५३॥
जगत्नाथेन तेनासौ गर्भस्थेन परां श्रियं । बभार रत्नगर्भेव मही चाकरणोचरा ॥५४॥
तीर्थेशोऽब्रोदरस्थोपि न स्वामातुरजीजनत् । मनाकृपीडां तथा मुक्तापलः (ल) शुक्तिपटास्थितः (त) ॥
त्रिवलीभगुरेऽस्या नोदरेऽभूत्कापि विक्रिया । तथापि ववृषे गर्भः प्रभावात्तज्जनेशिनः ॥५५॥
पूर्णेऽथ नवमे भासि भागशीर्षसमाह्वये । अश्विन्याख्ये सुनक्षत्रे धवलैकादशोदिने ॥५६॥
सुलग्ने शुभयोगे तं पुत्रं ज्ञानत्रयाश्रितं । सुखेन विजगत्स्वामिनं प्रासूतं प्रजावती ॥५७॥

तीर्थकर विराजमान थे इसलिये उनके प्रभावसे कठिनरूपसे किये गये भी देवियोंके प्रश्नोंका उत्तर माताने बड़ी पुक्ति और गम्भीरताके साथ स्पष्ट रूपसे दिया था । गर्भमें विराजमान भगवान तीर्थकरके माहात्म्यने ऐसा कोई भी देवियोंका प्रश्न नहीं बचा था जिसका उत्तर मातासे न बना हो ॥५२-५३॥

यद्यपि वे तीन लोकके नाथ भगवान मलिलनाथ गर्भके अन्दर विराजमाने थे, गर्भसे बाहिर उनका कोई भी शरीरका अवयव प्रकट न था तथापि जिस प्रकार रत्नोंकी प्रभासे देवीप्यमान खानोंकी धारक पृथिवी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है उसी प्रकार उस माताके शरीरमें भी अलौकिक शोभाको छटा छटकने लगी थी ॥५४॥ यद्यपि वे तीर्थकर भगवान मलिलनाथ अपनी माता प्रजावतीके उदरमें विराजमान थे तथापि जिस प्रकार सीपके मध्य भागमें मोती रहता है—वह रंचमात्र भी सीपको बलेशका करनेवाला नहीं होता उसी प्रकार माता प्रजावतीको भी उनके गर्भमें रहनेपर किसी प्रकारका क्लेश न था अर्थात् गर्भके भारसे जैसा अन्य स्त्रियोंको क्लेश उठाना पड़ता है वैसा भगवान मलिलनाथको गर्भमें धारण करनेसे माता प्रजावतीको रंचमात्र भी क्लेश न था ॥५५॥ गर्भसे पहिले माता प्रजावतीका उदर त्रिवलीसे शोभायमान था भगवान मलिलनाथके गर्भमें आनेपर त्रिवली नष्ट होकर उदरको बढ़ना चाहिये था परन्तु उन जिनेन्द्रके अनुपम प्रभासे वह त्रिवली जैसी थी वैसीकी बैसी ही विद्यमान रही रंचमात्र भी उदरके अन्दर किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ । परन्तु ऐसा होनेपर भी गर्भ—गर्भके अन्दर बालक भगवानका शरीर निरन्तर बढ़ ही रहा था किन्तु उदरके न बढ़नेसे गर्भ न बढ़ता था यह बात न थी ॥५६॥

जब ठोक नवमा मास पूर्ण हो गया उस समय अगहन मासकी शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन जब कि अद्विनी नामका शुभ नक्षत्र था लग्न भी अत्यन्त सुन्दर था, योग भी शुभ था माता प्रजावतीने मति श्रुत अवधिरूप तीन ज्ञानके धारक एवं तीन

तदा तज्जन्ममाहात्म्यात्स्वलोकेऽसुरभूरुहः । मुमुक्षुः कुमुपान्युच्चवंबो च शिशिरो मरुत् ॥५९॥
 अनाहृता महानादा दध्वनुनिजरानकाः । आसनानि सुरेशानामकस्मात्प्रज्ञकपिरे ॥६०॥
 वभूवुर्मौलिथो तच्चा घटाध्वानोऽभवत्स्वयं । इति चिह्नेन देवेशास्तदुत्पत्तिमजानत ॥६१॥
 ज्योतिलोकालये सिहनादोऽभूद्धावनालये । शोखशब्दोऽतिग्रभीरो व्यंतराणां च धामनि ॥६२॥
 भेरीरक्षस्तथाऽशेषमाश्चर्यमभवत्तरां । इति चिह्नेन तच्छक्षास्तत्कल्याणे मर्ति व्यथुः ॥६३॥
 ततोऽखिलस्वसामाध्याः स्वस्ववाहनमास्थिताः । जय जीवेष्व नंदाचर्येति कोलाहलकारिणः ॥६४॥
 द्योतयंतो दिशा अग्रम स्वांगभूषणरश्मभिः । पूरयंतो दिशः खे च सुवाद्याध्वनिकोटिभिः ॥६५॥
 सुगीतनर्तनोत्साहैर्महोत्सवशतोत्सुकाः । सामराः सकलश्रावच चतुर्णिकायदस्वाः ॥६६॥

लोकके स्वामी पुत्र-भगवान मलिलनाथको जन्म दिया ॥५७-५८॥ परम पावन भगवान मलिलनाथके जन्मके माहात्म्यसे आकाशसे देवोंके द्वारा कल्पवृक्षोंके पुष्पोंको विपुल वर्षा होने लगी । मन्द मन्द शीतल सुमन्धित पवन बहने लगी, बिना बजाये एवं गम्भीर शब्द करनेवाले देवोंके बाजे बजने लगे । अकस्मात् ही देवोंके आसन कंपायमान हो गये । उनके मुकुट नस्त्रीभूत ही गये एवं घण्टोंका गंभीर शब्द होने लगा । इसलिये इन शुभ चिह्नोंसे देवोंको स्पष्टरूपसे मालूम पड़ गया कि भगवान मलिलनाथका जन्म हो गया ॥५९-६१॥ उस समय भगवान मलिलनाथके जन्मकालमें ज्योतिषी देवोंके घरोंमें आपसे आप सिहनाद नामका बाजेका विपुल शब्द हो निकला । भवनवासी देवोंके भवनोंमें अत्यन्त गंभीर शंखका शब्द होने लगा था । व्यंतर देवोंके घरोंमें भेरी नगाडेका शब्द होने लगा था । वैमानिक देवोंके आसन कंपायमान हो निकले थे । इनके सिवाय भगवान मलिलनाथके जन्मकालमें और भी अनेक प्रकारके आश्चर्य होने लगे थे जिनसे हर एक निकायके इन्द्र उनके जन्म-कल्याणमें सम्प्रलिप्त हुए थे ॥६२-६३॥ उसके बाद सैकड़ों प्रकारके महोत्सवोंके करनेमें लालायित सौधर्म स्वर्गके इन्द्रको आवि लेकर चारों निकायोंके समस्त इन्द्रोंने अपनी अपनी आश्यक चीजें अपने अपने साथ ले लीं । अपने बाहनोंपर वे सवार हों गये “हे स्तुति करने योग्य भगवान् । आप जयवंत रहें और जीवें । हे पूज्य ! आप कले फूले वृद्धिको प्राप्त हों” इस प्रकार उस समय बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा । अपने अपने शरीरोंके उत्तमोत्तम भूषणोंको किरणोंसे उन्होंने समस्त दिशायें और आकाश जगमगा दिया । सैकड़ों प्रकारके बाजेके शब्दोंसे शुंभ मनोहर गीत नृथ और उत्साह परिपूर्ण कायोंसे समस्त दिशाये और आकाश पूर दिया

महाभूत्या समस्ताः सोधमेन्द्रप्रमुखा मुदा । पित्रोरास्थानमाजरमुस्तज्जन्मोत्सवहेतवे ॥६४॥
 तदा राजांगणं सर्वं स्वर्गलोकमिवाबभी । अप्सरोदेवसेनाद्यः पुरीमार्गवनादि च ॥६५॥
 ततः शचो त्रविश्याशु प्रसवागारमूर्जितं । कुमारेण सहापश्यज्जनेऽद्भातरं मुदा ॥६६॥
 मुहुः प्रदिक्षिणोकृत्य प्रणध्य त्रिजगदगुहं । जितांवायाः पुरः स्थित्वा इलाध्यते स्मेति तां शचो ॥६७॥
 त्वयेव ! भूवनांवासि जगदगुहप्रसूतितः । महादेवी त्वमेवाद्य महादेवमुतोद्भवात् ॥६८॥
 त्वं जगत्त्रयनारीणां शिरोमणिः परासि च । स्वामिनो जगतां देवो ! त्वं कल्याणी सुर्मंगला ॥६९॥
 इत्यभिष्टुत्य गृहांगी तां मायानिद्रयाऽद्युजत् । तस्याः पुरो निधायाशु मायाशिशुमयापरं ॥७०॥

इस प्रकार अपने अपने आज्ञाकारी देव और अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ वे भगवान् महिलनाथका जन्मकल्पण मनानेके लिये विशाल विभूति और हृषके साथ मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये ॥६४-६७॥ जिस समय सौषर्म आदि इन्द्र और देवगण मिथिलापुरी में आ गये उस समय राजा कुम्भके महलका आंगन, समस्त मिथिलापुरी मार्ग वन आदिमें जहाँ देखो वहाँ देवोंगता देव और यात्रुगत आदि रेता ही सर्वत्र नजर आती थी । इसलिये उस समय मिथिलापुरीमें स्वर्गलोकका दृश्य देख पड़ता था । मिथिलापुरी ही लोगोंको दृष्टिमें स्वर्गभूमि जान पड़ती थी ॥६८॥ जिस महलके अंदर भगवान् महिलनाथका जन्म हुआ था वह महल अपनी प्रभासे जगमगा रहा था । देवोंके राजमहलके आंगनमें पहुँचते ही सौषर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने शीघ्र ही उस मनोहर महलके अंदर प्रवेश किया एवं वहाँपर कुमार भगवान् महिलनाथके साथ अत्यन्त कोमल सेजपर शयन करती हुई माता प्रजावती-को बड़े हृषके साथ निरखा ॥६९॥ आनंदसे पुलकित हो इन्द्राणीने तीन लोकके गुरु भगवान् जिनेंद्रको बार बार प्रदक्षिणा दी । पदचात् अत्यन्त भक्षिसे नमस्कार किया । वह भगवान् जिनेंद्रको माताके सामने विनयपूर्वक बैठ गई एवं मनोहर शब्दोंमें इस प्रकार उसको स्तुति करने लगी—

हे माता ! तीनों लोकोंके गुरु भगवान् महिलनाथको तुमने जन्म दिया है इसलिये तुम समस्त लोकको माता हो । तुम्हीनि देवोंके देव महादेव पुत्रको उत्पन्न किया है इसलिये हे माता ! तुम्हीं संसारके अंदर महादेवी हो ॥७०-७१॥ माता ! तुम्हारे समान तीनों लोकके अंदर कोई भाग्यवती स्त्री नहीं इसलिये तुम्हीं तीनों लोककी स्त्रियोंकी शिरोमणि हो । तुम्हीं समस्त जगतमें उत्कृष्ट हो । तुम्हीं तीनों लोककी स्वामिनी हो एवं तुम्हीं कल्याणरूपिणों और संगलमयी हो ॥७२॥ इस

जगन्नाथं स्वपाणिभ्यामादाय सागमन्मुदं । तन्महारूपसौदर्यं पश्यन्ते कृतकौतुका ॥७४॥
 तदा मंगलधारिण्यो दिक्कुमर्त्यः पुरो ययुः । विश्वर्मगलकर्तुष्टुत्राद्यारेपितपाणयः ॥७५॥
 आनीय सुकरे देवी सौधर्मन्दस्य तं व्यधात् । सोऽपि तद्रूपमालोवय दिव्यां प्रीतिं परामगात् ॥७६॥
 देव ! त्वं बालचंद्रोदगतोऽस्माकं परमं मुदं । कतुं त्वमेव भोहोष्टमोहृता भविष्यति ॥७७॥
 स्वं नाथ ! केवलज्ञानभानोः किलोदयाचलं । आमनंति विदो मिद्याज्ञाननिद्रात्मोहरं ॥७८॥
 मोहोष्टकूपपातास्वं धर्महस्तावलंबनात् । निःकारणजगद्ध्युरुद्धरिष्यसि नात्यथा ॥७९॥

प्रकार महामनोहर शब्दोंसे स्तुति कर इन्द्राणीने अपनी मायासे माता प्रजावतीको सुख निद्रामें निद्रित कर दिया । ठीक भगवानके ही आकार प्रकारके एक मायामयी पुत्रका निर्माण कर उसे माताकी गोदमें सुला दिया । तीन लोकके गुरु भगवान जिनेंद्रको माताकी सेजसे अपने हाथोंसे उठा लिये एवं बड़े आइचर्यसे उनके महामनोहर रूप और सौंवर्यको देखकर मारे आलन्दके गदगद् हो गई ॥७३-७४॥ जहाँ पर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र खड़ा हुआ था भगवान जिनेंद्रको लेकर इन्द्राणी उसी ओर चली । समस्त जगतके मंगलके कर्ता भगवान महिलनाथके आगे आगे जिनके हाथोंमें छत्र चमर आवि लगे हुए हैं ऐसे मंगलीक द्रव्योंको धारण करनेवाली दिक्कुमारियां चलने लगीं ॥७५॥ पासमें आकर इन्द्राणीने सौधर्म स्वर्गके शुभ हाथोंमें भगवान जिनेंद्रको सौंप दिया । वह भी भगवान जिनेंद्रका अद्वितीय रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । एवं आनंदसे गदगद् हो इस प्रकार भवितपूर्वक स्तुति करने लगा—

हे भगवन्, हे बालचंद्र ! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करनेके लिए संसारमें तुम्हारा उदय हुआ है क्योंकि चंद्रमा के उदयसे लोगोंको हृष्ट होता है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है तथा जिस प्रकार चंद्रमा अंधकारका नाश करनेवाला होता है उसी प्रकार मोहरूपी गाढ़ अंधकारके तुम भी नियमसे नाश करनेवाले होगे । जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेका स्थान उदयाचल हूँ उसी प्रकार हे नाथ ! केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेके लिये आप उदयाचल हो तथा हे भगवान् ! चिद्रान् लोग तुम्हें ही मिद्याज्ञान और निद्रारूपी अंधकारके नाश करनेवाले मानते हैं ॥७६-७८॥ हे भगवन्, संसारके समस्त प्राणी मोहरूपी अंधकारसे परिपूर्ण कूपमें पड़े हुए हैं उनको धर्मरूपी हाथका अवलंबन देकर आप ही उद्धार करेंगे दूसरे किसी व्यक्तिमें सामर्थ

अतस्तुभ्यं नमो नाथ ! विश्वानंदविषयादिने । नमस्ते बालचंद्राय नमस्तेऽद्भुतमूर्तये ॥८०॥
नमस्ते मुक्तिकांतामनोहराय सुखात्मने । नमस्ते विश्वनाथाय विश्वकल्याण भागिने ॥८१॥
स्तुत्येति स तमारोप्य स्वांकमैरावताश्रितं । हस्तसुच्चालयामास (?) मेरुं प्रति सुग्रवृतः ॥८२॥
जयेण नंद वर्षस्व त्वमिति ध्वनिकोटिभिः । तदा कलकर्ल चकुर्हृष्टा देवाः प्रमोदतः ॥८३॥
सौधर्भक्लनाथस्यांकासीन त्रिजगदगुरुः । ऐशानेदस्तदा भेजे सितच्छत्रेण सादर्द ॥८४॥
सनत्कुमारमाहेद्वामिनो धर्मचक्रिणः । चामरैस्तं अपघृन्वातां क्षीरब्ध्युमिनिभैः सितैः ॥८५॥
दृष्ट्वा तदातनो भूति केचित्दृष्टिनिर्जरा । इन्द्रप्रामाण्यमाधाय च कुर्जेनमते मर्ति ॥८६॥

नहीं जो उद्धार कर सके । इसलिये संसारमें बिना प्रयोजनको यवि बंधु हैं तो आप ही हैं अन्य कोई आपके समान निष्प्रयोजन बंधु नहीं हो सकता ॥७९॥

इसलिये हे नाथ ! आप समस्त लोकको आनन्द प्रवान करनेवाले हैं अतः आपके लिये नमस्कार है । आप संसारमें सबको प्रसन्न करनेवाले बालचंद्रमा हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है । तुम आश्चर्यकारी मूर्तिके धारक हो इसलिये तुम्हारे लिये नमस्कार है । हे प्रभो ! मोक्षरूपी स्त्रीके चित्तको हरण करनेवाले आप ही हो और आप मुख हो स्वरूप हो इसलिये आपके लिये नमस्कार है । हे देव ! तुम्हीं समस्त लोकके स्वामी हो और तुम्हीं समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त करनेवाले हो इसलिए तुम्हारे लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार है ॥८०-८१॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक मनोहर शब्दोंसे स्तुति कर इन्द्रने भगवान मलिलनाथको ऐरावत हाथीपर बैठे ही बैठे अपनी गोदमें ले लिया एवं उनका अभिषेक करनेके लिए अनेक देवोंसे बैष्टित वह मेरु पर्वतकी ओर चल दिया ॥८२॥ भगवान मलिलनाथकी इन्द्रकी गोदमें विराजमान देख समस्त देव मारे आनंदके पुलकित हो गये एवं मनके अंदर अत्यन्त प्रभोद धारण कर दे "हे स्वामी ! तुम चिरकाल तक जीवो, नावो, विरवो" इस प्रकार गंभीर शब्दोंमें उन्नत कोलाहल करने लगे ॥८३॥ तीन जगतके गुरु भगवान मलिलनाथको सौधर्भ इन्द्रकी गोदीमें विराजमान देख ऐशान स्वर्गके इन्द्रको बड़ा भारो संतोष हुआ आनंदसे गद्गद हो बड़े आदरसे उसने भगवान पर छत्र लगा लिया ॥८४॥ सनत्कुमार और माहेद्र स्वर्गोंके इन्द्र भी धर्मके चक्रवर्ती भगवान मलिलनाथपर चमर ढोरने लगे जो चमर क्षीर समुद्रकी तरंगोंके समान महामनोहर और सफेद थे ॥८५॥ भगवानके पांचों कल्याणोंमें समस्त देव सम्पर्यदृष्टि ही आवें यह नियम नहीं बहुतसे मिथ्यादृष्टि देव भी आते हैं क्योंकि वे इन्द्रके आज्ञाकारी होते हैं इसलिये इन्द्रकी आज्ञानुसार अवश्य उन्हें वही पर आना पड़ता है । भगवान

तस्मात्प्रोगं व्याप्य विभूया परथा सम । स्वत्वा हनभाष्ठे: कल्पताथेमंहोत्सवै ॥८७॥
 वीणामृदंगवंशाद्यैष्वनद्विविकोटिभिः । गंधर्वकिन्नरीभिश्च गायतीभिस्तदुत्सवै ॥८८॥
 कुर्वतीभिः परं नृत्यमप्सरोभिर्मनोहरं । छादयतीभिराकाशं ध्वजछत्रादिपंचितभिः ॥८९॥
 सौधर्मेऽद्विधर्मात्मा चासृथसूरवेष्टितः । मैरुपरीत्य सानदो जगन्नाथं व्यधानमुदा ॥९०॥
 जन्मस्नानाय तीर्थेण शाचीचकादिभेष्टितं । तन्मूर्खीशानदिक्पांडकशिलाहरिचिष्टरे ॥९१॥
 शुद्धस्फटिकरत्तरशिमकलिता प्रक्षालितानेकशो । वारान् सीरसमुद्र तोयनिवहैमुंकतामनां वा शिला ॥

महिलनाथके जन्मकालमें जो भी मिथ्यादृष्टि देख आये थे वे भी यह निश्चय कर कि “जब स्वयं सौधर्म स्वर्गका स्वामी भगवान् महिलनाथकी सेवामें भक्तिपूर्वक लगा हुआ है तब यही ठीक जान पड़ता है कि समस्त मतोंमें जैन मत ही पवित्र और कल्पाणका करनेवाला है अन्य मत नहीं” उनका जैनधर्म पर गाढ़ अद्भुत हो गया ॥८६॥ उस समय मेरुपर्वतपर जानेका अवसर था इसलिये समस्त देव, मथ अपने अपने इन्द्रोंके अवने अपने वाहनों पर सवार थे । भगवान् जिनेंद्रके नाम प्रकार-के महोत्सवोंके करनेमें थएग थे । ओन मृदंग बांसुरो आदि करोड़ों प्रकारके बाजे बजते थे । भगवान् जिनेंद्रके उत्सवका गान गंधर्व जातिके देव और किन्नर जातिकी देवांग-नायें महामनोहर ललित शब्दोंसे करती चली जाती थीं । उस समय अप्सरायें नेत्रों-को परमानंद प्रदान करनेवाला महामनोहर नृत्य करती चली जाती थीं । ध्वजा और छत्र आदि चीजोंकी भरमारसे उस समय सारा आकाश ढका सरोला जान पड़ता था । इस प्रकार उत्कृष्ट और विपुल विभूतिसे उस समय सारा आकाश व्याप्त था ॥८७-८९॥ जो अपने पीछे और आगे चलनेवाले असंख्यात देवोंसे व्याप्त था और परम धर्मात्मा था ऐसा सौधर्म स्वर्गका इंद्र जिस समय मेरु पर्वत पर आया भक्तिभावसे उसकी तीन प्रदक्षिणायें दी एवं अत्यन्त हृष्टके साथ तीन लोकके स्वामी भगवान् महिलनाथको मेरु पर्वतपर ले आया ॥९०॥ मेरु पर्वतके मस्तकपर ईशान-कोणमें एक पांडुक नामकी शिला है और उसके मध्य भागमें सिंहासन विद्यमान हैं । इन्द्राणि और अनेक इंद्र आदिसे वेष्टित सौधर्म स्वर्ग इन्द्र उस स्थान पर आया एवं तीर्थकुर महिलनाथका जन्माभिषेक करनेकी उत्कृष्ट अभिलाषासे उन्हें वहाँ पर विराजमान कर दिया ॥९१॥

जिस पांडुक शिलापर ले जाकर इन्द्रने भगवान् महिलनाथको विराजमान

सायामा शतयोजनैव विमला तुगाष्टभिविस्तुता । पंचाशतप्रमितैविभाति नितरां छत्रादिसन्मंगलैः ॥
तत्रानल्पपराध्यरत्ननिचिते हैमे सुर्सिंहासने, देवो दिव्यशरीरकौतिनिचयैरुद्योतिताशाच्चः ।
यः शक्तादिगणैर्जिनेन्द्रपदभूत्सविष्ठितः संबभौ, तं लोकत्रयतारणैकचतुरः स्तोष्ये गुणेस्तच्चिदे ॥९३॥
इति श्रीमल्लनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकोतिविरचिते गर्भकल्याणवर्णनो नाम चतुर्थःपरिच्छेदः ॥४॥

किया था उस शिलाकी प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—कि वह पांडुक शिला अत्यन्त शुद्ध स्फटिकमयी पाषाण की है और उस स्फटिक मणिसे निकलने वाली रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त है । उस शिलापर अनंते तोर्यकरोंका अभिषेक किया जा चुका है इसलिये क्षीर समुद्रके विपुल जलोंसे वह अनेक बार प्रक्षालित की जा चुकी है अर्थात् जब जब तोर्यकरोंका अभिषेक हुआ है तब तब क्षीर समुद्रके विपुल जलसे ही हुआ है । इसलिये उस पांडुक शिलापर जिन-जिन महापुरुष तोर्यकरोंका अभिषेक हुआ है उनके अभिषेकोंके साथ उस शिलाका भी अनेक बार अभिषेक हो चुका है अतएव पवित्रतासे वह सिद्धशिलाके समान महापवित्र और उत्तम है । वह निर्मल शिला भी योजनकी लम्बी है । आठ योजन प्रमाण ऊँची है एवं पचास योजन प्रमाण उसकी ओड़ाई तथा सदा उसके ऊपर छत्र चंदोंवे आदि मंगलीक द्रव्य तैयार रहते हैं इसलिए उनकी प्रभासे सदा जगमगाती हुई अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है ॥९२॥
उस महामनोहर शिलाके मध्यभागमें एक महामनोज सिंहासन है जो अगणित उत्तमोत्तम रत्नोंसे व्याप्त है और सुवर्णमयी है । भगवान जिनेन्द्रको उस पर जाकर विराजमान कर दिये । उस समय भगवानके दिव्य शरीरकी प्रभाओंसे समस्त दिशायें शोभायमान थीं और इन्द्र आदि देवोंसे चारों ओरसे वेष्ठित वे भगवान मल्लनाथ उस समय महामनोहर जान पड़ते थे इसलिये ऐसे तीनों लोकके जीवोंको तारनेवाले भगवानको मैं उनकी गुणसंपदाकी प्राप्तिकी अभिलाषासे भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ और उनके गुणानुकाव करता हूँ ॥९३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लनाथ चरित्रकी पं० गजावरलालजी
न्यायतोर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें उनके गर्भ और जन्म इन दो
कल्याणोंका वर्णन करने वाला चौथा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥४॥



पंचमः परिच्छेदः

वै जगत्रयानदक्तारं ज्ञानभास्करं । जिनचन्द्रं महामोहतमोहंतारमदभुतं ॥ १ ॥
 तामावेष्ट्याथ गीवणास्तत्स्थुदिवपालकामरा: । यथायोग्य स्वदिग्भागे दृष्टुकामा जिनोत्सवं ॥ २ ॥
 महामंडपविन्यासश्चक्रे देवैर्महोत्सवं । कुर्यात् सुराश्च तदेव्यो गीतवाद्यादिनर्तनैः ॥ ३ ॥
 ततः स्वर्णमयैः कुर्मभूमि योजनविस्तृतैः । अष्टयोजनगंभीरमुक्तामालादिभूषितैः ॥ ४ ॥
 अनेकैर्वहवः स्वच्छांभः शुचिक्षीरक्षारिधैः । सुराः श्रेणीकृतास्तोषादानेतुः प्रसृतास्तदा ॥ ५ ॥

जो भगवान तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं तथा जो सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यस्वरूप भी हैं और महामोहरूपों अंधकारको नष्ट करनेवाले चन्द्रमा स्वरूप भी हैं अर्थात् जो चल्द्रमा है वह सूर्य नहीं हो ज्ञाता और जो सूर्य है वह चन्द्रमा नहीं हो सकते । क्योंकि दोनोंका स्वरूप परस्पर विरोधी और भिन्न है इसलिए एक ही भगवान जिनेन्द्र सूर्य और चन्द्रमा दोनों स्वरूपमें नहीं हो सकते परन्तु ऐसा होनेपर भी सूर्यके समान अपने ज्ञानसे पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले होनेके कारण जो सूर्य स्वरूप भी एवं चन्द्रमा जिस प्रकार अंधकारका नाशक है उसी प्रकार जो महामोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं इसलिये चन्द्रमा स्वरूप भी हैं ऐसी अद्भुत मतिके धारक भगवान जिनेन्द्रको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ जिस पांडुक शिलाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका उत्सव देखनेके लिये देवगण चारों ओरसे उसे घेरकर बैठ गये तथा विशांओंके पालन करनेवाले दिक्पाल देव भी उत्सवका ठाट बाट देखनेके लिये यथायोग्य अपनी अपनो विशांओंमें स्थित हो गये । पांडुक शिलापर देवोंने भगवान जिनेन्द्रको अभिषेकके समय एक विशाल मण्डपका निर्माण किया था । देवियोंने महामनोहर गीत उत्समोत्सम वाजोंके शब्द और नृत्योंके साथ भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका महान उत्सव करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २ ॥ भगवानके अभिषेकके समय देवगण सुवर्णमयी कुम्भोंसे क्षीरोदधि समुद्रका अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र जल लाते हैं उससे भगवानका अभिषेक किया जाता है । जिन सुवर्णमयी कलशोंसे भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका जल लाया गया था उन कलशोंका मुख एक एक योजन चौड़ा था । आठ योजन प्रमाण वे गहरे थे । मोतिप्रोंकी माला आदिसे भूषित थे और अनेक अर्थात् संख्यामें एक हजार आठ थे । क्षीर समुद्रसे जल लाते समय देवोंके चित्त आनन्दसे आनन्दायमान थे इसलिये

विनिमिये मुदा वाहून् सहस्रप्रमितान् परान् । तत्स्नानायादिकल्पेशो दिव्याभरणमंडितान् ॥६॥
 कुभोदबृत्तेलंसद्गतेजिनमूर्जिन् सुरेश्वरः । जयेत्युक्तवा परां धारां प्रथमां स न्यपातयत् ॥७॥
 तदा कलकलो भूयान् चक्रेऽसंख्यसुरासुरैः । ततः कल्पाधिषेः सर्वेः समं धारा निपातिताः ॥८॥
 महानद्य इवापत्त्वाधर्मास्तस्य मस्तके । लीलयेव महिम्नासी ताः प्रतीच्छेदिगरीद्वयत् ॥९॥
 सदा वभी नभौभागं चापच्छटाभा (भि) संकुलं । तत्पाण्डुकवनं विश्वं क्षीरपूर्णं इवाणवः ॥१०॥
 अनेकगीतनृत्याद्यैः प्रब्बन्दाद्यकोटिभिः । महोत्सवशातैननिविष्टदेव्यादिभिः कृतैः ॥११॥

वे फैलकर उस समय लडीबद्ध खड़े थे ॥४-५॥ भगवान मलिलनाथके अभिषेकके समय सौधर्म स्वर्गके इन्द्रके हृषका भी पारावार न था । अभिषेकके समय उसे दो भुजाओंसे भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक करना पसन्द न आया इसलिए अनेक दिव्य आभूषणोंसे घंडित शोभ्र ही उसने हजार भुजायें बना ली ॥६॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने “हे भगवान जयवंते रहो” ऐसा भक्तिपूर्वक उच्चारण कर जिनमें सुवर्णभयी कलश विद्यमान हैं ऐसे अपने मनोहर हाथोंसे सबसे पहिले जलधारा भगवानके मस्तकपर छोड़ी । उस प्रथम जलधाराके देते ही वहाँ पर विद्यमान असंख्याते सुर और असुरोंको परमानन्द हुआ इसलिए उनका अत्यन्त कोलाहल होने लगा एवं उसके बाद समस्त इन्द्रोंने मिलकर भगवान जिनेन्द्रके मस्तक पर अगणित जलधारायें छोड़ी ॥७-८॥ जिस समय इन्द्रगण उनके मस्तकपर जल धारा छोड़ते थे उस समय वे धारायें महान नदियोंके समान उनके मस्तक पर मिरती थीं परन्तु जिस प्रकार विश्वाल पर्वतपर पड़नेवाली नदियोंकी धाराओंसे वह रंचमात्र भी हिलता छुलता नहीं उसी प्रकार अचित्य शक्तिके धारक भगवान मलिलनाथ भी अपने अनुपम प्रभावसे उन्हें क्रीड़ापूर्वक झेलते थे, घबड़ाकर जरा भी वे हिलते छुलते न थे ॥९॥ उस समय रंग विरंगी रत्नोंकी भूमियोंपर पड़नेके कारण रंग विरंगी जलकी बूँदोंसे उत्पात आकाश इन्द्र-धनुषको शोभासे व्याप्त जान पड़ता था । पांडुक वनमें सर्वत्र क्षीर समुद्रका जल ही जल ढोलता नजर पड़ता था इसलिए पांडुक वन उस समय साक्षात् क्षीर समुद्र सरोखा जान पड़ता था ॥१०॥ इस प्रकार जिनमें अनेक प्रकारके गीत और नृत्य आदि कार्य हो रहे हैं अनेक प्रकारके करोड़ों बाजे बज रहे हैं एवं जिनका निर्माण अनेक देवी देवोंके द्वारा किया गया है ऐसे सौकहाँ महान् उत्सवोंके साथ क्षीर समुद्रके जलसे जब भगवानका अभिषेक समाप्त हो चुका तो उसके बाद धारा गिरते समय जिनसे जय जय शब्द निकलता है ऐसे मुगान्धित जलसे भरे कलशोंसे वेवेन्द्रने भक्तिपूर्वक बड़े ठाठ बाटसे भगवान जिनेन्द्रके

शुद्धाम्बुद्धपर्नं पूर्णमिति चक्रः सुरेश्वराः । विभूत्या परया भक्त्या विभोः कुभैर्जयस्वने ॥१२॥
 ततो गंधोदकैः कुभै सुगंधिद्रव्यमाश्रितैः । अभ्यषिंचद्विधानज्ञो विधातारं शताधरः (?) ॥१३॥
 गंधोदकमया धारा पतंती सा वभी तरां । सुधां धारेव गात्रेऽस्य निसर्गसुरभी वरे ॥१४॥
 इत्युत्सवशतेगंधोदकस्नपदमदभुतं । कृत्वोपाज्ये महत्पुण्ये चक्रस्ते स्वपवित्रतां ॥१५॥
 समस्ता पूरुत्याशा गंधोदकमया सतां । पवित्रा पुण्यधारेव सा पवित्रीकरोतु नः ॥१६॥
 इत्युक्तवा मस्तके चक्रः सबौंचि च सुरोत्तमा । स्वर्गसोपायनं भक्त्या तदगंधांबु स्वशुद्धये ॥१७॥
 गंधांबुद्धपनस्यांते जिनेन्द्रांगे भहोत्सर्वैः । व्यात्युक्तीममराश्चक्रः सच्चूर्णंगंधवारिभिः ॥१८॥
 निवृत्तावभिषेकस्य तं परीत्य दिवौकसः । आनच्चुः परया भक्त्या दिव्याच्छन्तसुवल्लुभिः ॥१९॥
 सकलज्ञाः सुराः कृत्वेतीष्ठिष्ठातिसुपीष्टिकान् । प्रणेमुख्तमांगेन परीत्येन जगदगुणे ॥२०॥

अभिषेकका आयोजन किया । नाना प्रकारकी महामनोहर सुगन्धित द्रव्योंसे मिथित सुगन्धित जलके भरे हुए कलशों रक्खे गये एवं उनसे समस्त प्रकारके विधानोंके जानकार इन्द्रने तीन जगत्‌के जीवोंको मोक्षमार्गका विधान सुझानेवाले भगवान् जिनेन्द्रका भक्तिपूर्वक अभिषेक किया ॥११-१२॥ भगवान् जिनेन्द्रका शरीर स्वभावसे ही अस्थन्त सुगन्धित था इसलिये उनके शरीरपर वह गिरतो हुई सुगन्धित जलकी धारा अमृतकी धाराके समान महा शोभायमान जान पड़ती थी ॥१४॥ इस प्रकार सैकड़ों उत्सवोंके साथ सबोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला वह सुगन्धित जलसे किया गया अभिषेक भी समाप्त हो गया एवं भक्तिपूर्वक अभिषेक कर उन देवोंने महान् पुण्यका संचय कर अपनेको पवित्र बनाया ॥१५॥ गंधोदकके सुगन्धित जलसे उस समय समस्त विशायै व्याप्त थीं और वह गंधोदककी धारा महापवित्र सज्जनोंके पुण्योंकी धारा सरीखी जान पड़ती थीं “वह पवित्र धारा हमें भी पवित्र करे” ऐसा उच्चारण कर देवोंने अपनी अपनी विशुद्धिकी कामनासे स्वर्गकी पैंडियों स्वरूप वह गंधोदकका पवित्र जल अपने अपने मस्तकोंसे लगाया पीछे भक्तिपूर्वक समस्त शरीरसे लगा डाला ॥१६-१७॥

सुगन्धित जलसे जिस समय भगवानका अभिषेक समाप्त हो गया उस समय अनेक प्रकारके महोत्सवोंके साथ देवोंने अगर तगर आदिके उत्समोत्सम सुगन्धित चूणांसि और सुगन्धित जलोंसे भगवान् जिनेन्द्रके शरीरका उबटन किया ॥१८॥ जब अभिषेकका कार्य और उबटनका समस्त कार्य समाप्त हो चुका उस समय दिव्य और सुगन्धित उत्सम पूजनकी सामग्रीसे भगवान् जिनेन्द्रको चारों ओरसे बेष्टित कर देवोंने बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की ॥१९॥ इस प्रकार देवोंने पूजा शान्तिविधानका कार्य समाप्त कर तीनों लोकके गुरु भगवान् महिलनाथकी तोन प्रदक्षिणा दीं और

अथाभिषेके संपूर्णे इन्द्राणी कौतुकोत्सुका । प्रसामनविधी यत्तमकरोद्घर्मदेशिनः ॥२१॥
तस्याभिषिक्तदेहस्य निसर्गसुन्दरस्य सा । अंगलग्नान् मामार्जिभः कणान् सूक्ष्मामलांशुकै ॥२२॥
स्वभावेनातिसौरम्यं विभोगर्गात्रं च्युतोपमं । अन्वलिप्यत सा भवत्या द्रव्यैः सांद्रैः सुगंधिभि ॥२३॥
ललाटे तिलकीभूते जगतामीशानुदधि । तिलकं, मुकुटं, मूर्धन् मंदारस्त्रयुतं च सा ॥२४॥
ज्ञाननेत्रप्रभोविष्ववेत्तुः परमचक्षुषाः । चक्रेस्वजनसंस्कार स्वाचाराप्त्येह केवलं ॥२५॥
कणविविद्वसच्छद्री कुङ्डलाभ्यामलंकृतो । चकार मणिहारेण कठे शोभां परां विभोः ॥२६॥
वाहूयुगमं च केयूरमुव्रिकाकंकणांकितं । चक्रे सास्य कटिभागं मणिदामविभूषितं ॥२७॥

मस्तक शुकाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अभिषेक आदि कार्योंके समाप्त हो जानेपर उनकी परम धीर वीरता देखकर आश्चर्यसे उत्सुक हो इन्द्राणीने शृंगारके लिये आयोजन करना प्रारम्भ कर दिया ॥२०-२१॥ जलसे प्रधालित शरीरके बारक और स्वभावसे ही सुन्दर भगवानके शरीरपर जो जलकी बूँद विद्यमान थीं इन्द्राणीने सूक्ष्म और निर्भील धस्त्रोंनि उन्हें पोंछकर सत्कर फर दियः ॥२२॥ जिसको उपमा किसी भी शरीरसे नहीं दी जा सकती ऐसा भगवानका शरीर यद्यपि स्वभावसे ही महा सुगंधित था इसलिये अन्य सुगंधित द्रव्योंसे उसका लेप करना निरर्थक या तथापि अपनी भक्ति प्रगट करनेके लिये इन्द्राणीने अत्यन्त सुगंधित द्रव्योंका उनके अंगपर लेप किया था ॥२३॥ तीन जगत्के स्वामी भगवान जिनेन्द्र-का ललाट समस्त अङ्गोंमें तिलकस्वरूप था अथवा संसारमें जितने भी ललाटधारी पुरुष हैं उन सबोंके ललाटमें तिलकभूत था इसलिये उस ललाटपर तो इन्द्राणीने तिलक लगाया तथा मस्तकपर मंवार जातिके कल्पवृक्षकी मालासे शोभायमान मुकुट पहिलाया ॥२४॥ नेत्रोंमें जो काजल लगाया जाता है वह नेत्रोंकी दोषित बदानेके लिये लगाया जाता है । भगवान महिलनाथ समस्त लोकके जानकार थे और ज्ञान-रूपी नेत्रके स्वामी थे इसलिये उनके नेत्रोंमें अंजन लगानेकी कोई भी आवश्यकता न थी तथापि उनके उत्तम नेत्रोंमें जो इन्द्राणीने अंजन लगाया था वह केवल शिष्टाचार द्वेषन करनेके लिये ही था अर्थात् उसने अपना कर्तव्य कर्म पूरा किया था ॥२५॥ देवे न जानेपर भी स्वभावसे हो उत्तम छिद्रोंसे शोभित भगवान महिलनाथके दोनों कालोंको इन्द्राणीने मनोहर कुञ्जलोंसे भूषित किया एवं मणिमयी महामनोहर हार पहिलाकर उनका कंठ शोभायमान किया था ॥२६॥ उनकी दोनों भुजाओंमें महा-मनोज अनंत मुद्रिका और कड़े पहिनाए थे । कटिभागपर महामनोहर मणिमयी करवनो बोधी थी, दोनों पंखोंमें मणिमयी घुघुरु पहिनाए थे जो कि अनुपम थे एवं

पादो गोमुखनिप्रसिद्धिभिस्तस्य रेत्रतुः । बाचालितौ सरस्वत्या कृतसेवाविवादभूतो ॥२८॥
परब्रह्मस्वरूपौ वा ज्ञानमूर्तिरिवोत्थितः । रत्नकार इवात्यत्सुन्दरो धर्ममूर्तिवत् ॥२९॥
लक्ष्म्याः पुञ्ज वोदभूतो निधिर्वर्तैजसां महान् । राशिर्वा यशसां पुण्याणूनां वा परमाकरः ॥३०॥
आश्रयो वा गुणानां स तदा देवो वभी तरां । परमांशुकनेपथ्यमालाद्यैः स्वांगकांतिभिः ॥३१॥
दृष्ट्वा तदातनी शोभां तृप्तिप्राप्य देवराद् । तं द्रष्टुं सहसा चक्रे सहस्रनयनान्यहो ॥३२॥
निमेषविमुखेद्विकव्य लोचनेऽच सुरासुराः । साइचर्यंहृदया देव्यो ददर्शस्तं च्युतोपम ॥३३॥
पुनस्तीषातिरेकेण शक्तास्तं स्तोतुमुथयुः । प्रकटीकृत्य तोषेशमाहात्म्यतदगुणाप्तये ॥३४॥
त्वं देव ! परमानंद कर्तुमस्माकमुद्गतः । प्रवर्धीयितुमेवात्र धर्मार्चिभ बालचंद्रवत् ॥३५॥

युननु घुननु शब्द करनेवाले ये सो ऐसे जान पढ़ते ये मानो साक्षात् सरस्वती देवी
उन दोनों घुघुरओंकी सेवा कर रही है ॥२७-२८॥ उत्तमोत्तम वस्त्र भूषण और
माला आविसे सजाए गए एवं अपने शरीरकी मनोहर कांतिसे देवीप्यमान वे भगवान
मल्लिनाथ ऐसे जान पढ़ते ये मानो साक्षात् परम ब्रह्मस्वरूप हैं अथवा उदयको प्राप्त
साक्षात् जनकी मूर्ति हैं । वा अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् रत्नाकर—
समुद्रस्वरूप हैं वा साक्षात् धर्मकी मूर्ति हैं । अथवा लक्ष्मीके पुञ्ज स्वरूप हैं वा
तेजोंके अद्भुत छजाने हैं । अथवा यशोंकी राशि हैं वा जितनी भर भी संसारके
अन्दर पुण्य परमाणुयें हैं उनके सर्वोत्कृष्ट स्थान हैं अथवा संसारमें जितने गुण माने
जाते और कहे जाते हैं उन सबके आधार ये ही हैं । इस रूपसे भगवान मल्लिनाथ-
की उस समयकी शोभा अपरिमित थी ॥२९-३१॥ भगवान मल्लिनाथकी उस समय-
की अलौकिक शोभा देखकर सौधर्म स्वर्णके इन्द्रकी तृप्ति न हो सकी इसलिये उनके
महामनोज्ञ रूपके देखनेकी उत्कट लालसासे उसी समय उसने हुजार नेत्र बना लिए
एवं हुजार नेत्रोंसे उनका स्वरूप निरखने लगा ॥३२॥ भगवानके उस समयके अनु-
पम रूपको सुर असुर और उनकी देवियां अपने पलक रहित दिव्यनेत्रोंसे टकटकी
स्त्रीलाकर देखने लगे एवं उनके उस प्रकारके अलौकिक रूपको देखकर अत्यन्त आश्रय
करने लगे ॥३३॥ तथा तोषकर भगवान मल्लिनाथका माहात्म्य प्रगट कर उनके
गुणोंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे इन्द्रगण अत्यन्त अंतोषके साथ उनको इस प्रकार
स्तुति करने लगे—

जिस प्रकार बाल चन्द्रमाके उदयसे लोगोंको आनंद होता है और समुद्र
बृहिको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे भगवन ! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करने-
के लिये और धर्मरूपी विशाल समुद्रके बदानेके लिए बाल चन्द्रमाके समान आपका

मिथ्याज्ञानांधकूपेऽत्र पततां मोहिनां स्फुटं । त्वं काहृष्टप्रभो हस्तावलंबे च प्रदास्यसि ॥३६॥
त्वं नाथ ! जगतां भर्ता त्वामिच्छति शिवात्मजा । त्वं धर्मात्मा जगन्नाथस्त्वं धर्मतोथं कारकः ॥३७॥
अस्नातः पूतगात्रस्त्वं नः पवित्रीकरः सतां । त्वं जगन्मंडनीभूतो निराकरणभास्वरः ॥३८॥
त्वं च लोकत्रयीनाथो विश्वस्त्वं हितंकरः । मोहप्राणं सतां छेता त्वं वाल्येऽपि भविष्यति ॥३९॥
त्वतो गुणाम्बुधेः सर्वं वृद्धं यास्यति सदगुणाः । दृगादा धोमतां दोषाः क्षयं रागादयोऽपि च ॥४०॥
न भवत्सदृशो देव ! जगद्विवृज्जगद्गुरुः । स्वान्ययोहितकर्ता च परो जातु परात्मकः ॥४१॥

उदय हुआ है ॥३४-३५॥ रत्नोध आदिके द्वारा अंधे कूपमें पड़ा हुआ प्राणी थोड़ा सा सहारा पाकर ही ऊपर आ जाता है । हे देव ! मोहसे मूँढ़ ये प्राणी संसारके अन्वर मिथ्याज्ञानरूपों अंधेरे कुआंमें पड़े हुए हैं । इस समय इन्हें उस कुंआंसे निकालनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं । हे करुणासागर भगवान ! आपही दयासे गद्गद हो अपने हाथका सहारा दे उन्हें निकालेंगे और उनका उद्धार करेंगे ॥३६॥ हे नाथ ! तुम समस्त जगतके भर्ता—जिवण बान्धनेवाले हो जीवित और अमृतम् शक्तिके धारक आपहीको हे देव ! मोहरूपी कन्धा वर बनानेकी इच्छा रखती है । हे तीन लोकके नाथ भगवान ! तुम ही धर्मस्वरूप हो और तुम ही धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिके करनेवाले हो ॥३७॥ हे भगवान ! स्नानके न किये जाने पर भी तुम पवित्र शरीरके धारक हो और सज्जनोंको पवित्र करनेवाले हो । हे नाथ ! तुम्हीं समस्त लोकके अलौकिक भूषण हो और तुम्हीं जिसपर कभी भी आवरण नहीं आ सकता ऐसे देवीप्यमान सूर्य हो ॥३८॥ हे प्रभो ! संसारमें तीनों लोकके नाथ आप ही हैं । समस्त जीवोंके हित और कल्याणके कर्ता भी आप ही हैं क्योंकि हे भगवान ! बालक (१) अवस्थामें ही समस्त मोक्षाभिलाषी जीवोंके मोहरूपी पाशको नष्ट करनेवाले आप ही होंगे ॥३९॥ हे समस्त गुणोंके समुद्र भगवान ! सम्यग्वर्णन आदि जितने भी संसारके अन्वर अनुपम और प्रशस्त गुण हैं आपकी कृपासे ही वे वृद्धिको प्राप्त होंगे—अर्थात् आप अपने अनुपम ज्ञानसे उनका स्वरूप समझावेंगे तब सज्जन पुरुष उन्हें अखंडरूपसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करेंगे तथा संसारमें डुबानेवाले जो राग आदि दोष हैं आपकी कृपासे ही वे सज्जनोंके नष्ट होंगे ॥४०॥ हे देव ! संसारमें न तो कोई आपके समान समस्त जगतका बंधु है । न आपके समान कोई समस्त जगतका गुरु है । अपना और पराया हित करनेवाला भी आपके समान और कोई नहीं, हे नाथ ! आपके समान पवित्र आत्माका धारक भी कोई संसारके अन्वर दुष्टिगोचर नहीं ॥४१॥

१. विवाहके समय ही ये भगवान मलिनात्म विरक्त होकर दोषा ग्रहण करेंगे इसलिये बालग्रहाचारों हैं ।

नित्येदाय नमस्तुभ्यं नमो निमलमूतये । श्रीराघ्वोणितांगाय ते चाच्छाकृतये नमः ॥४२॥
 आदिसंहननार्थैव दिव्यरूपाय ते नमः । सौरभ्याय नमस्तुभ्यं सौलक्षण्याय ते नमः ॥४३॥
 अप्रभाषसुवोद्ययि नमस्ते हितवदिने । मितवक्त्रे सहोत्पन्नदातिशयशालिने ॥४४॥
 अन्यामितगुणायास्तु नमस्ते ज्ञानचक्षुषे । नमस्ते जगदानन्दकश्चेऽमुक्तिप्रियाय च ॥४५॥
 त्वामग्निष्ठृत्य देवेष्वं प्रार्थयामो व्रगाच्छ्रयं । न वयं किन्तु नो देहि भवद्वैभवमंजसा ॥४६॥

हे भगवान ! आपका शरीर स्वेद (पसेव) रहित है इसलिये पसेव रहित उत्तम शरीरके धारक आपके लिए नमस्कार है । आपका शरीर मल मूत्र रहित— निर्मल है इसलिये आपके लिये नमस्कार है । आपके शरीरके अन्वर निन्दित रक्त नहीं किन्तु महामनोहर भीर समुद्रके जलके समान महास्वच्छ रक्त है इसलिए भीर समुद्रके जलके समान रक्तसे परिपूर्ण अङ्गके धारक आपके लिये नमस्कार है । हे नाथ ! आप समचतुरल्पसंस्थानके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है । हे भगवान ! आप आदि संहनन—वज्रावृष्ट-भनाराच^१ संहननके धारक हैं और आपका रूप दिव्य रूप है इसलिए आपके लिए नमस्कार है । आपका शरीर अत्यन्त सुगंधिका धारक है और १००८ शुभलक्षणोंसे शोभायमान है इसलिए आपके लिए नमस्कार है ॥४२-४३॥ हे देव ! जिसका किसी प्रकारका परिमाण नहीं किया जा सकता ऐसे अनुपम पराक्रमके आप धारक हैं एवं सर्वदा हितकारी मार्ग सुझाने वाले हैं । इसलिए आपके लिए नमस्कार है । हे प्रभो ! आप परिमित और समीचीन बोलने वाले हैं इस प्रकार साथ साथ ही उत्पन्न होने-वाले दश अतिशयोंसे अत्यन्त शोभायमान हैं अर्थात् उत्पत्तिके समय दश आपके अतिशय होते हैं वे अन्यके नहीं हो सकते इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥४४॥ हे भगवान ! ऊपर जितने गुणोंका उल्लेख किया गया है उनसे भिन्न भी अपरिमित गुणोंके आप भण्डार हैं और महादीप्तिमान ज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है । हे प्रभो ! आप समस्त जगतको अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाले हैं और अत्यन्त बुल्लभ भोक्तरूपी लक्ष्मीके प्यारे आप ही हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है ॥४५॥ हे जगन्नाथ ! आपको स्तुति कर हम आपसे यह प्रार्थना करना नहीं चाहते कि आप हमें समस्त जगतकी लक्ष्मी प्रदान करें परन्तु प्रभो ! प्रार्थना यही

१. वज्रप्रभनाराच २ वज्रनाराच ३ अर्धनाराच ४ कोलित ५ स्फटिक ६ ये छह संहनन हैं । तदभव शोक्षणामियोंके पहिला ही संहनन होता है ।

इति स्तुत्वा जगन्नाथं परमानन्दनिभीराः । प्रणेमुः शिरसा शक्ताः सकलत्राहच सामराः ॥४७॥
 मलिकाधिकगंधोधदिव्यागधारणः प्रभो । जेतुः कर्मादिशश्रुणां मलिलनाम सुरा व्यघुः ॥४८॥
 शेषकार्यपतये तस्मात्मादाय जगदगुह । देवेशाः परया भूत्या पूर्ववत्तत्पुरं यथुः ॥४९॥
 तत्र राजांगणे रथे तु त्री शिहाभने मुदा । भवैभूषेत देवं सौधमैद्रो त्यजीविशत् ॥५०॥
 शब्द्या प्रदोधिता माता बंधुभिः सह कुरुभराट । तेजः पुञ्ज मिवोदभूतं मुदाऽपश्यन्निजसुतं ॥५१॥
 निवेद्य मकलं मेष्वृतं तत्प्रितरी मुदा । प्रपूज्य स्वर्गंजंभैवत्या वस्त्राभरणादायभिः ॥५२॥
 धन्यो पूज्यो परो मान्यो स्तुत्यो सीमायपारणो । युवां गुरु ध लोकेऽस्मिन शशसेत्यादि कल्पराट ॥५३॥

है कि जिस अलौकिक ऐश्वर्यको आपने प्राप्त किया हैं जिसके सामने सारी संसारकी विभूतियाँ तुच्छ हैं कृपाकर इस परमोत्तम ऐश्वर्यको हमें भी प्रदान कीजिये ॥४६॥
 इस प्रकार तीन जगतके नाथ भगवान मलिलनाथकी स्तुतिकर परमानन्दसे गद्गद हो इन्द्रोने अपने आज्ञाकारी देव और देवांगनाओंके साथ उन्हें मस्तक कुकाकर भवित-पूर्वक नमस्कार किया ॥४७॥ कर्म आदि शश्रुओंके जीतनेवाले भगवान मलिलनाथ मलिलका पुष्पकी सुगंधिसे भी उत्कट सुगंधिवाले दिव्य शरीरके धारक थे इसलिये देवोने उनका अन्वर्थ नाम मलिलनाथ रखा था ॥४८॥ देवगण मेष्वर्तपर जिस समय समस्त कार्य समाप्त कर चुके उस समय जो कुछ उनके जन्म कल्पाणक सम्बन्धी कार्य बाकी बचा था उसे पूरा करनेके लिए तीन जगतके गुरु भगवान मलिलनाथको लेकर पहिलेके ही समान बड़े ठाटबाटसे पुनः मिथिलापुरी लौट आए ॥४९॥ राजा कुम्भके आंगनमें एक महामनोहर विशाल सिंहासन विद्यमान था । समस्त वंगोंमें पहिने हुए भूषणोंसे भूषित भगवान मलिलनाथको इन्द्रने बड़े आनन्दसे उसपर विराजमान किया ॥५०॥ इन्द्राणी भगवानके गर्भे गृहमें गई और माताको जगाया तथा बंधु बांधवोंके साथ राजा कुम्भको भी मायामयी निद्रा दूर की । जहाँ-पर भगवान मलिलनाथको विराजमान किया गया था वहाँपर वे आए एवं आनन्दसे गद्गद हो उदयको प्राप्त तेजपुञ्जके समान अपने पुत्रको देखा ॥५१॥ मेष्वर्त पर जो भी अभिषेकके समय कार्य किया गया था वह सब भगवानके माता पितासे इन्द्रने आनन्दपूर्वक निवेदन किया । उत्तमोत्तम बस्त्र आभूषण और माला आविसे समस्त देवोंके साथ भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की तथा “आप समस्त लोकमें धन्य हैं पूज्य हैं उत्कृष्ट हैं मान्य हैं, स्तुति करने योग्य हैं, सीमायके पारको प्राप्त हैं । अर्थात् आपसे बदकर कोई भाग्यवान नहीं । विशेष वया ? जब आप स्वयं तीर्थकर भगवान के माता पिता हैं तब समस्त लोकके आप माता-पिता हैं । इस प्रकर मनोहर शर्मों

इन्द्रादेशोन पौरेष्व बंधुभिः सह तिष्ठता । महापूजाभिषेकाद्येजिनामारे महोत्सवं ॥५४॥
 कृत्वावकार नानाविभूत्या तोरणकेतुभिः । गोत्तर्तंतवाद्याद्यैः पुर्या जातं महोत्सवं ॥५५॥
 तदा नाना विधैर्हन्ते पूर्यामास भपतिः । आगां च निज वंशनां दीनानाथादिवदिनां ॥५६॥
 प्रमोदनिर्भरं दृष्ट्वा समस्तं नगरीजनं । व्यक्तीकुर्वन् प्रभोदंस्वं पित्रादीन्पति देवराट् ॥५७॥
 आनन्दनाटकं रम्य ननाटातिमतोहरं । स्वदेवीभिः सहोत्कृष्टं जगदाश्चयंकृत्तदा ॥५८॥
 अणुस्थलादिनानार्थेः सन्निकटदूरगेः । वोणावंशमृदंगादिवाद्यैः संगीतनर्तनैः ॥५९॥
 ततोऽस्य सबयोरूपनानावेषविवादिनः । वहून् सुरकुमारांषच धात्रीदेवीजिनेशिनः ॥६०॥
 निरुप्य परिचर्यायै शुश्रूषाङ्गीड़नाय च । उपाज्यं बहुधा पुण्यं दिवं जगमुद्युनायका ॥६१॥

में भक्तिपूर्वक इन्द्रने उनकी स्तुति की ॥५२-५३॥ पश्चात् इन्द्रके कहे अनुसार भगवान भल्लिनाथके पिता राजा कुम्भने पुरवासी अपने बन्धु-वैष्णवोंके साथ भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें महापूजा और अभिषेक आदिका महान् उत्सव किया ॥५४॥ महोत्सवके बाद अनेक प्रकारको बन्दल वारे ध्वजायें एवं गीत नृत्य और आजे आदि से मिथिलासे भी बड़ा उत्सव मनाया गया ॥५५॥

भगवानके पिता राजा कुंभने अनेक प्रकारके दान देकर अपने बंधुओंकी और दीन अनाथ आदि बन्दियोंकी भी इच्छा अच्छी तरह पूरण कर दी थी ॥५६॥ जिस समय समस्त नगर निवासी जन आनन्दमें भग्न थे उस समय भगवानके माता पिता आदिके साथ विशिष्ट सहानुभूति प्रवशित करनेके लिए इन्द्रने अपनी देवियों-के साथ अत्यन्त आनन्दमयी नृत्य किया जो कि सुहावना लगनेवाला अत्यन्त मनोहर था । नृत्य करते समय कभी छोटा आकार तो कभी बड़ा आकार मालूम पड़ते थे । कभी अत्यन्त निकटमें जात पड़ता था और कभी अत्यन्त दूर जान पड़ता था । वीण बांसुरी मुद्रंग आदि अनेक प्रकारके आजे बजते थे एवं अनेक प्रकारके गाने और अनेक प्रकारसे शरीरका हिलाना छुलाना होता था इसलिये इस विशिष्ट बातोंसे वह नृत्य समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाला महामनोहर जान पड़ता था ॥५७-५९॥ जब नृत्यका कार्य समाप्त हो चुका उस समय धात्रीके वेषवाली वेवियोंको और भगवान जिनेन्द्रका ही अवस्थावाले उनके ही समानरूपके धारक और अनेक प्रकार-के वेषोंके घारण करने वाले बहुतसे देव कुमारोंको उनकी सेवा शुश्रूषा और साथ-साथ खेलनेके लिये नियुक्त कर दिया । इसलिये वे बराबर उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगे और साथ-साथ खेलने लगे । इस प्रकार भगवान जिनेन्द्रके प्रति अनेक प्रकारको भक्ति प्रवशितकर और उससे जायमान अनेक प्रकारका पुण्य उपार्जन कर समस्त देव

हृस्तस्यमकर्त्तदीनां रूपमादाय ते सुराः । कीडयतीकवचि द्रेवा कचिद् व्यश्च सादरं ॥६२॥
मंडयति जिनं कादिचन्वानामंडनवस्तुभिः । स्नपयन्त्यपरा देव्यः काश्चित्संभूषयन्ति च ॥६३॥
मुख्यमौस्थितमातन्वन् प्रसपं न्यणिभूमिषु । पित्रोमुदं ततानादवयः कीडास्थितादिभिः ॥६४॥
तस्यासीच्छेश्वरं दिव्यं चन्द्रवच्च कलोज्वलं । वंधुदेवादिनेश्वराणां परानंदोत्तावप्रदं ॥६५॥
दिव्ये मुखाम्बुजेऽस्यासीत्कमन्मन्मन्मारती । गोनुस्खलन् पक्त्यासं संचरेन्पणिभूतले ॥६६॥
तस्मोग्यामृतं पानादेव्यवृथेऽस्य क्रमाद्वपुः । साधं चावयवे रम्ये: प्रजाज्ञानगुणादिभिः ॥६७॥
कौमानन्दं ततः प्राप्य स्वयं परिणति ययुः । जनावज्ञानविद्या गुणास्त्रिज्ञानचक्षुषः ॥६८॥

स्वर्गको वा अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥६०-६१॥ जिन देव कुमारोंको भगवान जिनेन्द्रकी सेवा शुश्रूषा और उनके साथ खेलनेके लिये नियुक्त किया गया था वे देव कभी हाथीका रूप बनाकर तो कभी घोड़ाका रूप बनाकर तो कभी बन्दर आदिका रूप बनाकर भगवान जिनेन्द्रके साथ कीड़ा करते थे तथा उनकी सेवाके लिये जो देवियां नियुक्त थीं वे भी बड़े भक्तिसे उनका आदर सत्कार करती थीं । उनमें कोई-कोई देवियां तो भगवानको अनेक प्रकार मंडन वस्तुओंसे मंडित करती थीं; बहुत-सी सुरांघित जलसे उन्हें स्नान कराती थीं; और बहुत-सी अनेक प्रकारके भूषण उन्हें पहिनाती थीं ॥६२-६३॥ वे भगवान मलिलनाथ मंदसंब हास्य हँसते अर्थात् मूलकत्ते थे । मणिमयी भूमिपर रिगते थे इसलिये बाल्य अवस्थाको अनेक प्रकारकी कीड़ा और मूलकन आदिसे वे माता पिताको परमानन्द प्रदान करते थे ॥६४॥ जिस प्रकार चन्द्रमा नाना प्रकारकी कलाओंसे उज्ज्वल रहता है और देखनेवालोंके नेत्रोंको आनन्द और उत्सव प्रदान करता है उसी प्रकार उन भगवान मलिलनाथका भी शैशव काल दिव्य था चन्द्रमाके समान अनेक प्रकारके कला-कौशलोंसे दैदीप्यमान या एवं बंधु-बांधव और देव आदिके नेत्रोंको अत्यन्त आनन्द और उत्सवका प्रदान करनेवाला था ॥६५॥ उन भगवानके मूलकमलसे मन्मन् स्वरूप अस्पष्ट भाषा निकलती थी । एवं मणिमयी भूमिपर खेलते हुए वे पद-पद पर गिरते पड़ते थे ॥६६॥

अपने योग्य महामनोज्ञ अन्न पान आदिके खानेसे उनका शरीर क्रमसे दिनों दिन बढ़ता जाता था । एवं जिस प्रकार शरीर बढ़ता चला जाता था उसी प्रकार उनके महामनोहर अवयव भी फैलते चले जाते थे एवं निरन्तर बुद्धि [चतुरता] जान और गुण आदिकी भी बृद्धि होती चली जाती थी ॥६७॥ मति श्रुति और अवधिरूप सीन ज्ञानके धारक भगवान जिनेन्द्रकी बाल्य अवस्थाके बीत जानेपर जिस समय कुमार अवस्था प्रकट हुई थी उस समय ज्ञान और बुद्धि आदि गुण आपसे

ततोऽसौ परमानन्दं पित्रादीनां प्रवर्षयन् । विमलैः स्वगुणैः प्राप्य क्रमात्सद्बोवनं शुभं ॥१९॥
 क्वचिद्ग्रीणादिवाद्योधेनतंकोनतर्नैः क्वचित् । क्वचित्काव्यादिगोष्ठीभिर्नान्तरादिवारिभिः ॥२०॥
 क्वचिच्च चेटकेदिव्ये: सौधमेंद्रो व्यधात्तरां । स्वशर्मणे विश्रोः शर्म विनोदादिकुतूहलैः ॥२१॥
 संख्षेमभूषणेदिव्यवैर्योयोग्यसुरापितेः । भूषितांगोऽतिकांत्या स जिस्त्वा चे (त्वेनैः) न्दुं व्यभात्तरां ॥२२
 अष्टोत्तरसहस्रण लक्षणानामलंकृतं । दिव्यमोदारिकं देहं निरौपम्य विमोर्वभौ ॥२३॥
 मुकुटालंकृतं तस्य शिरोनीलशिरोहृष्टं । दिव्यमालाघरं कांत मेरोः शृङ्गभिवावभौ ॥२४॥
 भाति भालं सुविस्तीर्णं चास्य कांत्याप्तदिङ्गुःस । ललिते शूलते दीर्घे भ्रेतुर्नर्यनोत्पले ॥२५॥
 मणिकुँडलतेजोभः कणविस्य रराजतुः (?) । जितचंद्री कपीली च तुं गनासा मनोहरा ॥२६॥

आप शृङ्गिको प्राप्त होने लगे थे ॥६८॥ कुमार अवस्थामें पिता माताको परमानन्द प्रदान करनेवाले भगवान जिनेंद्रने अनेक निर्मल गुणोंके साथ धीरे धीरे क्रमसे अत्यन्त शुभ यौवन अवस्थाको भी प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस समय सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनेको कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषासे कभी कभी खीन आदि बाजोसे, कभी कभी नृत्य करनेवाली देवांगनाओंके नृत्योंसे, कभी कभी काव्य आदिकी गोष्ठियोंसे, कभी कभी अनेक रूप हाव भाव आदिको धारण करनेवाली चेटक विद्याओंसे एवं कभी कभी अन्य प्रकारके विनोद और कुतूहलोंसे भगवान जिनेंद्रको अस्यन्त प्रसन्न रखता था ॥७०-७१॥ देवगण अवस्था और समयके योग्य माला वस्त्र और भूषण भगवानको पहिनाया करते थे इसलिये अवस्थाके योग्य देवों द्वारा पहिनाए गए माला वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत शरीरके धारक भगवान जिनेंद्र अपनी उप कांतिसे चन्द्रमाको जीतनेवाले थे इसलिये उस समय वे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥७२॥ भगवान जिनेंद्रका शरीर शूक्र हजार आठ लक्षणोंसे शोभायमान था, परम औदारिक था एवं उपमारहित था इसलिये वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥७३॥ नीले नीले धूंधल्ले बालोंसे शोभायमान भगवान जिनेंद्रका मस्तक जिस समय मुकुटसे अलंकृत होता था उस समय वह देव सम्बन्धी मालाको धारण करनेवाला महामनोहर मेलपर्वतका शूंग सरोका जान पड़ता था ॥७४॥ अपनी अनुपम कांतिसे समस्त विद्याओंको व्याप्त करनेवाला भगवान जिनेंद्रका अत्यन्त फैला हुआ ललाट अतिशय शोभायमान जान पड़ता था तथा उनकी महामनोहर छुकुटियें और विशाल दोनों नेश्र अत्यन्त शोभित जान पड़ते थे ॥७५॥ भगवान जिनेंद्रके दोनों कान मणिमयी कुण्डलोंकी किरणोंसे अत्यन्त शोभायमान थे । अपनी अनुपम दीप्तिसे चन्द्रमाको जीतनेवाले उनके दोनों कपोल

दिव्यभाषामृतं यन्मुखेऽदोः सवति प्रत्यहं । मृत्यादिविषहृतस्य का परा वर्णना प्रभोः ॥७७॥
 मणिहारेण वक्षोऽस्य रुचे न । मिमित्तं । केशुदभूषितो वाहु सोऽधात्स्त्वांधिपोपमो ॥७८॥
 समेखले कटिभाग सांशुकं स दधे शुभं । कदलीमर्भसादृश्ये जघे चातीवकोमले ॥७९॥
 त्रिजगत्स्वामिभिर्नित्यं सेवितो यो कमाम्बुजो । नखचंद्रांकितो भतुस्तौंको वर्णयितुं प्रभुः ॥८०॥
 हृत्यादिवर्णनोपेतं वज्रास्त्विधननिमितं । आदिसहननोरम्नामादिसंस्यानभूषितं ॥८१॥
 पञ्चविक्षितिचापोच्चतप्तचामीकरच्छर्वि । निसर्गसुंदरं दिव्यं पुण्याणुचयसंभवं ॥८२॥
 औदारिकशरोरं च निरोपम्यं विभ्रोस्तरां । आजते दिव्यभूषास्त्रावस्त्रकांत्यादियौवनेः ॥८३॥

भी महामनोहर थे एवं उनकी ऊपरकी उठी हुई ऊँची नासिका महामनोहर थी ॥७६॥
 जिस प्रकार चन्द्रमासे अमृत झरता है और वह विषका हरनेवाला होता है ऐसी
 प्रस्थाति है उसी प्रकार भगवान जिनेंद्रके मुख चन्द्रमासे प्रतिविन दिव्य भाष्यारूपी
 अमृत झरता रहता था जो कि मृत्युरूपी महा हलाहल विषका हरण करनेवाला
 था इसलिये अनुपम गुणोंके धारक उस भगवान जिनेंद्रका जितना भी वर्णन किया
 जाय थोड़ा है ॥७७॥ भगवान अपने वक्षःस्थलमें मणिमयी हार पहिनते थे और
 वह नाभि मंडल पर्यन्त लटकता रहता था । इसलिये मणिमयी हारसे उनका वक्षः-
 स्थल और नाभि दोनों ही अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे । उनकी दोनों भुजायें
 केयूरों भुजबंधोंसे शोभायमान रहती थीं और वे कल्पवृक्षकी लता सरीखो जान
 पड़ती थीं ॥७८॥ भगवान जिनेंद्रका महामनोहर कटिभाग करथनी और उसम
 वस्त्रसे सदा शोभायमान रहता था । उनकी दोनों जंघायें केलेके थंभों के समान
 अत्यन्त कोमल थीं ॥७९॥ भगवान जिनेंद्रके चरण कमलोंकी सेवा तोनों लोकके
 इन्द्र सदा किया करते थे एवं वे नखरूपी चन्द्रमाओंसे शोभायमान रहते थे इसलिये
 उनके असली स्वरूपके वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ न था ॥८०॥ इस प्रकार ऊपर
 कहे गए अनेक प्रकारके वर्णनोंसे युक्त अत्यन्त मजबूत वज्रमयी हड्डियोंसे बना हुआ,
 आदि संहनन-वज्रवृषभ नाराच संहननसे युक्त, आदि संस्थान समचतुरस्त्र संस्थानसे
 शोभायमान, पञ्चोंस घनुष प्रमाण ऊँचा, तपे हुए सुवर्णके समान कांतिका धारक
 स्वभावसे ही सुन्दर, दिव्य संसारमें जितनी भी पुण्यस्वरूप परमाणुएँ थीं उनके समूह
 स्वरूप और अनुपम भगवान जिनेंद्रका औदारिक शरीर, दिव्य आभूषण महा वस्त्र
 कांति और यौवन आदिकी परिपूर्ण शोभासे अत्यन्त शोभायमान जरन पड़ता था

१. समचतुरस्त्र मंस्थान ? न्यग्रोष परिमंडल मंस्थान २. स्वाति मंस्थान ३. कुत्तजक मंस्थान ४. बामन मंस्थान
 ५. हुडक संस्थान ६. ये छह मंस्थान होते हैं ।

वर्षणां पञ्चपंचाशत्सहस्राणि जगत्पतेः । आयुब्राधितिगं स्वान्यहितकृत् सङ्घवजितं ॥८४॥
सवत्सरशतं कालं परान् भोगान् बुभोग सः । मल्यदेवोपनोतान् कुमारयोग्यान् शुभोदयान् ॥८५॥
अन्यदा तनुजो देवविष्णुनुपसेवितः । इत्यमङ्गयितो भक्त्या राजा संतानबृद्धे ॥८६॥
पृथ्वीपुराधिपत्यस्यात्य भूपालास्यस्या सत्सुता । ह्याता जगद्रतियोग्यं सा पुत्र ! परिणोयतां ॥८७॥
इति पित्राश्रहेणासौ विभूत्या परया सम् । षिखेतो नृपदेवार्थ्यविवाहाथ ब्रजन् तथि ॥८८॥
विलोक्य महतीं शोभां नग्याः केनुपक्तिभिः । सोरणेनृत्यवाद्याद्यैर्महोत्सवशतादिभिः ॥८९॥
स्मृत्याभराजितं रम्यविभानं पूर्वजन्मनि । तत्काणं प्राप्य संवेगं सावधिरिति चितयेत् ॥९०॥

॥८१-८३॥ भगवान् महिलनाथकी आयु पश्यन् हुजार वर्षकी थी । वह समस्त प्रकारकी बाधाओं रहित थी । अपना पराया हित करनेवाली थी और अखंडित थी ॥८४॥ भगवान् जिनेन्द्रने सौ वर्ष पर्यंत उत्तमोत्तम भोग भोगे जो कि मनुष्य लोकमें देवोंके द्वारा उपनीत थे कुमार भगवान् जिनेन्द्रके योग्य थे और उनका उदय अशुभ न होकर शुभ था ॥८५॥

कवाचित् अपनी युवावस्थामें अनेक देव विद्याधर और राजाओंसे सेवित, भगवान् महिलनाथ सानंव दिराजमान थे कि उनके पिता पुत्र स्नेहसे प्रेरित हो उनके पास आए एवं “आगे भी बंशको बूढ़ा हो” इस अभिलाषासे वे अस्तिपूर्वक उनसे पह प्रार्थना करने लगे—प्रिय पुत्र ! इसी पृथिवीमंडल पर एक पृथ्वीपुर नामका नगर है । उसका पालन करनेवाला राजा भूपाल है उसके एक “जगद्रति” नामकी कल्पा है जो कि अपने अनुपम रूप और गुणोंसे पृथिवीपर प्रसिद्ध है । मेरो यह विशिष्ट इच्छा है वह तुम्हारे सर्वथा योग्य है तुम उसके साथ विवाह करना स्वीकार करो ॥८६-८७॥ समस्त प्रकारके चातुर्योंके जानकार भगवान् महिलनाथने अपने पिताके आग्रहसे जगद्रतिके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं वे अनेक नृप और देवोंसे वेष्ठित हो बड़ी विभूतिके साथ विवाहके लिये घल दिये । मिथिलापुरो उस समय रंग विरंगो अवजाओंकी पवित्रयोंसे भाँति भाँतिके नृत्य और बाजे आदिसे जायमान सैकड़ों प्रकारके महोत्सवोंसे व्याप्त थी । राजहारसे निकलकर भगवान् पृथ्वीपुरकी ओर जाने लगे । अपने पहिले जन्ममें उन्होंने अपराजित विमानकी विभूतिका उपभोग किया था इसलिये मिथिलापुरोंकी अद्वितीय शोभा देखकर उन्हें अपराजित विमानका स्मरण उठ आया । उन्हें उसी समय संसार शरीर भोगोंसे बैराग्य हो गया एवं अवधिज्ञानके धारक वे भगवान् महिलनाथ अपने चित्तमें इस प्रकारका विचार करने लगे ॥८८-९०॥

तत्रत्यैर्यच्चहो भोगेः परैस्तृप्तिकरैर्बरेः । मागातृप्तिप्रभावोऽगी निरोपम्यैः सुखोद्भवैः ॥९१॥
स कि यास्यनि दुःप्राप्येरक्षत्यैर्दुःखसंभवैः । व गुर्विडंबनोस्पन्नेस्तुच्छेभोगैर्धर्यथार्णवैः ॥९२॥
तृप्तिमेति क्वचिहैवादपिनिरधंतराशिभिः । सारत्पूरे समुद्रो वा लोभी च घनसंग्रहात् ॥९३॥
कामो न जातु संभुक्तैश्चानंतभवगोचरे । दुलंभेविषयासक्तो भोगैर्त्यांतदुस्त्यजैः ॥९४॥
इयांतं कालमेवायं भोगासक्तमना जनः । भुजानो विविधं दुःखं भ्रमितो दुर्भवाटवीं ॥९५॥
भोगशा वर्तते मावच्छिते सर्वशुभाकरा । तावत्कुतः सतां मोक्षस्तं विना च कुतः सुखं ॥९६॥
ज्ञात्वेति प्रथमं त्याज्या सर्वं भोगा इवोरणाः । हलाहलनिमा द्वूरं शत्रवो वा मुमुक्षुभिः ॥९७॥

अपराजित विभानके अन्वर जिन भोगोंका भोग किया गया थे भोग महामनोज्ञ थे तृप्तिको करनेवाले उत्कृष्ट थे, अनुपम थे और सुखके कारण थे । जब यह जीव उन विपुल भोगोंसे भी तृप्त नहीं हुआ तब क्या इस लोकके ऐसे भोगोंसे तृप्त हो सकता है ? जो भोग बड़े दुःखसे प्राप्त होते हैं, अनेक प्रकारके दुखोंको देनेवाले हैं, शरीरको नष्ट भ्रष्ट करनेवाले हैं, अत्यन्त तुच्छ हैं और आधि-व्याधि आदि अनेक व्यथाओंके समुद्र हैं ॥९१-९२॥^१ इवनके विपुल ढेरसे अग्निको तृप्ति नहां हो सकती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उस इंधनसे अग्निकी तृप्ति हो जाय । अनेक नदियोंके प्रवाहोंसे समुद्रको तृप्ति नहीं होती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उसकी भी तृप्ति हो जाय । अनेक प्रकारके धनके संग्रहसे लोभी पुरुषकी तृप्ति नहीं हो सकती परन्तु दैवयोगसे कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय । परन्तु जो पुरुष विषयोंमें आसक्त कामी है उसकी भले प्रकार भोगे जानेवाले अन्ते भवोंसे प्राप्त होनेवाले जिनका मिलना बड़ी कठिनतासे है एवं जिनको छोड़ते समय भी महाकष्ट जान पड़ता है ऐसे भोगोंसे कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती ॥९३-९४॥ मनमें अत्यन्त भोगोंकी लालसा रखनेके कारण भी यह जीव इतने विपुल काल पर्यन्त अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता-भोगता इस दुष्ट संसाररूपी महाभयानक चर्नोके अन्वर चक्कर लगाता किरता है एवं भोगोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण इसे वास्तविक मार्गका ज्ञान नहीं होता ॥९५॥ यह भोगोंकी तीक्ष्ण अभिलाषा संसारमें अनेक प्रकारके अद्युभोंको उत्पन्न करनेवाली है जब तक यहीं चित्तके अन्वर विद्यमान है तब तक कभी भी जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती । और जब तक मोक्षको प्राप्ति नहीं तब तक वास्तविक सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता । इसलिये यह भोगोंकी अभिलाषा ही वास्तविक सुखकी बाबक है ॥९६॥ इसलिये जो पुरुष भोगोंके स्व-

^१. एहनस्तुणकाष्ठसंचयैरपि तुप्येदुद्विष्टन्दीशतीः । तु कामसुखैः पुमानहो चक्षसा चलु कापि कर्मणः ।—चन्द्रप्रभ काव्य ।

मुमुक्षुणामतश्चेदं
अलोकभंगलोपेतः
विना शुखलया नारी
शत्रुतुल्या सुता

महालज्जानिबन्धनं । विवाहादिकरं कर्म शिवधनं मवकारणं ॥९८॥
कृत्सनदुःखादिसागरः । चिताद्रिशतकून्नुणां विवाहः शर्मणे कुतः ॥९९॥
बास्यांतर्वशकारिणो । दुःफला भववल्लो वा सतां नरकपद्धतिः ॥१००॥
चित्वधनधान्यादिभक्षकाः । इन्द्रजालतिभा लक्ष्मीः कुटुम्बं पाशसन्निभं ॥१०१॥

रूपके वास्तविक रूपसे जानकार हैं और मोक्ष प्राप्त करता चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे भोगोंका स्वरूप अच्छी तरह जानकर सबसे पहिले इन भोगोंको दूरसे ही छोड़ें । क्योंकि ये भोग साक्षात् सर्वके समान हैं अर्थात् सर्व जिसे डस लेता है फिर वह जल्दी उछंगता नहीं उसी प्रकार भोगरूपी सर्वोंका डसा हुआ भी जल्दी नहीं उछंगता तथा ये भोग हलाहल विषके समान हैं अर्थात् जिस प्रकार हलाहल विषके पोनेवाला बचता नहीं उसो प्रकार भोगोंका काटा हुआ भी नहीं बचता । इसीलिये ये विषय शत्रु स्वरूप हैं क्योंकि इनसे किसी प्रकारकी भलाईकी आशा नहीं ॥९७॥
इसीसिध्ये जो महानुभाव मुकुम्भ हैं उससे रामरत प्रकारके बंधनोंको तोड़कर केवल मोक्ष ही चाहने वाले हैं उन्हें विवाह आविका कार्य सर्वथा छोड़ देना चाहिये क्योंकि यह विवाह आविका कार्य अत्यन्त लज्जाका कारण है मोक्ष सुखका घात करनेवाला है और संसारमें घुमाने वाला है ॥९८॥ और भी यह बात है कि यह विवाह मिथ्या मंगलोंसे युक्त है अर्थात् विवाहमें जितने भी मंगलाचार किये जाते हैं वे सब मिथ्या हैं । समस्त दुख आदि विपत्तियोंका समुद्र है एवं विवाह होते ही सैकड़ों प्रकारकी चिता पोछे लग जाती है इसलिये यह सैकड़ों प्रकारकी चिताओं का कारण है इसलिये यह विवाह कभी भी कल्याणका करने वाला नहीं हो सकता—जो महानुभाव इसे कल्याण का करनेवाला समझते हैं वह केवल भ्रम ही है ॥९९॥ मनुष्य आविका शरीर सांकल्से ही जिकड़कर ढाँचा जाता है परन्तु यह स्त्री सांकलके ढिन्हा ही भीतर आहर दोनों प्रकारसे बांधनेवाली है अर्थात् अन्तरंगमें मोहकी तीव्रतासे मनुष्य स्त्रीको छोड़कर नहीं जा सकता और बाहिरमें जब छोड़कर चलता है तब वह उसके पीछे पड़ती है इसलिये भी छोड़कर नहीं जा सकता तथा यह स्त्री खोटे फलोंको धारण करने वाली संसाररूपी बोल है अर्थात् बोलपर अच्छे बुरे सब प्रकारके फल आते हैं परन्तु स्त्रीरूपी संसार बोलसे सदा दुष्ट फलोंकी ही प्राप्ति होती है । विशेष क्या ? यह स्त्री साक्षात् नरकका मार्ग है ॥१००॥ पुनः जिनको कि संसारमें उत्कृष्ट पदार्थ माना जाता है वे महा शत्रु हैं एवं संसारके समस्त धन धान्योंको भक्षण करने वाले हैं । लक्ष्मी जो कि संसारमें बहुत बड़ी चीज मानी जाती हैं इंद्रजालके समान

जीवितं चपलं पुसां प्राईर्भजलोपमं । चाक्षार्थः स्वजना विश्वे कामार्थः क्षणभंगुराः ॥१०२
शतो वृत्तं समादाय बालत्वेऽपि विचक्षणः । सःजनेत्रो द्रुतं मोदो मृत्युमादेवा चालनः ॥१०३॥
आजन्मतो यमः स्वांतं जीवान्नयति प्रत्यहं । दिनार्दीर्घ्याहो काश धर्मे कालविलंबना ॥१०४॥
अक्षापुगृह्ण अथ भोगपरिवारश् यादयश्चंचलाः, शोषाभाश्च न विद्यतेऽत्र शरणं मृत्योः सुधर्मं विना ।
संसारोऽति भयंकरोऽतिचपलो दुःखार्णवोऽप्यभृदेकोऽज्ञप्यघपातकः प्रतिदिनं दुःखो भ्रमे संसृति ॥१०५॥
आत्मान्योऽग्नुदृम्ब कर्म सकलोऽज्ञानी प्रकृत्या महान्, कायोऽप्यं यमधामदुःखजलधिः सर्वागुच्छीनां निधिः।
मिथ्यात्वादिभवोऽप्यनंतं भवकृतं कर्मस्त्रिवो दुःखदः। सर्वाधादितिरोधनोऽसुखहरो मोक्षप्रदः संवरः ॥१०६

निस्सार है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रजालका ठाट बाट देखते-देखते विलीन हो जाता है उसी प्रकार लक्ष्मीका वैभव भी देखते देखते विलीन हो जाता है तथा यह कुटुम्ब साक्षात् पाशके समान है ॥१०१॥ प्रातःकालमें जिस प्रकार दर्भकी अनीपर लगी हुई जलकी बूँद अत्यन्त चंचल क्षण विनाशक होती है उसी प्रकार मनुष्योंका जीवन भी अत्यन्त अंचल और विनाशक तथा इन्द्रियोंके विषय बन्धु बांधव आदि स्वजन एवं संसारके समस्त काम भोग क्षणभंगुर हैं ॥१०२॥ इसलिये जो पुरुष विचक्षण हैं वास्तविक रूपसे संसारके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें बाल अवस्थामें ही सम्यक्चारित्रको ग्रहण कर लेना चाहिये एवं प्रतिक्षण अपनी मौतकी आशंका कर उन्हें बहुत जल्दी मोक्षकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥१०३॥ जबसे जीव उत्पन्न होता है तभीसे यह यमराज दिन पक्ष मास आदिके हिसाबसे जीवको मृत्युके मुखमें प्रविष्ट करानेका प्रयत्न करता है । इसलिये धर्मके अन्दर इस प्रकार कालका विलम्ब नहीं करना चाहिये कि हम आज धर्म सेवन न करेंगे तो कल कर लेंगे वा यह समय विषय भोग भोगनेका है वृद्धावस्थामें जाकर धर्म कर लेंगे क्योंकि मृत्युका कोई निष्चय नहीं ॥१०४॥ संसारके अन्दर इन्द्रियाँ आयु घर राज्य भोगोपभोग परिवार और लक्ष्मी आदि जितने भी पदार्थ हैं वे सब जिस प्रकार बिजलो चमककर शीत्र नष्ट हो जाने वाली हैं उसी प्रकार नष्ट हो जानेवाले हैं । यदि संसारमें शरण है तो एक समीक्षीत धर्म ही है । धर्मके सिवाय मृत्युके मुखसे बचानेवाला कोई भी शरण नहीं । यह संसार अत्यन्त भयानक है अतिशय चंचल है । अनेक प्रकारके दुःखोंका समुद्र है एवं अनेक प्रकारके अकल्याणोंका करनेवाला है । ऐसे महाभयानक संसारमें यह बिचारा दीन जीव अकेला ही अपने पाप कर्मों के फलसे महादुःखित हो भ्रमण करता फिरता है । इसे रंचमात्र भी शान्ति नहीं मिलती ॥१०५॥ आत्मा पदार्थ जानी है । आत्मासे भिन्न शरीर कुटुम्ब और समस्त कर्म स्वभावसे ही महा-

दुःकर्मकारिणी वरतपोजा निर्जरा मुकितदा, लोको दुःखसुखाकरोऽतिविषयोऽनादिक्षिधा शास्त्राः ।
मानुष्यं सकलेऽद्वियं च सुकुलं बोध्यादिकं दुर्लभं, धर्मो विश्वसुखाकरो दशविधो दुःखाखिलाधातकः ॥१०७॥

इति कुम (मा) रजिनेशो भावना द्वादशो विरचिते हृदयेऽनुचित्य संवेगसर्वे ।

शिवसुचरणहेतुं प्राप यः काललब्ध्या भवत्पुष्टि सुखादौ सोऽस्तु मे तदगुणाप्त्ये ॥१०८॥

इति श्रीमहिलनाथचरित्रे भद्रारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते महिलनाथवेराग्योत्पत्ति-
वर्णनो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥५॥

अलगानी हैं । यह शरीर जिसका कि लोगोंको घमण्ड है वह यमराजके रहनेका स्थान है । अनेक प्रकारके दुःखोंका समुद्र है एवं रक्त मांस आदि जितने भी अपवित्र पदार्थ हैं उन सबका खजाना है । तथा कर्मोंका आत्मव मिथ्यात्व अविरति आदि कालत्वोंहे लायनाल है । अलत्तत्त्वत्व पर्यन्त संसारमें घुमाने वाला है एवं नाना प्रकारके दुःखोंका देनेवाला है तथा संवर समस्त पाप कर्मोंका रोकने वाला है । दुःखका हरण करनेवाला है और मोक्षको प्रदान करता है ॥१०६॥ संवरके बाद निर्जरा होती है वह निर्जरा समस्त अशुभ कर्मोंकी क्षमा करने वाली है उत्कृष्ट तपसे जायमान है और मोक्षको प्रदान करनेवाली है । तथा यह लोक दुःख और सुख का स्थान है, अत्यन्त विषम है, अनादि है एवं ऊर्ध्वलोक मध्यलोक पाताललोकके भेदसे तीन प्रकारका सदा रहने वाला है । संसारमें मनुष्य भवका पाना, समस्त इन्द्रियोंका पूरा उत्तम होना कुलका मिलता एवं सम्यग्वर्द्धीन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप बोधिका होना महादुर्लभ है—बड़ी कठिनतासे इनकी प्राप्ति होती है । धर्म समस्त संसारके सुखोंका स्थान है । उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्जव ३ उत्तम शौच ४ उत्तम सत्य ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिञ्चन्य ९ और उत्तम ब्रह्मचर्य १० के भेदसे दश प्रकारका है एवं संसारके अन्वर जितने भी दुःख हैं उन सबका सर्वथा नाश करनेवाला है ॥१०७॥ इस प्रकार अनित्य १ अशरणत्व २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आत्मव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० बोधिदुर्लभ ११ और धर्म १२ इन बारह भावनाओंका अपने निर्मल चित्तमें विचार करनेसे उन कुमार भगवान महिलनाथको संसार शरीर और विषय सुख आदिसे मोक्ष प्राप्तिका प्रधान कारण संवेग हो गया । उस समय सिदाय आत्म स्वरूपके कोई भी उन्हें अपना न सूझने लगा ॥१०८॥

इस प्रकार भद्रारक मकल कीर्ति द्वारा विगचित संस्कृत महिलनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान महिलनाथको वेराग्य उत्पत्तिका वर्णन करने वाला पांचवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

षष्ठः परिच्छेदः

निर्देशं येन वात्येऽपि विषयारण्यमंजसा । साधौ दुष्कर्मवृक्षोद्देशत्पोऽग्निनाशं तं स्तुते ॥ १ ॥
 अथ देवध्यो दक्षा निसर्गब्रह्मचारिणः । एकावतारिणः पूज्याः द्विसप्तपूर्वदेविनः ॥ २ ॥
 लौकांतिकास्तदागत्य सारस्वतस्दयोऽष्टधा । मूर्धवी नत्वाऽतिभक्ष्या तं स्तोत्रं प्रारेभिरे जिनं ॥ ३ ॥
 त्वं देव त्रिजगस्वामो त्वं त्रातासि भवार्णवात् । कर्त्ता त्वमेव लोकेऽस्मिन् धर्मतोर्धस्य तीर्थराट् ॥ ४ ॥
 निःकारणो जगद्बन्धुः कृपानाथस्त्वमेव हि । त्वमेव मुक्तिकांपाया भर्ता संभवसि स्वयं ॥ ५ ॥
 तः संबोधयिताऽसि त्वं त बोधयोऽस्माभिरेव च । दीयते कि प्रकाशाय दीपो दिनकरस्य च ॥ ६ ॥

जिन भगवान् मलिलनाथने तपरूपी जाज्वल्यभान अग्निके द्वारा विषयरूपी विस्तीर्ण दन मयवुष्कर्मरूपी वृक्षोंकी श्रेणीके बाल अवस्थामें ही देखते देखते भस्म कर डाला । उन बाल ब्रह्मचारी जिनेन्द्रको में भक्ति भावसे प्रणाम करता हो ॥ १ ॥ संसार तथा शरीर भोगोंसे विरक्त होकर जिस समय भगवान् मलिलनाय बारह भावनाओं-का चितवन कर रहे थे उसी समय लौकांतिक देव जो कि अपने परम पवित्र भावोंसे देहोंमें ऋषि कहे जाते हैं, महा चतुर होते हैं, स्वभावसे ही ब्रह्मचारी होते हैं, एक भवावतारी होते हैं—अर्थात् मनुष्य भव धारणकर हो मोक्ष चले जाते हैं अतएव पूज्य होते हैं; जोदह पूर्वोंके धारक होते हैं एवं सारस्वत आदित्य आठ जिनके भेद हैं, शीघ्र ही भगवानके समीप आये तथा मस्तक झुकाकर नमस्कार किया एवं भक्तिसे गदगद हो वे भगवान् जिनेन्द्रकी इस रूपसे स्तुति करने लगे—

हे देव ! तुम तीन जगतके स्वामी हो, संसाररूपी अगाध समुद्रमें ढूबते हुये प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले आप हो हैं । हे तीर्थोंके राजा ! इस लोकमें इस समय धर्मतोर्धके प्रवर्तक आप ही हैं ॥ २-४ ॥ हे प्रभो ! आप समस्त जगतके अकारण बंधु हैं, कृपानाथ हैं एवं आप हो स्वयं मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी होनेवाले हैं ॥ ५ ॥ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस समय भगवान् तीर्थकरको बैराग्य होता है उस समय लौकांतिक देव उन्हें आकर संबोधते और उनके बैराग्यको बढ़ करते हैं परन्तु हे भगवान् । यह कहना कल्पनामात्र है क्योंकि जिस प्रकार अखण्ड दीपिका भण्डार सूर्य स्वयं प्रकाशमान है उसे प्रकाश करनेके लिये दीपिककी आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार हे नाथ ! उत्तम ज्ञानके धारक आप इन सबोंको सम्बोधने वाले हैं— हमें समीक्षीन मार्गके सुझाने वाले हैं हमारे द्वारा कभी भी आप सम्बोधे नहीं जा

त्वं स्वयंभूः स्वयंबुद्धो विश्वज्ञो ज्ञाननेत्रवान् । स्वान्वयोर्हितकृददेवत्वपाऽत्रेमनुष्ठितं ॥७॥
 यतो बाल्येऽपि तीर्थेष ! भोहारि मदनादिभिः । साधौ हृत्वा विरागासिना ॥८॥ अरित्रे मतिः कृता ॥८॥
 मुखत्वा ये विविधात् भोगात् रुच्यते त्यजति न । तदाश्च (स्व) वर्षिदं चित्रं त्वयिनाथ शिवोद्यते ॥९॥
 अतो ताथ ! त्वमेवात्र धन्यो बाल्येऽपि रागजित् । मुखग्रासागतत्यागान्नान्यस्त्वत्सदृशो भुवि ॥१०॥
 त्वयोदितमहाज्ञानपोतमासाद्य श्रीधनाः । भवाविद्यमुत्तरिष्यति स्वामिन्तत्र न संशयः ॥११॥
 भवद्वाक्यामृतैः पूर्णं धर्मतीर्थं विदो महत् । आप्य प्रधालयिष्यति दुष्कर्म मलसंचयं ॥१२॥

सकते अर्थात् हमें आपको सम्बोधन करने वाला बतलाना सूर्यको दीपक दिखाना है ॥६॥ हे भगवान् ! आप स्वयं उत्पन्न होनेवाले हैं इसलिये स्वयंभू हैं । आपको सम्बोधन करनेवाला कोई अन्य नहीं—अपने सम्बोधन करनेवाले आप ही हैं इसलिये आप स्वयंभू हैं समस्त लोक अलोकको जाननेके कारण आप सर्वज्ञ हैं । ज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं । हे देव ! आपने जो विचार किया है वह अपना पराया हित करनेवाला है इसलिए वह सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि हे दयासागर भगवान् ! बाल्य अवस्थामें ही आपने बैराग्यरूपी तीक्ष्ण खड़गके द्वारा अत्यन्त भयंकर कामदेव आदिके साथ मोहरूपी शत्रुको नष्टकर महा तीक्ष्ण सम्यक्चारित्रके धारण करनेका साहस किया है ॥७-८॥ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर जो पुरुष तृप्ति होनेपर भी उनसे विरक्त नहीं होते यह आइचर्य है अर्थात् तृप्ति होनेपर भोगोंका सर्वथा त्यागकर देना चाहिये किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे बड़ा अचरजका काम करते हैं । परन्तु मोक्ष प्राप्तिके लिए सर्वथा उद्यत आपने बिना ही भोगे उनका सर्वथा त्यागकर दिया यह सबसे बढ़कर आइचर्यकी बात है । इसलिये हे नाथ ! इस संसारमें सबसे धन्यवादके पात्र आप ही हैं । हे भगवान् ! बाल्य अवस्था ही में आप रागके जीतने वाले हैं अर्थात् किसी भी पदार्थमें आपका राग नहीं—सबसे अधिक रागका कारण स्त्री है सो उसका बंधन भी आपने नष्ट कर दिया—बिवाहसे ही विरक्त हो गये, इसलिए मुखमें पहुँचते हुए ग्रासके त्यागके कारण अर्थात् रागके तीव्र अन्धन बिवाहसे सर्वथा मुँह मोड़ने और सम्यक्चारित्रमें प्रवृत्त होनेके कारण आप एक अद्वितीय व्यक्ति हैं आपके समान कोई भी नररत्न संसारके अन्दर नहीं ॥९-१०॥ हे प्रभो ! आपके अन्दर सहजान केवलज्ञानका उदय होगा । उस केवलज्ञानरूपी जहाजका आश्रय कर अर्थात् उस केवलज्ञानकी कुपासे यथार्थ उपदेश पाकर ये बिहुन् भव्य प्राणी संसाररूपी महागंभीर समुद्रको तर जावेंगे इसमें कोई संवेह नहीं है ॥११॥ गम्भीर जलसे भरा हुआ गंगा आदिका तीर्थ जिस प्रकार भैलका काटने वाला माना जाता है उसी

१५। ज्ञानज्योत्सनया देव ! मोहादिष्वांतमजसा । हृत्वा संलोकयिष्यति भव्या मुक्तिपथं भुवि ॥१३॥
 भवतं पोतसादृशं सहायीकृत्य योगिनः । केचिद्यास्यति निर्बर्ण रत्नग्रथनेष्वराः ॥१४॥
 भवद्मोपदेशोनोपाज्ञान्यपरम बृष । भव्याः सवर्थं सद्गुच्छं च नाकं वा त्वत्समं श्रियं ॥१५॥
 केचिद् ग्रीवेषकं दिव्यं केचिच्छक्षक्षदिगोचरां । लक्ष्मीं केचिन्महाभोगान् वे भोक्ष्यन्ति न चान्यथा ॥१६॥
 अतो देव ! त्वमेवाशु मुक्त्या कालविलंबितं । गृहणं संयमं येन स्वान्ययोहितमदभूतं ॥१७॥
 इत्यभिष्टुत्य तीर्थेण संप्राप्य यद्गतां श्रियं । मुहुनत्वा प्रशस्यौचेदिव्यवाक्येमनोहरे ॥१८॥
 कृत्वा त्वीयं नियोगं ते दीक्षाकल्याणशसिनः । उपाज्यं बहुधा पुर्णं ब्रह्मलोकं भुदा ययुः ॥१९॥

प्रकार तुम्हारी वचनरूपी अमृतसे परिपूर्ण विशाल धर्मरूपी तीर्थको पाकर भव्य ज्ञोवेकि द्रुष्टर्मरूपी मैलका समृह नियमसे घुलेगा ॥१२॥

हे देव ! तुम्हारे ज्ञानरूपो चाँदनीकी ही कुपासे मोह आदि रूप विपुल
अन्धकार को नष्ट कर ये भव्यजोव इस संसारमें मोक्षके मार्गको भले प्रकार बेखेंगे
॥१३॥ जिस प्रकार इतनोंके व्यापारी सेठ जहाजकी सहायतासे अपने अभीष्ट स्थान-
पर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार जो योगी रत्नशयख्यी विशिष्ट धनके स्वामी हैं वे
जहाजके समान आपकी सहायता पाकर मोक्षको प्राप्त होंगे ॥१४॥ हे भगवन् !
तुम्हारे हारा समीचीन धर्मका उपदेश सुन उत्तम धर्मका उपार्जन कर कोई कोई भव्य
सवर्धिसिद्धि प्राप्त करेंगे । बहुतसे स्वर्ग जायेंगे और बहुतसे तुम्हारे समान लक्ष्मी प्राप्त
करेंगे अर्थात् आपके समान तोथंकर होकर अनन्त विभूति प्राप्त करेंगे ॥१५॥ कोई
कोई दिव्य ग्रैवेयकमें जन्म धारण करेंगे कोई कोई अत्यन्त पुण्यशाली चक्रवर्तीके होने-
वाली लक्ष्मी प्राप्त करेंगे और कोई कोई महानुभाव नियमसे मोक्ष प्राप्त करेंगे किन्तु
उपदेशके बिना सवर्धिसिद्धि आदि विशिष्ट अभ्युदयके कारण स्थानोंकी प्राप्ति नहीं
हो सकती ॥१६॥ इसलिये हे देव ! हमारी यह बिनान्न प्रार्थना है कि आप कालका
अस्प भी विलम्ब न कर शीघ्र ही संयम धारण करें जिससे अपना पराया अलौकिक
हित हो क्योंकि जब तक आप संयम न धारण करेंगे तब तक न तो आप अपना
हित कर सकते हैं और न किसी दूसरेका ही ॥१७॥ इस प्रकार भगवानके दीक्षा-
काल्याणकी प्रशंसा करनेवाले लोकांतिक देवोंने, पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान् मल्लिनाथ-
की स्तुति कर, 'आपको जो कुछ विभूति प्राप्त है वह विभूति हमें भी प्राप्त हो' ऐसी
प्रार्थना कर बार-बार नमस्कार कर एवं मनोहर दिव्य बायोंसे प्रशंसा कर अपना

अथ दिव्यविभूत्यामा जगदाश्चर्यकारिणः । गीतनर्तनवाचादेः स्वस्ववाहनभाषिताः ॥२०॥
 चतुर्णिकादज्ञाः शक्ताः सकलत्राः सुरावृताः । धर्मात्मानसास्तत्राजग्मुः कल्याणसिद्धये ॥२१॥
 तत्त्वस्तं परिनिष्कांतिकल्याणाय सुरैः समं । अभिषिष्य महामूर्त्या कुञ्जैः शोरांवृसंभृतैः ॥२२॥
 देवेन्द्रा भूषयामासुरारोप्य हरिविष्टर । भूषणैः परमेभल्यैर्वैस्त्रेवच मलयोद्भूवैः ॥२३॥
 दिव्यवाण्या प्रबोध्यानु महाकष्टेन भोहिनः । पित्रादीरच श्रिय त्यक्त्वा तृणवत्संयमोद्यतः ॥२४॥
 इन्द्रहस्तं समालंब्याद्यरोह भूषणान्वितः । यान् जयतसङ्गं स पराद्यर्थमणिनिमित्तं ॥२५॥
 देवोऽसौ शिविकारुद्धो वीयमानः सुजागरैः । सिंहैर्द्वकुरुत्तदस्यैर्वरो वाभासपःश्रियः ॥२६॥
 सप्तपदानि तामूहुः स्कृथेन प्रथमं नृपाः । उतो विद्वाधरानिन्युव्योन्ति सप्तपदावली ॥२७॥

नियोग समाप्त किया तथा इन शुभ चेष्टाओंके द्वारा बहुत प्रकारसे पुण्य उपार्जन कर दें अपने निवास स्थान अत्युल्लिकको सानंद चले गये ॥१८-१९॥

लोकांतिक देवोंके चले जानेके बाद चारों निकायके इन्द्रगण उनके तप-कल्याणकी पूजाके लिये मिथिलापुरी आए । वे देव उस समय बड़ी विशाल विभूति-से मंडित थे । गीत नृत्य और बाजे आदिसे समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाले थे, अपनी-अपनी देवांगना और आज्ञाकारी देवोंसे व्याप्त थे और अत्यन्त धर्मात्मा थे ॥२०-२१॥ मिथिलापुरीमें आकर चारों निकायके इन्द्रोंने अपने साथमें आए हुए देवोंके साथ दीक्षा कल्याणके उपलक्षमें क्षोरोदधिसे भरे हुए मनोहर कलशोंसे भगवान जिनेन्द्रका बड़े ठाट बाटके साथ अभिषेक किया । सिंहासन पर विराजमान कर उत्त-मोत्तम भूषण मालायें और मलयागिरिके वस्त्रोंसे उनका शृंगार किया ॥२२-२३॥ भगवान जिनेन्द्रका इस प्रकार जिनदीक्षाके लिये उत्साह देखकर परम भोगी उनके माता-पिता महाशोक और महा दुःख करने लगे । भगवान जिनेन्द्रने बड़े कष्टसे उन्हें मनोहर वाणीसे समझाया और दिलासा दी । जीर्ण तृणके समान समस्त लक्ष्मी-का परित्याग कर दिया एवं संयम धारण करनेके लिये सर्वथा तैयार हो गए ॥२५॥

भूषणोंसे शोभायमान दें भगवान जिनेन्द्र इन्द्रके हाथका सहारा लेकर उत्त-मोत्तम मणियोंसे निमित 'जयंतो नामकी पालकीमें शोध्र ही सवार हो गये ॥२६॥ जिस समय दें पालकीमें बैठ गए उस समय देवगण अपने हाथोंमें धारण कर सफेद चमर उनपर ढोरने लगे हसलिये उस समय दें ऐसे जान पड़ने लगे मानो तपरुपी

१. हरिवंशपुराणमें मलिनाव भगवानकी पालकीका नाम जयन्ती लिखा है ।

ततः स्वकंधभारोप्य शिविकां तां सुरासुराः । स्मृत्येतुः प्रमोदाद्यथा जनानां दृष्टिगोचरं ॥२८॥
 मोहर्तिगयोद्भूतनीहश्च वाद्यम् । वद्धिद्विविषेवाचैनतौनोत्सवकोटिभिः ॥२९॥
 भोहारिविजयोद्योगं घोषयतो जगदगुरोः । जयकोलाहलं चकुर्दृष्टा अग्रेमुदा सुराः ॥३०॥
 इत्थादिकृतमाहात्म्यकलेशः परितो वृत्तैः । देवः पुराद्विनिष्कान् पीरित्यभिनंदितः ॥३१॥
 ब्रज सिद्धध हतारीश्व शिवःपन्था विभोस्तु ते । जय नदेश देव त्वं विष्वकल्याणभाग भव ॥३२॥
 तपोर्धं तं ब्रजं तं विलोक्य केचिद्विचक्षणाः । जगुः परस्परं हीति परमाश्चर्यकारणं ॥३३॥
 अहो पश्य महद्दीर्दि चित्रं देवोऽप्यमद्भुतः । त्यक्त्वा बाल्येऽपि कल्यादीन् यतो गृह्णति संयमं ॥३४॥
 अन्ये प्राहुरहो नेद चित्रं किन्तु जिनोप्यथं । हत्वा घातीन् जगद्राज्यं स्ववक्षो संकरिष्यति ॥३५॥

लक्ष्मीके ये साक्षात् बूल्हा हैं ॥२७॥ सबसे पहिले सात पैड़ तक तो राजा लोग अपने कंधोंपर रखकर उनकी पालकी ले चलने लगे । उनके बाद आकाशमें सात पैड़ तक उनकी पालकी विद्याधरण ले चले । उनके पीछे सुर और असुरोंने उनकी पालकी अपने-अपने कंधोंपर रखकी एवं आनन्दसे गद्गद् वे मनुष्योंकी दृष्टिके गोचर होकर आकाशमें चलने लगे ॥२८॥ उस समय मोहरूपी शत्रुके विजय सम्बन्धी गीत, प्रस्थान भंगल, ताना प्रकारके बजनेवाले आजे और नृत्य इस प्रकार करोड़ों उत्सवोंके साथ सीन जगतके गृह भगवान जिनेन्द्रके मोहरूपी शत्रुके विजयकी घोषणा करते हुये वे देव उस समय आनन्दसे पुलकित थे एवं बड़े हर्षसे “हे देव ! आपको जय हो, जय हो”, इस प्रकार उनके आगे-आगे जय जय शब्दका कोलाहल करते चले जाते थे ॥२९-३०॥ चारों ओरसे घेरकर खड़े रहनेवाले देवेन्द्रों द्वारा जिनका उपर्युक्त रूपसे माहात्म्य प्रकट किया गया है ऐसे वे भगवान जिनेन्द्र जिस समय मिथिलापुरीसे बाहर निकले थे उस समय पुरवासी लोगोंने उनका इस रूपसे अभिनन्दन किया था—

हे स्वामिन् ! हे देव ! आप मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करनेके लिये सिधारें । कर्म-
 रूपी शत्रुओंके नाश करनेमें आप समर्थ हों । हे प्रभो ! तुम्हारा भार्ग कल्याणका करने-
 वाला हो । आप जपथते रहें, नावें विरवें एवं समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त करने-
 वाले हों ॥३२॥ जिस समय भगवान तपके लिये जा रहे थे उस समय उन्हें देखकर
 बहुतसे चतुर पुरुष आपसमें यह कहकर अत्यन्त आश्चर्य करते थे कि देखो ! यह बात
 बड़ी ही अचरज करनेवाली है कि महान ऋद्धिके धारी, अद्भुत पराक्रमशाली ये
 भगवान जिनेन्द्र बाल अवस्थामें ही कन्या आदि लुभानेवाले पदार्थसि ममत्व तोड़-
 कर संयम धारण करनेके लिये चल दिये हैं ॥३३-३४॥ अन्य बहुतसे मनुष्य यह

परे प्राहुरहो केचिज्जायते पुरुषोत्तमाः । अत्र हतुं क्षमाः कौमारत्वेऽच्छिक्षस्मराद्यरीत् ॥४६॥
 इत्यादिविविधालापैः इलाघ्यमानः पुरेजनैः । संयमश्रीवराभोऽसौ पुरोपांत्र(?)व्यतीयिवान् ॥४७॥
 अथ संप्रस्थिते सूतो जिनांवातःपुरावृता । बंधुभिःसह शांकाल्या स्वपुत्रमनु नियेयी ॥४८॥
 प्रस्वलत्पदविन्यासेर्मुक्तकेशा गतप्रभा । हा पुत्रेति स्वदती प्रताहयन्ती निजोदर्द ॥४९॥
 तद्वियोगाग्निदग्धांगा बभूवुर्धवस्तदा । निषेतुर्भूतले केचिन्मूर्च्छामीलितलोचनाः ॥५०॥
 मत्स्वामिन् । कव गतोसि त्वं कदा मेलापकस्तव । धरिष्यामः कथं प्राणस्त्वद्वियोगात्त्वेतसः ॥५१॥
 इत्यादि शोचनैवक्षयेभूत्याश्च बन्धवः स्त्रियः । कुर्वतो रोदनं देव्यामा मार्गेऽनुद्वजति तं ॥५२॥

कहते थे कि इसमें आश्रय करनेकी कोई बात नहीं है । ये भगवान जिनेन्द्र कम चतुर नहीं हैं क्योंकि ये नियमसे समस्त धातिया कामोंको नष्टकर तीन लोकके राज्यको अपने वशमें करना चाहते हैं और नियमसे उसे अपने आधीन करेंगे ॥३५॥ बहुतसे चतुर पुरुष यह विचार प्रदर्शित करते थे कि इस संसारमें विरले ही ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं जो कुमार अवस्थामें ही इन्द्रिय और कामदेवरूपी बैरीके जीतनेमें पूरी-पूरी सामर्थ्य रखते हैं ॥३६॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके वस्त्र कह कर पुरबासी जनोंसे प्रशंसा किये गये और संयमरूपी लक्ष्मीके बर सरीखे जान पड़नेवाले वे भगवान जिनेन्द्र पुरबासी जनोंसे अदृश्य हो गये थे ॥३७॥

जिस समय भगवान जिनेन्द्र बीक्षाके लिए चले गये उनकी माता प्रजावती को बड़ा दुःख हुआ । शोकसे बिहूल हो वह अपनी अन्तःपुरकी रानियों और बन्धु बांधकोंके साथ भगवान जिनेन्द्रके पीछे-पीछे चलने लगीं ॥३८॥ रानी प्रजावतीकी दशा उस समय बड़ी दयाद्वयी थी, दुःखकी तीक्ष्णतासे उसके दोनों पेर लड़ते-लड़ते जमीन पर गिरते थे । शिरके बाल बुरी तरह बिल्कुर रहे थे, शरीरकी सारी कांति फीकी पड़ गई थी । हाय प्यारे पुत्र ! तू मुझ अभागिनीको क्यों छोड़कर बीक्षाके लिए चल दिया । इस प्रकार बार-बार रोती थी और अपनी छाती कूटती थी ॥३९॥ भगवान जिनेन्द्रके बहुतसे बन्धुगण उनके वियोगरूपो अग्निसे अत्यन्त दर्श हो मूर्च्छासे बेहोश हो जमीनपर गिर गए एवं उन्हें उस समय इतना कष्ट हुआ था । कि उन्हें अपने शरीरकी रंग मात्र भी सुध बुध न थी ॥४०॥ उनके वियोगसे अत्यन्त दुःखित चिस, बहुतसे बन्धुगण यह कह कहकर स्वदन करते थे कि हे स्वामी भगवान जिनेन्द्र ! आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये । अब कब हमें आपके दर्शन होंगे एवं आपके वियोगसे महा दुःखित हम कैसे संसारमें जीवित रह सकेंगे ॥४१॥ इस प्रकार अत्यन्त शोक

महत्तरैस्तदागत्य तां निरुद्धय निरुपित । मा ब्रज त्वं न किं वेत्सि देवि । वृत्तं जगत्पतेः ॥४३॥
मृगवद्गोहपाणी तिष्ठेत्क्ष सिहः कथं तव । वीतरागो मुमुक्षुः कि भोगान् भुनक्ति पूर्खवत् ॥४४॥
इत्यादि मधुरविधिवेदोधिता सा सती गमं । वंधुभिर्हृति कष्टेन जगाम जिनमन्दिरं ॥४५॥
अथ श्वेतश्चनोऽनाने रस्ये पुण्यात्मकादिति तुहि । शारिरिपितां शुद्धां पणिमण्डपभूषितां ॥४६॥
मञ्जुलद्रव्यपाश्चर्वस्थां स्फटिकी सुवृत्तां शिलां । यानादवातरहेवो निर्जरैरवतारितात् ॥४७॥

परिपूर्ण वाक्योंसे भगवान् जिनेन्द्रके भृत्य बंधु बांधव और उनकी माता आदि स्त्रियाँ बड़े ऊँचे ऊँचे स्वरोंसे रोते चिल्लाते थे और भगवान् जिनेन्द्र जिस मार्गसे दीक्षावन्न-को गये थे उसी मार्गपर शोकसे विह्वल हो दौड़ते चले जाते थे ॥४२॥ वैमानिक देवोंमें एक महत्तर जातिके देव हैं । शोकसे विह्वल माता प्रजावतीको इस प्रकार जाती देख महत्तर लोग इनके पास आये और उन्हें रोककर इस रूपसे तम्र निवेदन करने लगे—

हे देवी ! तुम जो इस तरह शोकसे विह्वल हो जा रही हो सो तुम्हारा जाना शोभा नहीं देता । भगवान् जिनेन्द्र तोनों लोकके स्वामी हैं । समस्त हित अहितके जानकार हैं । क्या तुम उनके हालको बिलकुल नहीं समझती हो ॥४३॥ मृग जिस प्रकार पाशके अन्दर फँसकर बैध जाता है उसी प्रकार सिह पाशके अन्दर जिकड़कर नहीं रह सकता । हे माता ! आपके पुत्र भगवान् जिनेन्द्र वीतराग हैं— समस्त संसारकी सम्पत्तिसे उनका राग छूट चुका है और मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्तिके लिये पूरी अभिलाषा चित्तमें ठान लो इसलिए भोगोंकी रमणीयता देखकर जिस प्रकार भूर्लं मनूष्य उनमें उलझ जाता है और उन्हें रात दिन भोगता है उस प्रकार वे भगवान् जिनेन्द्र नहीं भोग सकते । उनके कार्यपर किसी प्रकारका शोक करना दूर्योग है ॥४४॥ जब महत्तर जातिके देवोंने इस प्रकार मधुर वचनोंमें माता प्रजावतीको समझाया तो उनकी समझमें आ गया एवं वह सती माता अपने बन्धुओंके साथ बड़े कष्टसे राज मन्दिरकी ओर लौट गई ॥४५॥

भगवान् जिनेन्द्रने जिस बनमें जिन दोक्षा धारण की थी उस बनका नाम श्वेतधनका उद्यान उस समय बढ़ा ही मनोहर था एवं जगह जगह भाँति भाँतिके पुष्प और फल उनकी शोभा बढ़ाते थे । देवोंने वहाँपर पहिले ही एक शिलाका निर्माण कर रखा था । वह शिला अत्यन्त शुद्ध थी, पणिमयो मंडपसे अत्यन्त शोभाप्राप्त थी । उसके पासबाड़ोंमें कलश झाड़ी आदि मंगलोक द्रव्य विद्यमान

क्षेत्रादिदशधाग्रन्थान् बाह्यान् समवस्त्रभूषणान् । द्विसप्ताभ्यंतरं ग्रन्थांस्त्रिशुद्धया व्युत्सृजेत्तदा ॥४८॥
 ततः पूर्वमुखं स्थित्वा नत्वा सिद्धान् परान् जिनः । केशानलूचत बढपल्यंकः पञ्चमुष्टिभि ॥४९॥
 मार्गशीर्षसितैकादशीदिनेऽतिशुभे मुदा । अश्विन्याह्ये सुनक्षत्रे उच्चार्य सिद्धसा छिकं ॥५०॥
 मोक्षमूलान् गुणान् मूलाख्यानष्टाविश्वतिप्रमान् । मुक्तये मुक्तिमुखो जैनीं दीक्षां देव उपाददौ ॥५१॥
 सायाह्ने भूमिपः साधै त्यक्तरागैः शतांत्रिकैः । मुमुक्षुंभवंहादक्षेष्वासद्यान्वितः ॥५२॥
 निश्चुद्धार्थं जिनो योगं संकल्पांच परात्मनि । दध्याद्ध्यानं विरस्याशु सावद्यान् सकलांश्चिदे ॥५३॥
 केशान् रत्नपटल्यां तान्निधायांशुकसंबृतान् । भक्त्या नोत्वा विभूत्या सुराः क्षोरोदे निचिक्षिषुः ॥५४॥

ये । स्फटिकमणिकी बनी थी और गोलाकार थी । शिलाके पास आते ही जिस पालकीको देवगण लाए थे भगवान् जिनेन्द्र उससे उत्तर पड़े । उसी समय भगवान् जिनेन्द्रने क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ बासी ७ दास ८ कुरुष
 ९ भाँड १० इस प्रकार दश प्रकारका बाह्य परिध्रह और मिथ्यात्व १ स्त्रीवेद २ पुरुष-
 वेद ३ नर्पुसक वेद ४ हास्य ५ रत्ति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्ता १० छोध ११
 मान १२ माया १३ और लोभ १४ इस प्रकार यह औदृह—प्रकारका अंतर्ग परिध्रहे ।
 इस प्रकार चौबीस प्रकारके बाह्य और अभ्यन्तर परिध्रहका मन वचन और कायकी विशुद्धतासे सर्वथा त्याग कर दिया । वे भगवान् मलिलनाथ उसी समय पूर्व दिशाको ओर मुख कर बैठ गए । आठों कर्मोंके सम्बन्धसे रहित भगवान् सिद्धिपरमेष्ठीको नमस्कार किया एवं पल्यंक आसन (पलोती) माढकर पाँच मुष्टियोंसे शीघ्र ही केश लूचकर फेंक दिए ॥४६-४७॥ उन भगवान् मलिलनाथने अत्यन्त शुभ अगहन सुवी एकादशीके दिन जब कि अत्यन्त कल्याणकारी अदिवनी नामका नक्षत्र या “ॐ नमः सिद्धेभ्यः सिद्ध भगवान्को नमस्कार हो”—ऐसा उच्चारण किया एवं सिद्धोंकी साक्षी पूर्वक मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिकी अभिलाषासे उन्होंने अट्टाइस प्रकारके मूलगुणोंको धारण किया एवं सायंकालके समय वीतरागी मोक्षाभिलाषी और महादक्ष तीन सौ राजाओंके साथ शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मीकी सखोस्वरूप दिगम्बर जैन दीक्षा धारण कर ली । उन भगवान् जिनेन्द्रने दो उपवासोंका नियम लिया । मन वचन कायकी क्रियारूप योग और संकल्पोंका निरोध किया । धास्तविक आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये समस्त सावद्य योगोंका परिहार कर दिया एवं परमात्माके स्वरूपमें

१. समिथ्यात्वस्त्रयो षेषा हास्यपूभृतयोऽति षट् । चत्वारश कषायाः स्युरत्वंउष्टुप्यापचर्दण । —यशस्तिलकषम् ।

२. हरिवंशपुराणमें छहसो छह राजा बतलाये हैं ।

ईशन्नग्रानना भक्त्या शकास्तद्गुणरजितः । तत्कालोचितसद्वाक्यैः स्तोतुं प्रारेभिरे प्रभुः ॥५५॥
त्वं देव ! भुवनाधीशो गुरुस्त्वं गुरुयोगिनां । धर्मवित्तीर्थकर्ता त्वं कृपानाथस्त्वमेव हि ॥५६॥
अंतर्बाह्यपलापायादद्य ते निर्मला गुणाः । विभ्राजतेऽप्यमाणा देव ! चितामण्यो यथा ॥५७॥
स्वमुखे निस्पृहोऽपि त्वं सस्पृहोऽन्तश्चर्मणि । निर्ग्रथोऽपि महानध्यरत्नत्रयेऽप्यनेश्वरः ॥५८॥
निरीहोऽप्यत्र नायदी चाकांक्षी मुक्तिसंगमे । देव ! त्वं त्यक्तराज्योऽपि त्रिजगद्राज्यलोलुपः ॥५९॥

उन्होंने ध्यान लगाया ॥५०-५३॥ भगवान् जिनेन्द्रने जो केश उखाड़ कर फेंके थे इन्हने उन्हें बड़ी भक्ति और आदरसे रत्नमयी पिटारीमें रखा । अतिशय उत्तम वस्त्रसे ढक लिये एवं बड़े नात लातके साथ ओटोइडि लम्बुडके जलमें ज्ञाकर क्षेपण कर दिये ॥५४॥ जिनके मुख—सम्पूर्ण तत्त्वोभूत हैं और भगवानके गुणोंपर जिनका पूरा पूरा अनुराग है ऐसे वे इन्द्र उस समयके अनुकूल उत्तमोत्तम वाक्योंसे भगवान् जिनेन्द्रकी इस प्रकार भवितपूर्वक स्तुति करते लगे—

हे देव ! आप तीनों लोकके स्वामी हो । जो योगी लोग बड़े-बड़े लोगोंके भी गुरु हैं उन पूज्य योगियों के भी आप गुरु हैं । समीचीन धर्मके स्वरूपके भले प्रकार जानकार हैं । जिनके पूजन करनेसे सैकड़ों भव्य जीव तर जाते हैं—संसारसे छूटकर मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति कर लेते हैं उन पवित्र तीर्थोंके आप प्रवर्तक हैं एवं समस्त जीवोंपर कृपा करनेवाले कृपानाथ आप हैं ॥५६॥ हे भगवान् ? अंतरंग और बाह्य मैलके दूर हो जाने पर जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न चमचमा उठते हैं उसी प्रकार अंतरंग और बाह्य मैलके नाश हो जानेसे आज आपके निर्मल और अपरिमित गुण चमचमा रहे हैं ॥५७॥ प्रभो ! यद्यपि आप स्वर्गके सुखोंमें सर्वथा अभिलाषारहित हैं परन्तु अनन्त कल्याण स्वरूप मौकके सुखोंमें आप पूरा-पूरी अभिलाषा रखनेवाले हैं बाह्य अन्यंतर समस्त प्रकारके परिप्रहसे रहित हैं परन्तु रत्नत्रयरूपी अचित्य धन-के आप स्वामी हैं । संसारकी समस्त स्त्रियोंमें यद्यपि आप अभिलाषा रहित हैं तथापि मोक्षरूपी स्त्रीके साथ संगम करनेके लिये आपकी पूरी-पूरी इच्छा है । हे देव ! यद्यपि आपने यहाँकी राज्यविभूतिका सर्वथा त्याग कर दिया है परन्तु तीन लोकके राज्यके प्राप्त करनेमें आपकी लोलुपता पूरी है । आपने दो उपवासोंका नियम ले रखा है इसलिये यद्यपि आप उपवासयुक्त हैं तथापि निरन्तर समीचीन ध्यान-रूपी अमृतका आप पान करते रहते हैं । यद्यपि सब बातोंमें आप द्वीर बीर हैं किसी आपस्तिके आ जानेपर जल्दी क्षोभको प्राप्त नहीं होते इसलिये अक्षोभ्य हैं और अत्यंत

उपोषितोऽरि नाथ ! त्वं सद्गुणानामृतगुणवान् । धीरोऽक्षोभयोऽपि दक्षस्त्वं कातरः कर्मबंधने ॥६०॥
 रागादौ बीतरागोऽपि भरगो मूक्तिसाधने । क्षमावानऽपि लोके त्वं कोपी कर्मारिघातने ॥६१॥
 निर्लोभिस्तुच्छलश्यादौ महालोभस्तपोधने । निर्मोहोऽपि स्वकार्यदौ मुक्तिस्त्रस्तेहतत्परः ॥६२॥
 कौमारत्वेऽपि कामारिम्भेहिक्षारानिभिः सम् । हतः स्वामिस्त्वया शीघ्रमतो न त्वत्सम्प्रोपरः ॥६३॥
 अतो देव ! नमस्तुभ्यं सदालक्ष्माहाचारिणे । निर्मोहायातिशांताय तपः श्यलंकृताय ते ॥६४॥
 नमस्ते दिव्यरूपाय नमो मुक्तिस्पृहालवे । नमो हितात्मने नाथ ! नमस्ते गुणसिध्वे ॥६५॥

चतुर हैं । परन्तु कर्मोंके बन्ध करनेमें कातर—उत्तेवाले हैं, अर्थात् यह आपको सदा भय लगा रहता है कि कहीं मेरे कर्मोंका बन्ध न हो जाय इसलिये उनके बन्ध न होने के लिये आप पूरी-पूरी चेष्टा रखते हैं । उस समय कर्मोंके बाँधनेमें आपकी धीर धीरता एक ओर किनारा कर जाती है एवं कर्मोंके बन्धसे चित्त उथलपुथल हो निकलता है ॥५७-६०॥ हे भगवान् ! अन्य रागद्वेष आदिके अन्दर बीतराग हैं—उन्हें अपनाना नहीं चाहते परन्तु मोक्षके सिद्ध करनेमें अत्यन्त रागी हैं—सदा मोक्षकी प्राप्तिके कारणोंको आप चेष्टा करते रहते हैं ग्रन्थि शङ्ख और मिश्रोंको समान माननेके कारण आप क्षमावान हैं तथापि कर्मरूपी बैरियोंको आप अपने पास तक नहीं फटकने देना चाहते सदा उनके नाश करनेके लिये प्रावृत्त रहते हैं ॥६१॥ हे भगवान् ! यद्यपि संसारकी तुच्छ लक्ष्मीमें आपका किसी प्रकारका लाभ नहीं इसलिए उसे छोड़कर आपने पवित्र जिनदीक्षा धारण की है तथापि तपरूपी लक्ष्मीके लिये आप बड़े लोभी हैं—एक क्षणके लिये भी तपरूप लक्ष्मीसे विमुख होना नहीं चाहते । आप अपने शरीर आदिमें सर्वथा ममत्वरहित निर्मोही हैं परन्तु मोक्षरूपी स्त्रीपर आपका पूरा-पूरा स्नेह है । उसको प्राप्तिके लिए आप कोई भी बात उठा रखनेवाले नहीं हैं ॥६२॥ हे स्वामो ! कुमार अवस्थामें कामदेवका जीतना अत्यन्त कठिन है परन्तु आपने कुमार अवस्थामें ही मोह और हन्द्रियरूपों बैरियोंके साथ कामदेवरूपी बलवान शङ्खको देखते-देखते नष्ट कर डाला इसलिये आपके समान अन्य कोई महापुरुष नहीं । अतएव हे देव ! आप उत्तमकोटिके बाल ब्रह्मचारी हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है । आप मोहके विकारोंसे रहित निर्मोह हैं अत्यन्त शान्त हैं और तपरूपी लक्ष्मीसे शोभित हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है ॥६३-६४॥ आप दिव्यरूपके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार हैं । मोक्ष सुख प्राप्त करनेके लिए आपकी पूरी इच्छा है इसलिये आपके लिये नमस्कार हैं । आप हितात्मा हैं—हूँसरे जीवोंका और अपना

देव ! देहि त्वमस्माकं स्तुतिभवितफलेन हि । भवे भवे भद्रीयं बालत्वे संयमाप्तये ॥६६॥
इति स्तुत्वा मुहूर्नत्वा कृतकार्याः सुरेश्वराः । तत्पोवात्याङ्गक्ता ययुः स्वं स्वं मुदाश्रयं ॥६७॥
तदैव ध्यानसामर्थ्यप्तन्तुर्यज्ञानभास्करः । पारणाह्नेऽथ मार्गोऽयमिति सञ्चित्य संयमे ॥६८॥
भावयन् हृदि निर्वेदं स्वेषीपथबिलोचनः । प्रकुर्वन् दानिना तोषं प्राविशन्मिथिलां जिनः ॥६९॥
महापात्रं तमालोक्य निवानमिव दुर्लभं । नदिष्वेणनृपो हेमद्युतः प्राप्य परं मुदं ॥७०॥

भी हित करनेवाले हैं इसलिये आपके लिए नमस्कार हैं एवं आप समस्त गुणोंके समुद्र हैं इसलिए आप नमस्कार करनेके योग्य है ॥६५॥ हे देव ! यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि यह जो हमने आपकी भवित और स्तुति की है उसका फल हम यही चाहते हैं कि बाल अवस्थामें भी संयमकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार आपके अन्वर अर्धित्य शक्ति विद्यमान है वह शक्ति आपकी कृपासे हमें भी प्राप्त हो ॥६६॥ इस प्रकार भवितपूर्वक भगवान महिलनाथकी स्तुति कर देवेन्द्रोने बार-बार उन्हें नमस्कार किया एवं उनकी महिमाकी प्रशंसा करते हुए वे लोग अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अपने-अपने स्थान लौट गये ॥६७॥

बोधाके समय परिणामोंकी इतनी उज्ज्वलता रहती है कि उस समय सातवें गुणस्थानके परिणाम हो जाते हैं एवं सातवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होनेसे पीछे वे छठे गुणस्थानमें आते जाते रहते हैं । समस्त बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग कर जिस समय भगवान महिलनाथ ध्यानके अन्वर निश्चल हुए थे उस समय उस उत्कट ध्यानकी सामर्थ्यसे उनके मनःपर्यंपज्ञान नामका औथा ज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हो गया था एवं उस समय वे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यंपज्ञान इस प्रकार ज्ञानोंके धारक बन गए थे । जो विन उनके पारणाका या उस दिन उन्होंने संयम करते-करते ही यह विचारा कि शरीरकी स्थितिके लिए आहार लेना भी सुनिश्चित मार्ग है अर्थात् संयमका साधक है, इसलिये आहारका लेना उन्होंने निश्चित कर लिया । वे भगवान जिनेन्द्र, हृदयमें संसार शरीर भोगोंसे वंशान्यको मावनाका चितवन करते-करते जूरा प्रमाण जमीनको देखते-देखते आहारके लिये चल रिये एवं वानियोंको संतोष प्रदान करनेके लिये मिथिलापुरीमें प्रवेश कर गए ॥६८-६९॥

मिथिलापुरीमें सुवर्णके समान महामनोज्ञ कांतिका धारक एक नंदिष्वेण नाम-का राजा भी रहता था । आहारकी अभिलाषासे घूमते हुए भगवान जिनेन्द्रको देख-

स्वहृस्तो कुडमलीकूत्य नत्या तच्चरणाम्बुजो । तिष्ठ तिष्ठेति संप्रोक्त्या स्थापयामास तत्क्षणे ॥७१॥
 अद्वादिगुणसंप्राप्तास्मै पात्रोत्तमाय सः । प्रतिगृहादिपुण्यार्जनहेतुनवसर्युतः ॥७२॥
 क्षीरान्लं मधुरं रम्यं ददी तृप्तिकरं परं । कृतादिरहितं भवत्या प्राप्तुं स्वानयशर्मद् ॥७३॥
 तदानेन च पुण्यं प्रोपाज्यै स्वं स्वं गृहाश्रमं । सफलं मन्यते राजा धनं च जीवितं परं ॥७४॥
 देवोऽथ भावयन्नित्यं संयमं च विरागता । ध्यानाध्यनमाकुरुन्निर्जनं स्थानमाध्यन् ॥७५॥
 निर्जनो विहरन् भूमि स विकम्य दिनानि षट् । छष्टस्येनागमत्प्राक्तनं दीक्षायहृणं धनं ॥७६॥
 तत्र ध्यानं समार्थव्यं सोऽशोकस्य तरोरधः । तदर्थी चितयेदादौ सिद्धानां सदगुणाष्टकं ॥७७॥

कर एवं हृवयमें यह विचार कर कि जिस प्रकार खजानेका मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—सामान्य भाग्यवालोंको वह नहीं प्राप्त हो सकता उसी प्रकार जब उत्तम पात्र मुनिका मिलना भी कठिन है तब महापात्र भगवान् तीर्थंकरका मिलना तो अत्यन्त कठिन है । हर एक समय हर एकको उनका मिलना नहीं प्राप्त हो सकता, भगवान्-को देखकर उसे बड़ा हृषि हुआ । दोनों हाथ जोड़ उनके चरण कामलोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं है प्रभो ! तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसा कह कर उसी क्षण उन्हें ठहराया ॥७०-७१॥ अद्वा सुष्ठि भक्ति आवि बाताके सात गुणोंसे भूषित एवं पुण्यको उत्पत्ति-के कारण पड़िगाहुत उच्चासन प्रदान करना प्रकाल पूजा आवि नवधा भक्तिसे विभूषित राजा नंदिष्ठेणने उत्तम पात्र भगवान् जिनेन्द्रके लिये क्षीरान्ल (खोर) का भक्तिपूर्वक आहार दिया जो दोषरहित, मधुर था, मनोहर था, तृप्तिका करनेवाला था, उत्कृष्ट था, प्रामुक था और अपना पराया कल्याण करनेवाला था ॥७२-७३॥ महापात्र भगवान् तीर्थंकरको दान देनेसे उत्पन्न हुए पुण्यको उपार्जन कर राजा नंदिष्ठेणने स्वयं भगवान् तीर्थंकरको आहारवान देनेसे अपने गृहाश्रमको सफल समझा एवं अपना धन और जीवन भी उसने सफल और उत्कृष्ट समझा ॥७४॥

वे भगवान् तीर्थंकर सदा संयम और वैराग्यकी भावनाका चिन्तवन करते थे, ध्यान और अध्ययनमें सदा प्रवृत्त रहते थे, जंगल खंडहर आदि निर्जन स्थानोंमें सदा उनका निवास स्थान रहता था ॥७५॥ पराक्रमके साथ निर्गंथ हो भूमिपर विहार करते फिरते थे । इस प्रकार छह दिन तक विहार कर वे भगवान् जहाँ पर दीक्षा दारण की यो उसी दीक्षावन इवेतवनमें आ गये ॥७६॥ इवेतवनमें आकर अशोक वृक्षके नीचे उन्होंने अच्छी तरह ध्यानका अवलम्बन किया । सम्यक्त्व ज्ञान चीर्य आवि जो सिद्धोंके आठ गुण कहे गये हैं उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे सबसे पहिले

तत्त्विक्तं स्थिरीकृत्य निःप्रमादो जितेन्द्रियः । धर्मध्यानं समुक्ताष्टं चतुर्भां व्याप्ति स्फुटं ॥७८॥
शिथिलीकृत्य कमीणं क्षपयित्वा च कानिचित् । तेन ध्यानेन चाहस्य श्रेणि क्षपकसंजिकां ॥७९॥
शिवधामनि निःश्रेणी वीतरागः स्थिराशयः । आद्यशुक्लासिना शीघ्रं जघान माद्यशाश्ववं ॥८०॥
रणरांगे तदा देवो महाभट इवाबभी । चारित्रसंगरे ध्यानतीक्ष्णलङ्घणे महातापाः ॥८१॥

उन्होंने सिद्धोंके आठ गुणोंका ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया ॥७७॥ उसके बाद परम जितेन्द्रिय और प्रमादरहित वे भगवान जिनेन्द्र चित्तको स्थिर कर उत्कृष्ट ध्यान धर्मध्यानके आज्ञाविचये आदि चारों पायोंका स्फुट रूपसे ध्यान करने लगे ॥७८॥ स्थिर चित्तके धारक वीतराग भगवान जिनेन्द्रने उस धर्मध्यानके बलसे बहुतसे कमों-को शिथिल कर डाला और बहुतसे कमोंको क्षय भी कर डाला एवं उस ध्यानके सम्बन्धसे मोक्षरूपी महूलमें जानेके लिये सीधी सीढ़ी स्वरूप क्षपकश्रेणीमें पदार्पण कर दिया एवं पृथक्त्व वितके^१ नामक प्रथम शुक्लध्यानके द्वारा मोहनीय कर्मकी इकलीस प्रकृतियोंका सर्वथा क्षय कर उसे सर्वथा उत्थानकर फेंक दिया ॥७९-८०॥ महापुढ़में शत्रुको मारकर सीक्षण सहगका धारक महाभट जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार चारित्ररूपी संथाममें ध्यानरूपी सीक्षण सहगके धारक महातपस्त्री

१. आज्ञाविचय २. क्षिपाकविचय ३. संस्थानविचय ४. इस प्रकार वे चार धर्मध्यानके पाये हैं । त्रुटिकी मंदतासे एवं यथार्थं उपदेश देवे वाले न होनेसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रणीत भागसे इस रूपसे अदान कर लेना कि भगवान जिनेन्द्रने जो कहा है वह यथार्थ है और वैषा ही है भगवान जिनेन्द्र नन्यथा प्ररूपण करनेवाले नहीं ही सकते इस प्रकारके विचारका नाम आज्ञाविचय है । मिथ्यावर्जनकी कृतासे लोगोंकी प्रवृत्तिमें स्वेच्छाधारका प्रचार हो गया है सन्मारणी विलकुल ही वे दूर भागते हैं इस प्रकार सन्मारणके अपाय (विनाश) का विचार करना अपायविचय है । ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि कमों-के फलोंका इत्य क्षेत्र काल भावके अनुसार विचार करता क्षिपाकविचय नामका तीसरा धर्मध्यान है एवं क्षोकके संस्थानका विचार करना संस्थानविचय नामका धर्मध्यान हैं ॥८॥ सातवें गुणस्थानकी अप्रमत्त संज्ञा है । निरतिशय अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्तके भेदसे वह दो प्रकारका है । जो हजारों बार छठेसे सातवेंमें और सातवेंसे छठेमें आवे वह निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है और जो जपक वा उपास कोई भी क्षेणी चढ़नेके सम्पुख हो वह सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है इस रूपसे सातवें गुणध्यानवाला क्षपक श्रेणी मादता है । क्षपकश्रेणीमें अनन्तानुबन्धीके चार क्षयायोंके सिवाय द्वारह क्षय और नो नोक्षयोंका क्षय किया जाता है । क्षपकश्रेणीके गुणस्थान आठवीं नवमी^२ वस्त्री और वाहवी इस प्रकार चार हैं । क्षपकश्रेणी वाला फिर महीं गिरता वह प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यानसे चारों वातिया कमोंका नष्टकर केवलज्ञान प्राप्तकर लेता है ।
२. पृथक्ख्यवितकविचार १. एकत्व वितकविचार २. सूइम क्रियाप्रतिपाती ३. और व्युपरतक्रियानिवृति ४. शुक्लध्यानके वे चार भेद हैं ।

पूर्वाह्नि कीषिके मासि कृष्णपक्षे मनोहरे । द्वितीयायां सुनक्षत्रे पुनर्बसुमामनि ॥८३॥
ततो द्वादशाकं (म) प्राप्य गुणस्थानं जिनाशणोः । शेषधातिशयं हृत्वा द्वितीयशुक्लयोगतः ॥८४॥
केवलावगमं प्राप्य लोकालोकविलोकनं । जगदाश्चर्यकतर्तरं तत्क्षणं मुक्तिदर्पणं ॥८५॥
स्वर्गं धटारथोज्योतिलोके सिंहध्वनिस्तदा । फणींद्रभवने शंखनादो ध्वंतरथामसु ॥८६॥
भेरीशब्दः पृथुध्वानश्चाभूतज्ञानसूचकः । अम्लात्कुसुमैश्चक्रः पुष्पवृष्टिं सुरदुमाः ॥८७॥
बबौ मसुगंधः सद्भूतिर्मला दिशः । विष्टरणि सुरेशानामासमैः प्रचक्षपिरे ॥८८॥
इत्पवलोक्य तदाश्चर्यं ज्ञात्वा तत्कवलोदगमं । उत्थाय स्वासनसनादिद्वाः प्रणमुस्ते जगदगुरुं ॥८९॥

भगवान जिनेन्द्र भी मोहरूपी मल्लको मारकर महाभटके समान अत्यन्त शोभित होने लगे ॥८१॥ पौष्टिकी द्वितीयाके दिन पूर्वाह्नि के समय जबकि पुनर्बसु नामके शुभ नक्षत्रका उदय था उन भगवान जिनेन्द्रने बारहवें गुणस्थानमें पवार्पण किया । बारहवें गुणस्थानका काल अंतमहूहतं और बहांपर एकत्ववितर्कं विचार नामका दूसरा शुक्ल-ध्यान प्रगट होता है इसलिये बारहवें गुणस्थानमें एकत्ववितर्कं विचार नामक दूसरे शुक्लध्यानकी कृपासे मोहनोय कर्मके सिवाय बाकीके कर्म—अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन धातिया कर्मोंका भी सर्वथा नाश कर दिया । बस ! चारों धातिया कर्मोंके सर्वथा नाशसे उन तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेन्द्रके समस्त लोक और अलोकके चर अचर पदार्थोंके साक्षात् प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्रगट हो गया जो कि अपने स्वरूपसे समस्त जगतको आश्चर्यं करनेवाला था और जिस क्षणमें उत्पन्न हुआ था उसी क्षणमें मुक्तिके लिये दर्पण स्वरूप था अर्थात् जिस प्रकार दर्पणमें मुक्तिका स्वरूप साक्षात् प्रतिभाषित होता है उसी तरह वस्तुका स्वरूप साक्षात् उसके अन्दर प्रतिभाषित होता था ॥८२-८४॥

भगवान जिनेन्द्रको केवलज्ञानकी प्राप्ति होते ही उसके माहात्म्यसे स्वर्गोंके अन्दर घटे अपने आप बजने लगे । ज्योतिषी देवोंके भवनोंमें शंखध्वनि होने लगी, भवनवासी देवोंके भवनोंके अन्दर शंखनाद होने लगा एवं अन्तरनिकायके देवोंके भवनोंमें भेरियोंका उन्नत शब्द होने लगा जिससे भगवानके केवलज्ञानको सूचना हो गई । उस समय कल्पवृक्षोंसे नदीन ताजे फूलोंकी चृष्टि होने लगी । शीतल मंद सुगंध पवन बहने लगी । समस्त दिशाये निर्मल हो गई एवं वैमानिक देवोंके आसन चल विचल हो उठे ॥८५-८७॥ इस प्रकारके अनेक आश्चर्योंको देखकर इन्द्रोंने यह निष्ठय कर लिया कि भगवान जिनेन्द्रको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है । वे शीघ्र ही

ततः सौधर्मकल्पेशस्तस्कीवल्यमहोत्सव । कर्तुं व्यधान्मर्ति तद्वृत्यवं चैद्रा व्यधुस्तरां ॥८९॥
 तदा बलाहको देवो विमानं कामकाह्वयं । लक्षयोजनविस्तीर्णं मुक्तास्त्रभूषितं व्याधात् ॥९०॥
 लक्षयोजनशद्वृत्तकाय घटार्खांकितं । किंकणोनामरोपेतं कामगं वद्वृभूषितं ॥९१॥
 इवेतमेरावनार्थं सदगतं दर्श व्रभास्वरं । नागदत्ताभियोग्येशचक्रेष्ट्यत्यन्तमुन्दरं ॥९२॥
 द्वार्त्रिशत्सन्मुखान्यस्य मुखं प्रति रुदाष्टकं । प्रतिदल्तं सरोह्यैकमञ्जिन्येका सरः प्रति ॥९३॥
 अद्विजनोप्रति सादुश्याद्द्वार्त्रिशत्सकमलाः पृथक् । कमलं प्रति पत्राणि द्वार्त्रिगत्प्रमितान्यपि ॥९४॥
 एककस्मिन् सुपत्रे नर्तकयो द्वार्त्रिशदेव हि । नृत्यति लीलया ह्रावैभविः शृंगारखानयः ॥९५॥
 इत्पादिवर्णनोपेतं तमारुह्य गजाधिपं । मिश्चकामदिरुपेशो जिनेन्द्रपूजनायसः ॥९६॥
 स्वस्ववाहनमारुहा देवाः सामानिकातयः । स्वस्वभूत्यामुदा शक दशघा परिवक्षिरे ॥९७॥

अपने-अपने आसनोंसे उठे । एवं तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥८८॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने भगवान महिलनाथका केवलज्ञान महोत्सव करनेके लिये तैयारियां कों एवं जिस प्रकार सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने तैयारियां कीं उसी प्रकार जितने भी इन्द्र भगवान महिलनाथके केवलज्ञान महोत्सवमें आने वाले थे सबोंने तैयारियां करनी प्रारम्भ कर दीं ॥८९॥ भगवानके केवलज्ञान महोत्सवमें जाते समय बलाहक नामक देवने कामक नामके विमानको रचना की । जो विमान एक लाख योजन चौड़ा था और महामनोज्ज मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान था ॥९०॥ अत्यन्त चतुर नागदत्त नामके आभियोग्य जातिके देवने उस समय ऐरावत हाथी की रचना की जो कि लाख योजन प्रमाण अत्यन्त सुडौल शरीरका धारक था । बजते हुए घंटाके शब्दसे अत्यन्त शोभायमान था । छोटी छोटी घंटियां और चामरोंसे अलंकृत था । विक्रियासे इच्छापूर्वक रचा गया था । बड़े ठाठ बाटसे सजाया गया था । महामनोहर और इवेतवर्णका था ॥९१-९२॥ इस ऐरावत हाथीके मुख बत्तीस थे, हर एक मुखमें आठ-आठ दाँत थे, हर एक दाँतपर एक एक सरोवर विद्यमान था । हर एक सरोवरमें एक एक कमलिनी थी (कमलोंकी बेल थी) प्रत्येक कमलिनीमें बत्तीस बत्तीस कमल थे । हर एक कमलके बत्तीस बत्तीस पत्ते थे । प्रत्येक पत्तेमें नाचनेवाली बत्तीस बत्तीस देवियां थीं जो कि पूर्ण शृंगारसे शोभायमान थीं और लीलापूर्वक बड़े हाथ भावोंके साथ नृत्य करती थीं ॥९३-९५॥ इस प्रकारके बत्तीस वर्णनोंके धारक उस ऐरावत हाथोपर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र सवार हो गया एवं भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये चल विया ॥९६॥ भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये

ऐशानेन्द्रादयः सर्वे इन्द्रः स्ववाहनाश्रिताः । शेषा निकायजा शकः स्वस्वभूत्या च नियैयुः ॥९८॥
 पूरयंतो दिशः सर्वा जयनंदादिवोषणैः । वायोघेद्योतयं तश्च नभोऽग्रभूषणांशुभिः ॥९९॥
 सांगण छादयतः सद्विमानवाहनादिभिः । महोत्सवशतैः सार्धमाजग्मु भूतलं सुराः ॥१००॥
 दद्युद्युलकिनो हृष्टा । विश्वोरास्पदामग्डिलं । ऐशान्युदनिभ दूराद्यज्ञराद् शिल्पनिर्मितं ॥१०१॥
 करोमि वर्णनं किञ्चिदस्य प्रीतयै सतां मुदा । निरौपम्यस्य विश्वदिसंलकुस्य समाप्तः ॥१०२॥
 योजनत्रिकविस्तोर्णमिद्वनीलमणिप्रभं । वृत्तं पीठं व्यधादादादस्थानस्य जिनेशिनः ॥१०३॥

इन्द्रको इस प्रकार तैयार देखकर सामानिक आदि देव भी अपने अपने वाहनोंपर सवार हो गये एवं अपनी विभूतिके साथ आरों औरसे इन्द्रको बेष्टित कर बड़े हृष्टसे लड़े हो गये ॥९७॥ ऐशान इन्द्रको आदि लेकर अन्य स्वर्गोंके इन्द्र अपने अपने वाहनोंपर सवार हो गये तथा अपनी अपनी विभूतिके साथ ज्योतिषी आदि निकायोंके इन्द्र भी अपने अपने भवनोंसे निकल पड़े । जिस समय आरों निकायोंके देवेन्द्र भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये निकल पड़े उस समय है देव ! आप जयवंते रहें नावें और विरदें हत्यादि उनके कोलाहलोंसे और अनेक प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें व्याप्त हो गई थीं । शारीरोंपर पहिने हुए भूषणोंकी काँसिसे समस्त आकाश जगमगा उठा था एवं उत्तमोत्तम विमान और वाहन आविसे सारा आकाश ढका सरोखा जान पड़ता था । इस प्रकार सैकड़ों महोत्सवोंके साथ वे देव जिस वनमें भगवान महिलनाथको केवलज्ञान हुआ था उस वनकी भूमिपर आकर पहुँच गए ॥९९-१००॥ शिल्पकलामें पूर्ण चातुर्य रखनेवाला कुवेर पहिले ही इन्द्रकी आशासे वहाँ पहुँच चुका था और उसने बड़ी सुन्दरताके साथ समवसरणकी रचना कर रखी थी । जिस समय देवेन्द्रगण भूमिपर उतरे साक्षात् तेजोंका पुंज स्वरूप दूरसे ही उन्होंने भगवान जिनेन्द्रका समवशरण देखा और अत्यन्त हृष्ट प्रकृट करने लगे ॥१०१॥ समवसरणकी रचना सज्जनोंको परमानन्द प्रदान करनेवाली होती है अनुपम और समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त रहती है इसलिये सज्जन पुरुषोंको आनंदित करनेके लिये उस अनुपम समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त समवसरणका मैं (ग्रन्थकार) संक्षेप वर्णन करता हूँ—

जिस भूमिपर भगवान जिनेन्द्रका समवसरण रचा गया था उस भूमिका विस्तार तीन योजन प्रमाण था वह इन्द्रनील मणिके समान काँतिको धारक और

तस्य पर्यंतभूभागमलं चक्रं महाशुतिः । धूलीशालपरिक्षेपो रत्नपूर्णमयो महात् ॥१०४॥
 अतुदिवस्य विस्तीर्णो हेमस्तंभाग्यलविताः । तीरणा मकरा (?) स्फोटरत्नमाला विरेजिरे ॥१०५॥
 ततोऽज्ञयांतरं किञ्चिदगत्वा हेममयोन्तताः । अधोमध्यजिनाच्याँगा अवज्ञानादिभूषिताः ॥१०६॥
 अतुर्गोद्युरसंबद्धशालत्रितयवेष्टिताः । रेजुमध्येषु बीधोनां मानस्तंभा मनोहराः ॥१०७॥
 स्तंभपर्यंतभूभागमलचक्रदिशं प्रति । चतस्नो मणिसोपाना वाष्पो नन्दोत्तरादिकः ॥१०८॥
 ततः स्तोकांतरं गत्वा परिवद्रेष्वुखातिका । लो महीं स्वच्छनोराढ्या वातोत्पत्रोमिसकुला ॥१०९॥
 तदभ्यंतरभूभागं प्रवेष्टयाभूललतावनं । सत्कोडाद्रिलतागेहं सर्वंतुकुमुमांचित ॥११०॥
 स्तोकांतरं ततोऽतीत्य मुक्तादामादिमहितः । प्राकारः प्रथमो वग्रे महातुंगो हिरण्यमयः ॥१११॥
 महांति गोपुराण्यस्य संबभुदिक्चतुष्टये । राजतानि श्रिभूगानि शृंगाणीव महागिरेः ॥११२॥

गोलाकार थी ॥१०२-१०३॥ कांतिसे जागवल्यमान उस पृथ्वीका पर्यंत भाग धूली-शाल [परकोट] से चारों ओरसे वेष्टित था जो धूलीशाल रत्नमयी था और विशाल था ॥१०४॥ धूलीशालकी चारों दिशाओंमें सुवर्णमयी स्तम्भोंके अग्रभागमें बहुत बड़े मनोहर तोरण शीताकारी और रत्नोंकी मालाएँ लटक रही थीं जिनसे उन स्तम्भोंकी अद्वितीय शोभा दीख पड़ती थी ॥१०५॥ कुछ फासलापर उस भूमिके भीतर जाकर गलियोंके मध्यभागमें मानस्तम्भ विद्यमान थे जो कि सुवर्णमयी थे । नीचे भाग और बीच भागमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंके रहनेके कारण पूज्य और पवित्र थे, अवजा और छत्र आविसे शोभायमान थे जिनके अन्दर चार चार विशाल गोपुर [सदर दरवाजे] विद्यमान हैं ऐसे तीन प्रकारोंसे वेष्टित थे और महामनोहर जान पड़ते थे ॥१०६-१०७॥ स्तम्भोंके पर्यंतके भूमि भागोंपर प्रत्येक दिशामें चार वापियाँ थीं जो कि मणिमयी सीढ़ियोंसे शोभायमान थीं और नन्दा नन्दोत्तरा आदि उनके शुभ नाम थे ॥१०८॥ मानस्तम्भोंको जगहसे थोड़ी दूर जाकर मानस्तम्भोंकी भूमि भी चारों ओरसे बेढ़कर रखनेवाली एक विस्तीर्ण लाई थी जो कि अत्यन्त निर्मल जलसे भरी हुई थी एवं पवन वेगसे उत्पन्न होनेवाली चंचल तरंगोंसे व्याप्त थी । लाईके मध्यभागकी भूमिको बेढ़कर रखनेवाला एक आच्छवन था जो कि महामनोहर कीड़ा पर्वत और लता मंडपोंसे युक्त था और समस्त श्रुतुओंमें होनेवाले महामनोहर पुष्पोंसे शोभायमान था ॥१०९-११०॥ आच्छवनसे कुछ दूर पर सबसे पहिला विशाल प्राकार था जो कि मुक्तामाला आदिसे भूषित था, अत्यन्त उन्नत या और सुवर्णमयी था ॥१११॥ इस प्रकारकी चारों दिशाओंमें चार सदर दरवाजे थे जो कि आंदोलके बने

प्रत्येकं गोपुरेष्वेवं मंगलद्रव्यभूनयः । शतमष्टीत्तरं भाँति भूगारकलक्षादिकाः ॥११३॥
 प्रस्थेकतोऽणास्तेषु शतसंख्या विभासिरे । रत्नाभरणयुक्ताइच तदद्वारे निधयो नव ॥११४॥
 तेषांसतर्महावीथेष्वभ्योः पार्वत्योऽभूत । नाट्यशालाद्वयं रत्नस्तभभूमित्रयान्वितं ॥११५॥
 ततो धूपघटो छो छो वीथीनामुभयोदिशोः । तत्र बीध्यतेरेष्वासीद्वभ्यं बन्चतुष्टयं ॥११६॥
 सर्वतुंफलपुष्पाद्वयं गृहवाप्यादिशोभितं । अशोकं सप्तपण्ठियं चांपकाम्रवनद्वयं ॥११७॥
 अशोकादिवनेषु स्युरशीक्राद्या द्रुमाः पराः । श्रिमेखलानि पोठानि हैमानि समधिष्ठिताः ॥११८॥
 मालावस्त्रमयूरावजहंसबोनमृगेशिनां । बृषहस्तीद्रचक्राणां दशधा स्युर्ध्वजाः पराः ॥११९॥
 अष्टोत्तरसातं ज्ञेया प्रस्थेकं पालिकेतवः । एकैकस्यां दिशि प्रोक्ता मोहमलजयोर्जिताः ॥१२०॥
 दिक्षेकस्यां ध्वजा भवाः सहस्रं स्युरशीतियुक्तः । चतुर्विद्धु च शून्यद्वित्रिचतुःसंलयका ध्वजाः ॥१२१॥

हुए थे । तीन तीन खनोंके थे एवं विशाल पर्वतकी शिखर सरीखे जान पड़ते थे ॥११२॥ हर एक सदर दरवाजेके अन्दर झाड़ी कलश आदि मंगलीक द्रव्य एक सौ आठ आठ शोभायमान थे ॥११३॥ हर एक दरवाजेपर सौ सौ तोरण लटक रहे थे जो कि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे । उन द्वारोंके भीतर रत्नमयी आभरणोंसे युक्त नौ निधियें जगमगा रहे थीं ॥११४॥ गोपुरोंके भीतर जाकर एक विशाल गली थी और उस गलीके दोनों पसवाड़ोंमें दो नाट्यशालायें थीं जो कि रत्नमयी स्तम्भोंसे शोभायमान थीं और तिखनी बनी हुई थीं ॥११५॥ उन महावीथियों की दोनों विशाओंमें दो दो धूपघट विद्यमान थे तथा उनसे आगे गलियोंमें चार मनोहर बन थे जो कि सब ऋतुओंमें होनेवाले फल और पुष्पोंसे शोभायमान थे । लक्षा गृह कापी आदिसे महामनोहर जान पड़ते थे एवं अशोकवन १ सप्तपण्ठवन २ चम्पकवन ३ और आञ्जवन ४ थे उन बनोंके चार मनोहर नाम थे ॥११६-१७॥ अशोक आदि चारों बनोंमेंसे अशोकवनके अन्दर बहुतायतसे अशोकवृक्ष थे । सप्तपण्ठवनमें सप्तपण्ठ जातिके वृक्ष थे । चम्पकवनमें चम्पाके वृक्ष और आञ्जवनमें महामनोहर आञ्ज वृक्ष विद्यमान थे और वे समस्त वृक्ष, सुवर्णमधी तीन कटनीवाले पीठों (थामरों) से शोभायमान थे ॥११८॥ माला १ मगर, २ मयूर, ३ कमल, ४ हंस, ५ बीत-गरुड, ६ सिंह, ७ बैल, ८ गज, ९ और चक्र १० इस प्रकार उत्कृष्ट ध्वजायें वश प्रकारकी मानी हैं ॥११९॥ मोहरुपी महलके जीतनेसे उन्नत पालि ध्वजायें (प्रधान ध्वजायें) एक एक दिवामें एक एकसी आठ थीं तथा सामान्य रूपसे एक एक दिवामें समस्त ध्वजायें एक हजार अस्सी अस्सी थीं उन्हें शिलकर आर हजार तीनसी बोस

अन्तर्भुमि ततः शालोऽभद्रोऽपुरादिमङ्गिः । तीरणादियुतः प्रावक्तव्यितीयो योज्जुनो महान् ॥१२३॥
 अत्रापि पूर्ववज्ञेयं नाट्यशालाद्वयं महत् । तद्वत्द्रूपघटवन्द्व धूपधूमास्तदिक्षुलं ॥१२४॥
 ततो वीथ्यतरेष्वासोदूवनं कल्पमहीरुहां । नानारत्नप्रभोत्सर्पद्वचांतं मनोहरं ॥१२५॥
 चतुर्श्चेष्यद्रमास्तत्राशोकाङ्गाः स्युः प्रभाष्वगाः । अधोभागेजिना च्याल्या सपोठादछत्रशोभिताः ॥१२६॥
 ततो वस्त्रो वनानां हि पर्यंते वनवेदिका । मंगलद्रव्यभूषाद्वयेचतुभिर्गोपुरैः परैः ॥१२७॥
 ततः परां महीं रत्नपीठस्तंभाग्नविताः । अलंचक्रः शुभास्तुंगा विविधा ध्वजपक्तयः ॥१२८॥
 प्राकाराद्वचेत्यवृक्षाहच केतवो वनवेदिकाः । स्तूपाः सतीरणाः स्तंभा मानस्तंभाइच तेऽखिलाः ॥१२९॥
 प्रोक्तास्तीर्थकरोत्सेष्वादुत्सेषेन द्विषड्गुणाः । देव्यनिरुपमेतेषां रोञ्च्यामाहुर्गणाधिपाः ॥१३०॥

४३२० थो ॥१२०-१२१॥

चारों वनोंके भीतर जाकर पुनः एक दूसरा प्राकार था जो कि पहिले प्राकारके समान ही चार सबर दरवाजोंसे युक्त था । जिस प्रकार पहिले प्राकारमें तोरण आविकी विभूति बतलाई गई है उसी प्रकारकी विभूतिसे युक्त या चाँचीके बर्णका और विशाल था । इस प्राकारके भी दोनों पसवाड़ोंमें पहिले प्राकारके पसवाड़ोंके समान दो नाट्यशालायें थीं एवं धूपसे जायमान धुआंसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले दो धूपघड़े विद्यमान थे । धूपघड़ोंके आगे दूसरी वीथीमें कल्पवृक्षोंका एक विशाल वन था जो कि फैली हुई उपरत्नोंकी प्रभासे समस्त अन्धकारका नाश करनेवाला और मनोहर था ॥१२२-१२४॥ उस कल्पवृक्षोंके वनके अंदर अशोक आवि चार चैत्यवृक्ष थे जो कि अपनी महामनोहर कांतिसे अत्यन्त देवीथमान थे । उनके नीचेके भागमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमायें थीं एवं वे वृक्ष मय सिहासन और उत्त्रोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभायमान थे ॥१२५॥ उन अशोक आवि वृक्षोंसे परिपूर्ण वनोंके पर्यंत भागमें एक वनवेदी थी जो कि कलश झाड़ी आदि मंगलीक प्रथ्योंसे परिपूर्ण परमोत्तम चार सबर दरवाजोंसे शोभायमान थी ॥१२६॥ उससे आगेकी भूमिमें नाना प्रकारके रत्नमयी चबूतरोंके धारक स्तम्भोंके अग्रभागमें नाना प्रकारकी घजायें फहरा रही थीं जो कि अत्यन्त शुभ थीं और बहुत ऊँची ऊँची थीं जिनसे कि वह भूमि अत्यंत शोभायमान जान पड़ती थीं ॥१२७॥ समोक्षणके अंदर रहनेवाले प्राकार चैत्यवृक्ष, घजायें, वन वेदियां, स्तूप, तीरणोंसे अलंकृत स्तंभ और मानस्तंभ इन सबकी ऊँचाई तीर्थकरोंको ऊँचाईसे तारह गुणी अधिक होती है अर्थात् जिस तीर्थकरका समोक्षण होता उस तीर्थकरके शरीरकी जितनी ऊँचाई होगी उस

(?) क्रीड़ादीणां च गेहानां वनानां च जिनाश्मे । तुंगत्वं एकमे दे बोकर्त दक्षेरागमवेदिभिः ॥१३०॥
 अचलानां भवेद्रौढधे स्वैत्सेषादष्टसंगुणं । स्तूपानां किळ विस्तार मुच्छायात्साधिकं मतं ॥१३१॥
 उष्णति वेदिकादीना स्वैत्सेषस्य चतुर्थकं । विस्तारं सुपुराणाङ्गाः सर्वगमाबिध्पारगाः ॥१३२॥
 ततोऽभ्यंतरभूमागे नानाप्रसादयैकतयः । द्वित्रिचेतुस्तला रम्यास्तुंगा रत्नमया वभुः ॥१३३॥
 वीथीनां मध्यभागे तु नवस्तूपाः समुद्धयुः । पद्मरागमयाः सिद्धजिनविबांद्यलंकृताः ॥१३४॥
 स्तूपानामतेरेषवेषां रत्नलोरणमालिकाः । वभुरिद्रधनुर्मय्य इवोद्योतितखांगणाः ॥१३५॥
 ततः प्रोल्लध्य तां भूमि शुद्धस्फाटिकरत्नजः । नभः स्फाटिकशालोऽस्ति श्वेतिताखिलदिक्वयः ॥१३६॥
 अस्यापि पूर्ववदिक्षु गोपुराणि विभाति च । पद्मरागमयान्येव निधिमंगलसंपदा ॥१३७॥

ऊंचाईसे समवसरणके अन्दर रहनेवाले परकोट आदिकी ऊंचाई नियमसे बारह गुणी होगी । तथा जितनी ऊंचाई होती है उसीके अनुकूल उनकी चौड़ाई होती है । यह समवसरण उन्नीसवें तीर्थकर भगवान् मलिलनाथका या इसलिये उनके शरीरकी जितनी ऊंचाई थी उससे बारह गुणी इस समवसरणके प्राकार आदिकी ऊंचाई थी और ऊंचाईके अनुकूल चौड़ाई थी ॥१२९॥ क्रीड़ा पर्वत लतागृह और बनोकी ऊंचाई आगमके जानकार पुरुषोंने आगममें एकसी ही बताई है ॥१३०॥ पुराणोंके जानकार समस्त आगमके पारगामियोंने पर्वतोंकी चौड़ाई अपनी अपनी ऊंचाईकी अपेक्षा आठ आठ गुणी मानी है । स्तूपोंको जो ऊंचाई कही गई है उससे कुछ अधिक उनकी चौड़ाई मानी है तथा बनवेदी आदिका विस्तार उनकी ऊंचाईसे चौथा भाग माना है ॥१३१-१३२॥

बनवेदियोंके भीतरकी भूमिमें प्रासादोंकी पंक्तियां थीं जो कि दोखन तीन खन और चार खनबालीं थीं । महा मनोहर ऊंची ऊंची और रत्नमयी थीं ॥१३३॥ गलियोंके मध्य भागमें नी स्तूप थे जो कि पद्मराग मणिमयी थे एवं सिद्ध भगवान्की प्रतिमाओंसे अलंकृत थे ॥१३४॥ स्तूपोंके मध्य भागोंमें रत्नमयी तोरण और मालिका थीं जिन्होंने कि अपनी काँसिसे समस्त आकाशको ध्याप्त कर रक्खा था । अतएव जो इन्द्र धनुषमयी सरोखी जान पड़तीं थीं ॥१३५॥ स्तूपोंको भूमिके बाब एक स्फटिक-मयी परकोटा था जो कि शुद्ध स्फटिक रत्नका शना हुआ था एवं अपनी प्रभासे समस्त दिशाओंको सफेद करनेवाला था अतएव जो आकाशका बना हुआ सरीखा जान पड़ता था ॥१३६॥ इस स्फटिकमयी परकोटकी भो चारों दिशाओंमें पहिलेके समान चार सदर दरवाजे थे जो कि अस्यन्त शोभायमान थे । वे दरवाजे पद्मराग

गदादिपाणयस्तेषु गोपुरेष्वभवन् सुराः । शालक्ये क्रमाद्वस्या भीमभावतनाकञ्जाः ॥१३८॥
 मध्याद्यपीठसंलग्नाः शालीना स्फाटिकोऽद्वाः । भित्तयः षोडशा भाँति महावीर्यंतराश्रिताः ॥१३९॥
 तासामुपरि विस्तीर्णे महान् श्रीमङ्गलोऽभवतः । रत्नस्त षोद्वतः शुद्धनभःस्फाटिकनिर्मितः ॥१४०॥
 तद्वृक्षेत्रमध्येऽमात्रथमा पीठिका शुभा । वैद्यूर्यरत्ननिर्माणा मंगलद्वयभूतिभिः ॥१४१॥
 धर्मचक्राणि बोढानि दीप्राणि यक्षमस्तकैः । सहस्रराणि तस्यां वा भानुविवानि रेखिरे ॥१४२॥
 तत्र षोडश सोपानपद्याः स्यु षोडशांतराः । चतुर्दिशु सभाकोष्ठप्रवेशेषु च निर्मलाः ॥१४३॥
 तस्योपरि भवेत्पीठ द्वितीयं सुहिरण्यमयं । भूषित दिक्षु, अष्टासु चक्रेभाद्यष्टधाघवजे ॥१४४॥
 स्फुरन्मणिमयं पीठं तस्योपरि तृतीयकं । त्रिमेत्वल व्यभातुंग तेजसा व्याप्तिदिगुसं ॥१४५॥

मणियोंसे बने हुए थे एवं पहिले प्राकारोंके दरवाजोंके समान ही निधियों और कलश शाढ़ी आदि मंगलीक द्रव्योंसे युक्त थे ॥१३७॥ सदर दरवाजोंपर गदा आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए देव थे उनमें भी पहिले परकोटके दरवाजोंपर हाथोंमें शस्त्र लिये व्यंसर देव लड़े थे । दूसरे परकोटके दरवाजोंपर भवनवासी लेह थे एवं तीसरे परकोटके सदर दरवाजोंपर देव हाथमें हथियारोंको लिये द्वारपालोंका कार्य कर रहे थे ॥१३८॥ समवसरणकी भूमिके मध्य और आदिके भागसे सटी हुई परकोटोंके अन्ततक सोलह भीतियां थीं जो कि स्फटिक रत्नोंकी बनी थीं और विशाल गलियोंके अन्तरालोंमें विद्यमान थीं ॥१३९॥ उन स्फटिक मणिमयी भीतोंके ऊपर विशाल श्रीमङ्गल बना हुआ था जो कि विस्तृत था । रत्नमयी स्तम्भोंसे वेष्टित था और निर्मल स्फटिक पाषाणका बना हुआ था अतएव साक्षात् आकाशका बना हुआ जान पड़ता था ॥१४०॥ श्रीमङ्गलसे जितना क्षेत्र रुका हुआ था उस क्षेत्रके ठीक मध्यभाग में पहिली पीठिका (पीठ) थो जो कि वैद्यूर्यजातिकी हरी मणियोंसे बनी थी, अत्यंत शुभ थी एवं मंगलीक द्रव्य और अन्य विभूतियोंसे शोभायमान थीं ॥१४१॥ इस पीठिकाके अन्दर धर्मचक्र विद्यमान थे जिन्हें यक्षगण अपने मस्तकोंपर रखले थे, महा देवीप्यमान थे हजार हजार अराओंके धारक थे एवं सूर्यके प्रतिर्विवें सरीखे जान पड़ते थे ॥१४२॥ उसी जगहपर सोलह फासलोंसे व्याप्त सोलह सोपान मार्ति (जीने) थे जिनसे कि चारों दिशाओंमें विद्यमान कोठोंके अन्दर प्रवेश किया जाता था ॥१४३॥

उस प्रथम पीठके ऊपर दूसरा पीठ था जो कि सुवर्णमयी था एवं आठों दिशाओंमें चक्र और हाथी आदिके चिह्नोंके धारक आठ ध्वजाओंसे शोभायमान था ॥१४४॥ इस दूसरे पीठके ऊपर तीसरा पीठ था जो कि देवीप्यमान मणियोंका

तत्र गंधकुटीपृष्ठी सुगंधीकृतद्विषुवा । दिव्यामोदा पर भाति पुष्पप्रकरच्छिता ॥१४६॥
 सम्या मध्ये स्फुरन्नानारत्नाभाद्योतितांबर । तुंगं सिहासनं दिव्यं मेहशंगमिवावभौ ॥१४७॥
 विष्ट तदलंचके दिव्यरूपी जगदगुरुः । चतुभिरुगुलेः स्वेन महिमाऽस्पृष्टतत्त्वः ॥१४८॥
 आद्ये कोष्ठे मुनीद्वैषा द्वितीये कल्पयोषितः । तूलीये क्षांतिकाः स्त्रियस्तुवै ज्योतिषां दिव्यः ॥१४९॥
 पञ्चमेऽस्त्रिलघ्यतयैः षष्ठिऽष्ठ भावनागनाः । सप्तमे भावना देवा अष्टमे व्यंतरामगः ॥१५०॥
 नवमे सवउयोतिष्का दशमे कल्पवासिनः । तथेकादशके(मे)मत्या अंतिमे पश्चोऽखिलाः ॥१५१॥
 एवं द्विष्टपुणःसांप्रत्ययं परीत्य गतिहाः । तत्सत्मुखाः स्थितिं चक्रुद्यमामृतपिपासिताः ॥१५२॥

बना हुआ था, तीन कटिनियोंसे शोभायमान था, उन्नत था और उसकी प्रचंड कांतिसे समस्त विशायें जगमगाती थीं ॥१४५॥ इस तूलीय पीठपर गंधकुटी थी जो कि अपनी उत्कट सुर्गधिसे समरत विशाओंको सुर्गाधित करनेवाली थी, दिव्य सुर्गाधिकी धारक थी, उत्कृष्ट थी एवं भांति भानिके पुष्पोंके समूहसे व्याप थी ॥१४६॥ इस गंधकुटीके मध्य भागमें महा भनोहर सिहासन विद्यमान था जो कि देवीप्यमान नाना प्रकारके रत्नोंकी प्रभासे समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाला था, दिव्य था एवं मेहका शिखर सरोखा जान पड़ता था । असएव वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥१४७॥ इसी पवित्र सिहासनको^१ दिव्य रूपके धारक तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रने सुशोभित कर रखला था और वे अपने अलौकिक माहात्म्यसे उसके तल भागका स्पर्श न कर चार अंगूल प्रमाण आकाशमें विराजते थे ॥१४८॥ इस दिव्य सिहासनके चारों ओर देव आदिके बैठनेके बारह कोठे थे उनमेंसे पहिले कोठेमें भुनिगण विराजते थे, दूसरेमें कलशासो स्त्रियां, तीसरेमें आर्यिकायें, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवांगनायें, पाँचवेंमें व्यन्तर देवोंकी देवियां, छठेमें भवनवासी देवोंकी देवांगनायें, सातवेंमें भवनवासी देव, आठवेंमें व्यन्तर देव, नौवेंमें समस्त ज्योतिषी देव, दशवेंमें वैमानिक देव, यारहवेंमें मनुष्य और बारहवेंमें तियंच बैठे थे ॥१४९-१५१॥ इस प्रकार भगवान मल्लिनाथको चारों ओरसे घेरकर ये चारह कोठोंमें बैठनेवाले अतिशय भक्ति रखनेवाले जीव धर्मरूपो अमृतके शीनेली इच्छासे उनके सम्मुख स्थित हो गए ॥१५२॥

१. समवसरणका वर्णन हरिवंशागुराणमें भगवान नेपिनाथके समवसरणकी रचनाके समय विस्तारसे किया गया है ।

२. अशोकवृक्षः सुरपुण्ड्रविष्टद्विव्यष्टविश्वामरमासनं च । भासंडल षुडुभिरातपत्रं सत्यातिहार्याणि जिमेश्वराणि ।

इत्युक्तैश्च गणेविभूतिविविधे: सत्प्रातिहार्याष्टकेदिव्यैः केवलनिधिभिश्च नवभिः संभूषितं कामदं । तीर्थेण गुणसागरं निरुपमं दिव्यासने संस्थितं, देवारतं ददुशः प्रविश्व सुसभां भक्त्या स्फुरच्चक्षुषणः ॥१५३॥ भूष्टस्तं त्रिजगदगुहं गुणनिधि, विश्वद्विधमिकरं भक्त्या देवगणः परीत्य सकला वारत्रयं वासवाः ॥ देवोभिः सह कुड्मलीकृतकराङ्गचूडामणिद्योतिना, मूढना तदगुणराजताइव परमा भूत्या प्रणेमुस्तराः ॥१५४

असमगुणसमुद्रो विश्वतत्त्वप्रदोषो रहितपकलदीषो धातिकमारिहंता ।

त्रिभूवनपतिभव्यैः: सेवितो वंदितश्च तदसमविभवाप्त्यै सोऽस्तु मे मल्लनाथः ॥१५५॥

इति श्रीमल्लनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लनाथनिष्कमणकेवलोत्पत्ति-
वर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥६॥

आनंदसे फुरफुराते हुए नेत्रोंके धारक देवोंने जिस समय समवसरणके मंडप-
में प्रवेश किया उस समय भगवान जिनेन्द्रको देखा । वे भगवान उस समय बारह
कोठोंमें बैठनेवाले प्राणीगणोंसे शोभायमान थे अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे व्याप्त थे ।
अशोकबृक्षका होना १ रत्नमयी सिंहासन २ भगवानके शिरपर तीन उत्रोंका फिरना
३ भगवानके पीछे भासंडलका होना ४ भगवानके मुखसे निरक्षरी दिव्यध्वनिका लिरना
५ देवोंके द्वारा पुष्पवृद्धिहा होना ६ यज्ञ देवोंके द्वारा चौमठ चमरोंका दुरता ७ और
८ हुन्तुभी बाजोंका बजना इस प्रकार आठ प्रातिहायोंसे शोभायमान थे । क्षायिकज्ञान १
क्षायिकदर्शन २ क्षायिकदान ३ क्षायिकत्ताभ ४ क्षायिकभोग ५ क्षायिक उपभोग ६
क्षायिकदीर्घ ७ क्षायिकसम्यक्त्व ८ और क्षायिकचारित्र ९ इस प्रकार नौ केवललविधयोंसे
भूषित थे । समस्त प्रकारको दाँछाझोंको पूरण करनेवाले थे, संसारके दुःखोंसे तारने-
वाले तीर्थके स्वामी थे, सम्यक्त्व आदि गुणोंके समुद्र थे, उपमातीत थे एवं दिव्य आसन
पर विराजमान थे ॥१५३॥ उसके बाद तोनों लोकके गुरु, गुणोंके खजाने समस्त
प्रकारको ऋद्धियां और धर्मके स्थान भगवान जिनेन्द्रको समस्त इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक अपने
सहचारी देव और देवांगनाओंके साथ तीन प्रदक्षिणा दों एवं गुणोंमें अनुरक्त हो सबों
ने अपने-अपने ह्राथोंको जोड़कर चूडामणियोंसे जगमगानेवाले मस्तकोंसे भक्तिपूर्वक
नमस्कार किया ॥१५४॥ इस प्रकार समस्त अनुपम गुणोंके समुद्र समस्त तत्वोंके
प्रकाश करनेवाले, समस्त बोषोंसे रहित, ज्ञानावरण आदि धातिया कर्मरूपों द्वारियों-
के नाशक, मोक्षाभिलाषी तोनों लोकके इन्द्रोंसे सेवित और वंदित वे भगवान अपने
समान असाधारण ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करे ॥१५५॥

इस प्रकार भट्टारक मकलकीर्ति द्वारा विरचित गंस्कृत मल्लनाथ चरित्रको पं० गजाधरलालजो
त्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लनाथका दीक्षा कल्पण और केवल-
ज्ञान कल्पणका वर्णन करने वाला छठा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमः परिच्छेदः

धर्मोपदेशानोद्युतं श्रीमतं क्रिजगदगुरुं । स्थितं सदसि भवथातां स्तुते देवं गुणाणंवं ॥१॥
 अथ शक्ता मुदोत्थाय पूजां तस्य क्षमाद्वजयोः । परया दिव्यसामग्रया भक्त्या चकुः सहापरैः ॥२॥
 स्वच्छनीरेः पवित्रैश्च दिव्यार्थैवलेपनैः । मुक्ताफलाक्षतैः कल्पवृक्षपुष्पजदामभिः ॥३॥
 सुधार्पिण्डमुत्तेवैद्ये रत्नदीपेश्च नाकजः । धूपैः फलोत्तमैः पुष्पांजलिभिर्गीतनतनैः ॥४॥
 भर्तुरग्रेशची भक्त्या विचित्रबलिमूर्जितं । नानावर्णः सुशोभाहृष्टेरत्नं चूर्णेश्वकार सा ॥५॥
 ततो हृष्टाः सुराधीशा भक्तिभार वशीकृताः । तुति प्रारेभिरे कतु तस्यासाधारणेणूने ॥६॥
 अद्य नाथ ! वर्णं धन्याः सफलं नोऽव्य जीवितं । यतोऽस्माभिर्महापुण्याद् वृष्टी ते चरणांबुत्री ॥७॥
 ह्वं देव ! जगतां नाथस्त्वं गुरुणा महागुरुः । त्रिजगत्स्वामिनां प्राच्यस्त्वं प्राच्यर्योगिनां ॥८॥

भव्योंकी सभा—समवसरणके अन्दर विराजमान, समीचीन धर्मके उपदेश देनेके लिये उद्यत, बाह्य अन्तरंग दोनों प्रकारको लक्ष्मीके स्त्रामी, तीन जगतके गुरु एवं अगणित गुणोंके समुद्र देव भगवान् मलिलनाथको मैं प्रन्थकार भस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥१॥ इन्द्रगण जिस समय नमस्कार कर उठे उस समय उन्होंने देवोंके साथ पवित्र स्वच्छ जल, दिव्य चन्दन मुक्ताफलोंके अक्षत, कल्पवृक्षोंके पुष्पोंको मालायें, अमृतके पिण्डस्वरूप नैवेद्य, स्वर्गलोक सम्बन्धी रत्नमयी दीपक, धूप, उत्तम फल, पुष्पोंकी अंजली, गोत और नृत्यरूप उत्कृष्ट दिव्य सामग्री-से भगवान् जिनेन्द्रके चरण कमलोंकी भक्तिभावसे सानन्द पूजा की ॥२-४॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने भगवान् जिनेन्द्रके सामने नाना प्रकारके वर्ण वाले अस्थन्त शोभासे शोभायमान रत्नमयी चूर्णोंसे देवीप्यमान बलि [माढना] माढ़ा ॥५॥ जिस समय यह कार्य समाप्त हो चुका उस समय भक्तिके भारसे वशीभूत और प्रसन्न चित्त देवेन्द्रोंने भगवान् जिनेन्द्रके असाधारण गुणोंकी इस प्रकार स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी ।

तीव्र पुण्यके उदयसे आपके चरण कमलोंका आज हमें दर्शन हुआ है इसलिये आज हम धन्य हैं और हमारा जीवन सफल है ॥५-६॥ हे देव ! आप तीन जगत-के नाथ हो । गुरुओंके महागुरु हो । तीन जगतके स्वामियोंके अर्थात् देवेन्द्र नरेन्द्र और नारेन्द्रोंके आप स्वामी हो एवं जिन योगियोंको बड़े पदवीधारी भी पूजते हैं वे

ज्ञानिनां त्वं च सर्वं ज्ञानस्तपस्विना महातपाः । योगिना त्वं महायोगो जिनानां त्वं परे जिनः ॥१॥
 विश्वोद्गत्मना दुःखान्निरीहस्तवं जगद्वितः । द्विधा श्यलंकृतोपि त्वं महानिर्णेशाद् भुवि ॥१०॥
 शच्याच्यैः सेव्यपादोपि महास्तवं ब्रह्मचारिणां । ज्ञातविश्वायसर्वाऽपि त्वमग्रजानदूरगः ॥११॥
 त्वदर्शनाशुभिदेवाज्ञानध्यांतवर्यं द्रुतं । एनसामा क्षयंनोऽणावथात्र भानुना तमः ॥१२॥
 नित्यं स्वामिन् ! नमस्तुम्यं स्वमूर्कत्वे गुणसिंश्वे । नमस्ते दिव्यदेहाय नमस्ते धातिवातिने ॥१३॥
 भवद्भूति समग्रां त्वं देहि नः कृपयाद्वृत्तं । कृपानाथो यतस्त्वं हि याचकाणां सुरद्वृपः ॥१४॥
 इति भवत्या स्तवं कृत्वा प्रार्थ्येष्टप्रार्थनां परां । नत्वा स्व स्वं प्रकोष्ठं तेऽभजस्तत्समुखाश्चिदे ॥१५॥
 अथ दृष्ट्वागणाधीशो विश्वाखाहपः समग्रधीः । महाद्विको गणान् सर्वान् सद्गमश्ववणांत्सुकान् ॥१६॥

पूज्य योगी भी आपकी सेवा करते हैं । हे भगवान् ! ज्ञानियोंमें आप सर्वज्ञ हैं प्रचण्ड तप तपनेवाले तपस्त्रियोंमें महा तपस्वी हैं, योगियोंके अन्दर महायोगी और कर्मोंके जीतने वाले जिनोंमें आप उत्कृष्ट जिन हैं ॥७-९॥ हे भगवान् ! आपका चित्त संसार-के दुखोंसे समस्त जगत्को उद्धार करनेका है, आपको संसारके किसी भी पदार्थमें इच्छा नहीं इसलिये आप निरीह हैं, समस्त जगतका ह्रित करनेवाले हैं, बहिरङ्ग और अन्तरंग वोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे शोभायमान हैं और संसारमें समस्त निर्गुणोंके आप राजा हैं ॥१०॥ हे भगवान् ! यह बड़े अचरजकी बात है कि इन्द्राणी आदि आपके चरण कमलोंकी सेवा करती हैं तब भी आप ब्रह्मचारी हैं, यद्यपि आप समस्त संसारके पदार्थोंके जानकार हैं तथापि इन्द्रियोंके ज्ञानसे आप दूर हैं अर्थात् इन्द्रियजन्य ज्ञान आपके अन्दर नहीं ॥११॥ हे भगवान् ! जिस प्रकार सूर्यके द्वारा अंधकारका नाश होता है उसी प्रकार आपके दर्शनरूपी किरणोंसे हमारा अज्ञानरूपी अंधकार और पापों-का क्षय हो गया ॥१२॥ हे भगवान् ! आप गुणकि समुद्र हैं इसलिये स्वर्ग और पोक्षकी अभिलाषासे आपके लिये नमस्कार है, आप दिव्य शरीरके धारक हैं और धातिया कर्मोंके नाश करनेवाले हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥१३॥ विशेष क्या ? बस ! सविनय प्रार्थना यही है कि आपने जिस अलौकिक विभूतिको प्राप्त किया है वह कृपाकर बहुत शीघ्र हमें भी प्रदान करें वयोंकि आप संसारके अन्दर कृपानाथ हैं और याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥१४॥ इस प्रकार वेवेन्द्रोने भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्रकी स्तुतिकी जिस अभीष्ट वस्तुको उन्हें प्रार्थना करनी थी वह प्रार्थनाको एवं वात्सविक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वे भगवान् जिनेन्द्रके सन्मुख अपने अपने शोठोंमें जाकर ढैठ गए ॥१५॥ भगवान् मत्तिलनाथके सबसे प्रधान गणधर विश्वाख

उत्थाय कुद्मलीकृत्य करो नत्वा जगदगुरुं । स्तुत्वा स्तृतिशतेभूमोऽकरोत्पृच्छामितिस्वयं ॥१७॥
 देव ! त्वं विश्वतत्त्वानि समग्रं धर्मलक्षणं । द्वादशांगभवा सर्वे नः सर्वज्ञ ! निरूपय ॥१८॥
 ततोऽबादोज्जगन्नाथो गंभीरध्वनिना चिदे । विश्वस्त्वहितार्थाय मुक्तिमार्गंप्रवृत्तये ॥१९॥
 मुखामबुजेऽस्य वक्तुविकृतिनाभूमनागृत च । ताल्बोष्ठानां परिस्पंदो निर्यथो भारतो मुखात् ॥२०॥
 शृणु त्वं हे गणाधीश ! धीमनेकाश्रचेतसा । सर्वे गणे समं सर्वं वक्ष्ये वः श्रुतविस्तरं ॥२१॥
 जीवाजीवाभवा बंधः संबरो निर्जरा शिवः । इति सप्तैव तत्त्वानि प्राकृतानि श्रीजिनेशिना ॥२२॥
 तेषां भेदं च विस्तारं हेयाहेष्यं च लक्षणं । प्रव्यपर्यायं भेदांश्च रचयामास सोऽजसा ॥२३॥

ये जो कि पूर्ण बुद्धिके धारक थे, नाना प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त थे, जिस सयय उन्होंने देखा कि कोठोंमें बैठनेवाले समस्त भव्य जीव धर्मका स्वरूप जाननेके लिए उत्सुक हैं वे उठे, हाथोंको जोड़कर उन्होंने तीन जगतके गुरु भगवान् जिनेन्द्रको भक्तिभावसे नमस्कार किया । सैकड़ों प्रकारके स्तुति परिपूर्ण वचनोंसे स्तुति की एवं स्वयं इस प्रकार भगवान् जिनेन्द्रसे पूछने लगे—

हे देव ! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये तत्त्वोंका स्वरूप, धर्मका अखंड लक्षण और बारह अंगोंके अन्दर जो जो बातें अत्यर्थी पढ़ हैं उन सब शब्दोंसे जलाकार हैं । कृपाकर उन सब आतोंका हमारे जाननेके लिये स्वरूप वर्णन करिये ॥१६-१८॥ गणधर विशाख की इस प्रकारकी पवित्र धर्म जिज्ञासा सुनकर समस्त प्राणियोंका हित संपादन करनेके लिये और मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्रकट करनेके लिये “जीवोंको वास्तविक ज्ञान हो” इस कृपासे प्रेरित वे भगवान् जिनेन्द्र धर्मोपदेशके लिए प्रवृत्त हो गये ॥१९॥ यह नियम है कि वक्ता जिस समय बोलता है उसके मुखपर कुछ चिकार और तालु ओठोंका हलन चलन होने लगता है । परन्तु जिस समय भगवान् धर्मोपदेशके लिये प्रवृत्त हुए थे उस समय उनके मुखपर किसी प्रकारका चिकार नहीं प्रतीत होता था एवं तालु ओठ आदिका हलन चलन भी किसी प्रकारसे नहीं होता था इसलिये इस आश्चर्यकारी रूपसे भगवान् जिनेन्द्रके मुखसे वचन भंगी निकलती थी । वे भगवान् जिनेन्द्र, गणधर विशाखका उत्तरमें इस प्रकार कहने लगे—हे बुद्धिमान समस्त गण-सभासदोंके स्वामी ! मैं आगमके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन करता हूँ वह तुम्हें और समस्त गणको चित्त एकाग्र कर ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए ।

जोद अजीव आत्मव बंध संबर निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व सात हैं । इन जीव अजीव आदि तत्त्वोंके भेद, उनका विस्तार, कौन तत्त्व है वह तुम्हें और कौन उपा-

अपारसंसुतेर्भव्यान् यदुदधृत्य शिवालये । धरत्येव स धर्मोऽत्र ज्ञेयोऽनैतसुखार्णवः ॥२४॥
समग्रेतरभेदेन द्विधा धर्मो दयामयः । यतिश्रावकदक्षाणां स्वर्गमोक्षप्रदोमतः ॥२५॥
आदी सद्विनां धार्य धर्ममूलं गुणेण्युतं । त्यक्तदोषं गृहस्थश्च संयतैर्मुक्तबल्लभं ॥२६॥
मद्यमांसमधून्येव सहादुम्बरपंचकैः । त्यक्तवा मूलगुणा अष्टौ धार्या आदी व्रताप्तये ॥२७॥
यः सप्तव्यसनं त्यक्तवा धत्ते मूलगुणाष्टकं । सम्यगदर्शनसंशुद्धस्तरथाद्या प्रतिमा मता ॥२८॥

देय है यह बात, जीव धर्मात्म आदित्य रुक्षण और इत्य एत्योंते भेद, इन सब बातोंको उन्होंने कहा और बोले कि ॥२०-२३॥ इस संसाररूपी समुद्र अपार है इस अपार संसाररूपी समुद्रसे उठाकर जो जीवोंको मोक्षमें ले जाकर रक्खे वह धर्म कहा जाता है और वह अनन्ते सुखोंका समुद्र स्वरूप है ॥२४॥ वह दयामय धर्म, सकल और विकलके भेदसे दो प्रकारका है । सकल धर्मको धारण करनेवाले मुनि होते हैं और विकल धर्मको धारण करनेवाले शावक होते हैं एवं वह स्वर्ग और मोक्ष-के सुखोंका प्रदान करनेवाला है ॥२५॥ गृहस्थोंकी ग्यारह प्रतिमाओंको वर्णन करते हुए वे जिनेंद्र कहने लगे—धर्मका मूलकारण समस्त दोषोंसे रहित सम्यगदर्शन है और वह मोक्षको परम प्यारी वस्तु है । जो महानुभाव धर्मको धारण कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं वे चाहे गृहस्थ वा मुनि कोई हों उन्हें सबसे पहले सम्यगदर्शन धारण करना चाहिये । मद्य मांस मधु और पांच उदंबर अर्थात् ऊमर कठूमर कटहर पीपर और पाकर इन आठोंका त्याग गृहस्थोंका आठ मूलगुण है । जो महानुभाव अणुवत् वा महाद्रतोंके धारण करनेके अभिलाषी हैं उन्हें पहिले इन आठ मूलगुणोंको धारण करना चाहिये । जूआ खेलना १ शराब पीना २ मांस खाना ३ वेद्यासेवन करना ४ परनारी सेवन करना ५ चोरी करना ६ और शिकार खेलना ७ ये सात व्यसन माने हैं इन सातों प्रकारके व्यसनोंका सर्वथा त्यगकर जो पुरुष आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह सम्यगदर्शनसे शुद्ध कहा जाता है एवं जो महानुभाव इस प्रकार सात व्यसनोंका त्यागकर आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह वर्णननामक पहिली

१. सम्यगदर्शनशुद्धः संसारशरीरभागनिविष्टः । पञ्चमुखरणशरणां वर्णनिस्तत्त्वं पथगृह्यः ॥१३॥

जो महानुभाव सम्यगदर्शनसे शुद्ध हो, भूमार शरीर और भोगोंमें विरक्त हो, पाँचों परमेण्डियोंके चरणों-की शरण समझे और तमोचान मार्गका ग्रहण करनेवाला हो वह महानुभाव पहिली प्रतिमा दर्शन प्रतिमा-का धारण करनेवाला है । —रत्नकरणेश्वावकाचार ।

मद्यमांसमधुत्यार्णः सहाणुक्रतपंचकं । अष्टी मूलगुणानाहुर्गुहिणा धवणोत्तमा ॥१६॥—रत्नकरणेश्वावकाचार

अणुद्रवतानि पञ्चेष त्रिप्रकारं गुणमतं । शिक्षाद्वतानि चत्वारि द्वादशोति ब्रतात्यर्थि ॥२५॥
 मनोबाककाययोगेन कृताद्येस्त्रसषातनं । यो न कुर्यात्सुधीस्तस्य भवेदाद्यगुण द्रतं ॥३०॥
 सर्वद्रवत् समूहानामहिसा जननी मता । खानिर्विश्वगुणानां च धरा धर्मसंग्रहोः परा ॥३१॥
 परपीडाकरं स्थूलमसत्यं यः कृतादिभिः । न बक्ति जातु धीमान् स भवेत्सत्यमणुद्रवतं ॥३२॥
 सत्यं हितं मितं तथ्यं यद्यद्यादिद्वूरगं । दक्षव्यं द्रवतिश्रिनिश्च मधुरं धर्मसूचकं ॥३३॥
 नष्टं वा पतितं स्थूलपरबस्त्वादि विस्मृतं । पश्यादौ गृह्णते यन्न तस्तृतीयं द्रतं स्मृतं ॥३४॥
 मात्रादिसदृशाः सर्वा ये पश्यन्ति परस्त्रियः । न कुर्वति मनस्यागं तेषां तु यं मणुकृतं ॥३५॥

प्रतिमाका धारक माना जाता है ॥२५-२८॥ हिसा १ चोरी २ शूठ ३ कुशोल ४
 और परिप्रह ५ स्थूलरूपसे इन पांचों पापोंका स्थाग करना पांच प्रकारका अणुद्रवत है । दिव्वत अनर्थदण्डद्रवत और भोगोपभोग परिमाणवत इस प्रकार ये तीन गुणमत हैं एवं देशाद्वकाशिक १ सामाधिक २ प्रोषधोपदास ३ और अतियिसंविभागवत ४ ये चार शिक्षाद्वत हैं इस प्रकार ये बारहसत श्रावकोंके हैं ॥२९॥ मनसे करना कराना और करनेकी अनुमोदना करना, वचनसे करना कराना और अनुमोदना करना एवं शरोरसे करना कराना और अनुमोदना करना इस प्रकार मनवचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो दो इन्द्रिय आदि श्रस जीवोंका घात नहीं करना है वह पहला अहिसा अणुद्रवत कहा जाता है ॥३०॥ यह अहिसा समस्त द्रवतोंकी जननी है अर्थात् जबतक हृदयमें अहिसाकी सत्ता नहीं है तबतक किसी भी द्रवतका पालन नहीं हो सकता । यह समस्त गुणोंकी खान है । अहिसा के पालन करनेसे हा आत्मामें समस्त गुणोंकी प्राप्ति होती है एवं धर्मरूपी दृक्षोंको उत्पन्न करने वाली उत्तम भूमि है— अहिसाके पालनसे ही वास्तविक धर्मकी उत्पत्ति होती है ॥३१॥ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दूसरेको पीड़ा करनेवाले स्थूल शूठका न बोलना सत्य अणु-द्रवत कहा जाता है जो महानुभाव सत्य अणुद्रवतके पालन करनेवाले हैं उन्हें चाहिये कि जब बोलें उस समय सत्य ही बोलें । हितकारी बोलें । बहुत योड़ा परिमित बोलें । पक्षपात् रहित निर्दोष बोलें । “मारो बांधो” इत्यादि शब्द कभी न बोलें एवं बहुत मीठा और धर्मके स्वरूपका सूचन करनेवाला वचन बोलें ॥३२-३३॥ जो सोना चांदो आदि वस्तुयें नष्ट हों अर्थात् जमीन आदिके अन्दर गड़ी आदि हों वा मार्ग आदिमें गिरी पड़ो हों वा किसी कारण वजा भूलो हुई हों उन्हें मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो ग्रहण नहीं करना है वह तीसरा अचौर्य नामका अणुद्रवत है ।

क्षेत्रादिदृशसंगाना प्रमाणं वद्विधीयते । संतोषाल्लभमाहत्य तत्पञ्चममणुव्रतं ॥३६॥

पौष्टिकस्त्वर्गविर्यत् कलं पुण्यं ८८ उत्तमं । पूर्वादित्वरं पंचाणुव्रतानि फलंति च ॥३७॥

संख्या या क्रियते दक्षेजीवघातादिहानये । दिग्देशानां प्रणीतं तज्जनेदिग्विरतिव्रतं ॥३८॥

परस्त्रियोंको जो माता आदिके समान समझता है अर्थात् अपनेसे छोटी स्त्रीमें पुत्रीके भाव, बराबर बालीमें वहन सरीखे भाव और बड़ीमें माता सरीखे भाव होना है एवं उन्हें देखकर जरा भी राग भावका न होना है वह औषधा अनुवर्ध (स्वदारसंतोष) नामका अणुव्रत है ॥३५॥ तथा संतोषको हृदयमें धारणकर और लोभका सर्वथा त्यागकर ऊपर जो क्षेत्र वस्तु आदि दश प्रकारके परिप्रह कहे गये हैं उनका परिमाण कर लेना है अर्थात् हम अमुक चीज इतनी ही रक्खेंगे इस प्रकारकी मर्यादा बांध लेना है वह पाँचवाँ परिप्रह परिमाण नामका अणुव्रत है ॥३६॥ इन पाँचों अणुवतों-के पालन करनेका फल यह है कि पंचाणुव्रती महानुभाव पवित्र पुण्य उपार्जन कर सोलहवें स्वर्ग तकके सुखोंको भोगते हैं एवं पापके आगमनको रोकते हैं ॥३७॥

दिशाओंकी मर्यादाकर उनसे आगे न जाना दिग्विरति कही जाती है । जीवों-के घात आदि न हों, इस पवित्र अभिलाषासे जो दिशाओंके अन्वर यह परिमाण कर लेना कि अमुक दिशामें मैं इतने कोस तक जाऊँगा उससे आगे न जाऊँगा वह दिग्विरति नामका गुणव्रत है ॥३८॥ जिन जिन कार्योंसे व्यर्थ ही पापका आनन्द होता हो उन कार्योंका जहाँपर त्याग हो एवं अपद्यान-खोटे प्यान आदिका भी त्याग हो वह अनर्थदण्ड द्रत है । इसका विशेष तात्पर्य यह है—

बिना प्रयोजन हो जीवोंको वण्ड देना अनर्थदण्ड कहा जाता है एवं उसका त्यागकर देना अनर्थदण्डव्रत नामका गुणव्रत है । अनर्थदण्डके पापोपदेश १ हिंसादान २ अपद्यान ३ दुःश्रुति ४ और प्रमादचर्या ५ ये पाँच भेद हैं । मारना बांधना बहुत बोझा लादना आदि रूपसेतियंचोंको कलेश करनेवाला उपदेश देना, व्यापारका उपवेश देना, जिस कार्यके करनेमें छह कायके जीवोंकी हिंसा होती हो ऐसा हिंसा परिपूर्ण उपदेश देना, वा महल आदिका बनवाना रूप आरम्भका उपदेश देना एवं छल कपट धोखेवाजोंका उपदेश देना इस प्रकार पापका कारण उपदेश देना पापोपदेश नामका अनर्थ दण्ड है । फरसा तलवार काढ़ा अग्नि आयुध और बेड़ी आदि हिंसाके उपकरणोंका दूसरेको प्रदान करना हिंसादान नामका अनर्थदण्ड है । तीव्र हृषि वा तीव्र रागसे पराये स्त्री पुत्र आदिके विषयमें यह चिन्तवन करना कि यह बैध जाय वा मर जाय वा छिप-

वृथा पापान्वतः सर्वोऽत्रापव्यानादिहापनैः । यो निराक्रियते मव्येस्तद्द्वितीयं गुणवत् ॥३५॥
तांबूलान्नादिभोगानां प्रमाणं कियते चयत् । स्त्रीभूषाद्युपभोगानां तृतीयं तदगुणवत् ॥४०॥
शृंगवेरादिकात् कंदाश्चन्तजीवसंकुलान् । मूलकोटफलान्निद्यान् गुणादीद विषवत्यजेत् ॥४६॥
दिशां या गमने संख्या दीनं प्रति विधीयते । क्षेत्रादिसोमया मुक्तयं ततस्याददेशावकाशिकं ॥४८॥
त्रिकालं क्रियते यदि नित्यं सामायिकं बुधैः । त्रिशुद्धया मुक्तये शिक्षावत् स्यात्तद्द्वितीयकं ॥४९॥

जाय आदि तो अच्छा हो ऐसे खोटे चित्तवनका नाम अपव्यान नामका अनर्थदण्ड है । जो शास्त्र असि, सवि, कूषि आदि आरम्भ, धन धात्य आदिक परिग्रह, रौद्र कामोंका साहस मिथ्यात्व द्वेष राग अहंकार और कामके विकारोंको उत्पन्न करनेवाले हों ऐसे खोटे शास्त्रोंका सुनना विचारना शुश्रुति नामका अनर्थदण्ड है । पृथिवी खोदना जल बहाना अग्निका जलाना और पवनका फूंकना इस प्रकार अर्थ आरम्भ करना, बिना कारण वनस्पतिका छेदना स्वयं चलना और दूसरोंको चलाना यह सब प्रमादचर्या नामका अनर्थदण्ड है । इन पांचों प्रकारके अनर्थदण्डोंका त्यागना अनर्थ-दण्डवत कहा जाता है ।

तथा ताम्बूल अन्न आदि भोगरूप पदार्थोंका और स्त्री भूषण वस्त्र आदि उपभोग स्वरूप पदार्थोंका जो प्रमाण करना है वह भोगोपभोग परिमाण नामका गुणवत् है । जो वस्तु एक बार भोगकर पुनः भोगनेमें न आवे वह भोग और जो बार-बार भोगनेमें आवे वह उपभोग स्वरूप कहलाती है । पान इलायची भोजन आदि पदार्थ एक ही बार भोगनेमें आते हैं इसलिये ये भोगस्वरूप है एवं स्त्री भूषण आदि पदार्थ बार बार भोगनेमें आते हैं इसलिये ये उपभोग स्वरूप हैं । इन तीनों दिग्गतोंके साथ साथ अनंते जीवोंसे व्याप्त अदरख आदि कन्दमूलोंको, जिनके मूल भागमें कीड़े हों ऐसे फलोंको और निर्द्यु पुष्प आदि चीजोंको भी विषके समान अहितकारी जान छोड़ देना चाहिये ॥३९-४१॥ पूर्व विशामें सौ कोस तक जाऊंगा वा उत्तर विशामें मैं पचास आदि कोश तक जाऊंगा ऐसा परिमाण करना तो दिग्गतका विषय है परन्तु इसी परिमाणमें से क्षेत्रकी मर्यादा बांधकर जो प्रतिदिन यह परिमाण कर लेना है कि आज मैं अमूक घर तक जाऊंगा वा मन्दिर तक जाऊंगा मन्दिरसे बाहर नहीं जाऊंगा वह देशावकाशिक नामका शिक्षावत् कहलाता है । यह देशावकाशिक शिक्षावत् विशेष रूपसे जीवकी हिताका निरोधक होनेसे निर्मलताका कारण है इसलिये मोक्षको प्राप्त करनेवाला माना जाता है ॥४२॥ सामायिकका विधान तीनों काल

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां निरारम्भो विधीयते । नियमेनोगवासो हस्तत्रोषधन्तं मतं ॥४४॥
पात्रदानाय नित्यं यद् गृहद्वारं विलोक्यते । चतुर्धा दीयते दानं तत्याच्छिक्षाव्रतांतिमं ॥४५॥
प्रतिपालयतीमानि यो द्वादशप्रतान्ययि । अतोचारान् विना सोऽयाद्यतिः पोडशर्म दिवं ॥४६॥
पावज्जीवे प्रपालयोच्चेद्रत्तानि सकलान्ययि । अन्ते सल्लेखना कार्या विधिना तत्कलाप्तये ॥४७॥
द्वादशदत्सवीणि यो विधत्ते वृधोत्तमः । द्वितीया प्रतिमा तस्य भवेत्स्वर्गाधियः सखी ॥४८॥

माना जाता है जो महानुभाव भोक्त्र प्रदिक्षकों अभिलाषासे मन वस्त्रन कायकी शुद्धता-से तीनों काल सामायिक करते हैं उनके सामायिक नामका दूसरा शिक्षाव्रत होता है ॥४३॥ प्रत्येक भास्त्रको अष्टमी चतुर्दशीके दिन किसी प्रकारके आरम्भको न कर नियमसे उपवास करना है वह प्रोषधोपवास नामका तीसरा शिक्षाव्रत है ॥४४॥ उत्तम आदि पात्रोंको दान देनेके लिये जो प्रतिविन अपने घरका द्वार देखते हैं द्वाराप्रेक्षण करते हैं तथा पात्रोंके प्राप्त होनेपर उन्हें आहार औषधि आदि चारों प्रकारका दान करते हैं वे महानुभाव अतिथि संविभाग नामके चौथे शिक्षाव्रतके धारक हैं जिसकी कोई निश्चित तिथि न हो वह अतिथि कहलाता है और संविभागका अर्थ निर्दोष वस्तुका देना है अर्थात् मुनि आदि अतिथियोंके लिये जो आहार औषधि आदिका प्रदान करना है वह अतिथि संविभागका अन्वर्थ है ॥४५॥ प्रन्थकार फल प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि जो महानुभाव उपर्युक्त व्रतोंका अतीचार रहित पालन करते हैं उन्हें सोलहवें स्वर्णके दिव्य सुख भोगनेके लिये प्राप्त होते हैं ॥४६॥

व्रतोंका पालन करनेवालोंके लिये अन्त समयमें सल्लेखनाका भी विधान है । सल्लेखनाका लक्षण यह बतलाया गया है—कि तीव्र उपसर्ग आनेपर वा दुभिक्ष उपस्थित होनेपर वा अत्यन्त वृद्धावस्था होनेपर अथवा तीव्र रोगके उपस्थित होनेपर जिसका कि किसी प्रकारसे प्रतीकार न हो सके—मृत्युका ही समय आकर उपस्थित हो जाय उस समय किसी कषाय आदिसे प्रेरित न होकर धर्मके लिये जो सन्यासपूर्वक शरीरका त्याग करना है वह सल्लेखना व्रत है । जो महानुभाव बारह व्रतोंके पालन करनेवाले हैं उन्हें उपर्युक्त व्रतोंका यावज्जीव पालनकर अन्तमें मृत्युके समय उन समस्त व्रतोंके परिव्रत्र फलकी प्राप्तिके लिये शुद्ध भावोंसे सल्लेखना करनी चाहिये ॥४७॥ इस प्रकार जो महानुभाव इन बारह व्रतोंका अतीचाररहित विशुद्ध भावोंसे पालन करता है उसके दूसरी प्रतिमा होती है जो कि स्वर्णरूपी लक्ष्मीकी सखी स्वरूप

सामायिकाभिष्ठा शेया तृतीया प्रतिमा परा । सत्प्रोषधोपवासाल्या चतुर्थी कर्मनाशिनी ॥४५॥
पश्चिमजफलादीनि सचित्तानि त्यजेत्तिव्या । चाप्रासुकजलादीनि पंचमी प्रतिमाप्तये ॥५०॥
बशनं पानकं खाद्य स्वाद्य च त्यज्यतेयै । अखाद्यवद्यानिशि पत् षष्ठी च प्रतिमा हि सा ॥५१॥
यो विष्टते इमाः षट् प्रतिमा दोषतिगा बुधः । जघन्यः श्रावकः प्रोक्तः सदृग्शुद्धो जिनागमे ॥५२॥
स्वावामिव सर्वनारीं भत्वावामेध्यखातिकां । पालने ब्रह्मचर्यं घत्सप्तप्तो प्रतिमात्र सा ॥५३॥
पापाकरो पृहारम्भस्त्यज्यते सकलो हि यः । मनोबाकायथ्योगैः स्यादष्टमी प्रतिमात्र सा ॥५४॥

मानी गई है ॥४८॥ तीसरी सामायिक प्रतिमा है जो पुरुष प्रत्येक दिशामें तीन तीन
आवर्त इस प्रकार बारह आवत्तोंको कर एवं चारों दिशाओंमें चार प्रणाम कर स्थिति
होनेवाला हो यथाजात रूपका धारक हो दोनों प्रकारके आसनोंसे युक्त हो मन वचन
कायको शुद्ध रखनेवाला हो और तीनों काल सामयिक करनेवाला हो वह सामायिक
प्रतिमाका धारक है । चौथी प्रतिमाका नाम सत्प्रोषधोपवास है । जो महानुभाव प्रत्येक
मासको अष्टमी और चतुर्दशीको शक्तिको न छिपाकर प्रोषधोंका पालन करनेवाला है
वह कमींको नाश करनेवाली सत्प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारक है । पाँचवीं प्रतिमा-
का नाम सचित्तविरत है जो महानुभाव इस पाँचवीं प्रतिमाका पालन करना चाहै उन्हें
मन वचन और कायसे सचित पत्र बोज और फल आदिका सर्वथा त्यागकर देना
चाहिये एवं उन्हें अप्रासुक जल भी ग्रहण न करना चाहिये ॥४९-५०॥ छठी प्रतिमा
रात्रिभुक्तिविरत है । जो महानुभाव रात्रिभुक्ति प्रतिमाके धारक हैं उन्हें दया धर्मकी
प्राप्तिके लिये जिस प्रकार अखाद्य— नहीं खाने योग्य, वस्तुका सर्वथा त्यागकर दिया
जाता है उसी प्रकार रात्रिमें अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारों-
का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । अन्नसे यहाँपर भोजन लिया गया है । पानसे
दूध शरबत आदि पीने योग्य पदार्थका ग्रहण है । खाद्यसे खाने योग्य पदार्थ पेड़ा
लाडू आदि लिये हैं और स्वाद्यसे इलाची पान सुपारो आदि पदार्थोंका ग्रहण है
॥५१॥ इस प्रकार जो महानुभाव पहली प्रतिमासे छठी प्रतिमा पर्यन्त यह प्रतिमाओं-
का निर्देश रूपसे पालन करनेवाला है वह सम्यादर्शनसे महानुभाव जघन्य श्रावक
माना गया है ॥५२॥ सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है । जो महानुभाव अपनी पराई समस्त
स्त्रियोंको अपनी माताके समान मानता है एवं उनसे रक्षमात्र भी रागका स्पर्श नहीं
रखता वह महानुभाव ब्रह्मचर्य प्रतिमाका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी है ॥५३॥ घरका
समस्त आरम्भ अनेक प्रकारके पापोंका कारण है अर्थात् सेषा खेती व्यापार आदि

वस्त्रपात्रे विना शोषस्त्यज्यते यः परिग्रहः । सर्वनिर्यकरोभूती नवमो प्रतिमा हि सा ॥५५॥
 नवंताः प्रतिमा धत्ते यः सदृष्टिविरागवान् । मध्यमः शावकः सोऽन्न मतो धर्मपराषणः ॥५६॥
 मनाग् नानु ति धत्ते यो गेहाद्यादिकर्मणि । आहारादौ च तरयैव प्रतिमा दशमी भवेत् ॥५७॥
 अखाद्यमिव विजाय सदोषाहार मंजसा । योऽन्ति सद्गुक्षणाहारं तस्य स्थात्प्रतिमांतिमा ॥५८॥
 एता यः प्रतिमा धत्ते सम्यादृष्टिः शिलापतये । उत्तमः शावकः प्रोक्तः स जिनैः स्वर्गभुक्तिभाग् ॥५९॥
 गृहिणां मुदमृत्याद्य गृहिधर्मेणिदेशनैः । यतिधर्मसती श्रूते जिनो यतिसुखाप्तये ॥६०॥

कोई भी आरम्भ किया जाय नियमसे उससे पापोंकी उत्पत्ति होती है । जो महानुभाव इस प्रकार पापके कारण स्वरूप धरके आरम्भका मन बचन और काष्ठकी शुद्धतापूर्वक त्याग करनेवाले हैं उन महानुभावोंके आरम्भ त्याग नामक आठबों प्रतिमा होती है ॥५४॥ नवमी प्रतिमाका नाम परिचित परिग्रह त्याग है । परिग्रह समस्त अनर्थोंका मूल कारण है । जो महानुभाव वस्त्र और पात्रके सिवाय शेष समस्त प्रकारके परिग्रहका त्यागी है अर्थात् क्षेत्र वस्तु आदि ऊपर कहे गये दश प्रकारके परिग्रहसे ममत्व हटाकर जो महानुभाव निर्ममत्व परिणाममें लीन है और अपने आत्मस्वरूपके अन्दर विराजमान है और संतोषी है वह पुरुष परिचित परिग्रह त्याग नामक नवमी प्रतिमाका धारक है ॥५५॥ इस प्रकार जो सम्यादृष्टि रागरहित और धर्ममें लीन होकर इन नौ प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करनेवाला है वह मध्यम शावक कहा जाता है ॥५५॥ दशवीं प्रतिमाका नाम अनुपत्ति त्याग है । जो महानुभाव धर आदिके कार्योंमें और आहार आदिमें रक्तमात्र भी अपनी अनुमति (सलाह) नहीं देता अर्थात् सबा मध्यस्थ भाव रखता है वह महानुभाव अनुमति त्याग नामक दशवीं प्रतिमाका धारक कहा जाता है ॥५७॥ तथा ग्यारहवीं प्रतिमाका उत्कृष्ट शावक है । जो महानुभाव अपने निमित्तसे होनेवाले सदोष आहारको अखाद्य के समान निदनीय जानकर उसे ग्रहण नहीं करता एवं क्षोभि वृत्तिसे आहार ग्रहण करता है अर्थात् घरबारसे विरक्त हो जहाँ भुनिराज विराजमान हों उस बनमें जाकर एवं ग्रुके समीपमें द्रतोंको धारणकर तपका आचरण करता है, भिक्षाच्यसि आहार ग्रहण करता है एवं चेलखंड कोपीनमात्र परिग्रहका धारक है वह पुरुष उत्कृष्ट शावक नामक ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक है ॥५८॥ इस प्रकार जो सम्यादृष्टि मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे इन ग्यारह प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करता है वह उत्कृष्ट शावक है और वह स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका पात्र है ॥५९॥ इस प्रकार गृहस्थ

महाव्रतानि पञ्चेव तथा समितयः पराः । पञ्चेन्द्रियनिरोधाइच लोचं आवश्यकानि षट् ॥६१॥
अचेलत्वं तथा स्नानं क्षिती हि शयनं परं । अदत्तघर्षणं रागदूरं च स्थितिभोजनं ॥६२॥
इकमक्ते गुणे द्वे मूलगुणा द्वितुर्दशा । मूलभूता मुनीनां सद्गुर्मस्य मोक्षकारिणः ॥६३॥
प्राणांतेऽपि न मोक्षत्व्या धर्ममूला इमे गुणाः । मूलभूता यमादीनां जावृत्तरगुणाप्तये ॥६४॥
सर्वमूलगुणाचायात्परो धर्मेण जायते । धर्महिलोकप्रये शर्म महन्मोक्षः क्रमात्सत्तां ॥६५॥
इति मत्वा सदाराध्या विक्षे मूलगुणास्त्रिधा । जिनमुद्रां समादाय धर्मार्थभिमुक्षुभिः ॥६६॥
उत्तमाद्या क्षमा मार्दवं तथार्जवमुत्तमं । सत्यं शौचं परः संयमस्तपस्याग उत्तमः ॥६७॥

धर्मका उपदेश देकर भगवान् जिनेन्द्रने कहा कि गृहस्थोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये
गृहस्थ धर्मका वर्णन कर दिया गया अब यतियोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये यसि
धर्मका व्याख्यान किया जाता है—

अहिंसा आदि पांच महाव्रत, ईर्या आदि पांच समितियाँ, पांच इन्द्रियोंका
निरोध १५ केशोंका लोचं करना १६ समता आदि छह आवश्यक २२ समस्त वस्त्र
का त्याग २३ यावज्जीव स्नानका न करना २४ भूमिपर शयन २५ दंतधावन नहीं
करना २६ रागरहित खड़े खड़े आहार लेना २७ और एक बार लघु भोजनका करना
ये २८ अदृठाईस मुनियोंके मूल गुण हैं । समीचीन धर्मके मूलकारण होनेसे इनकी
मूल गुण संज्ञा है एवं ये मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ॥६०-६३॥ मूलगुणोंकी प्रशंसा
करते हुए प्रन्थकार कहते हैं कि—ये मूल गुण वास्तविक धर्मके मूल कारण हैं एवं
यम नियम आदिको उत्पत्तिके भी प्रधान कारण हैं एवं मूलगुणोंके पूर्ण रूपसे पालन
करनेसे ही घौरासी लाख उत्तर गुणोंकी सिद्धि होती हसलिए जो पुरुष उत्तर गुणोंकी
प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें प्राणोंके जानेपर भी कभी भी इन मूलगुणोंका परित्याग
नहीं करना चाहिये तथा इन समस्त मूलगुणोंके आचरण करनेसे वास्तविक धर्मकी
प्राप्ति होती है उस धर्मकी कृपासे तोनों लोकका महान् कल्याण प्राप्त होता है एवं
क्रमसे मोक्ष भी मिलतो हैं इसलिए जो महानुभाव धर्मको प्राप्त करना चाहते हैं और
अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्तिकी पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं उन्हें दिगम्बर जैन दीक्षा
धारणकर मन बचन करयकी शुद्धिपूर्वक समस्त मूलगुणोंका अच्छी तरह आराधना
करना चाहिये । उनके पालन करनेमें किसी प्रकारकी विराधना न हो यह प्रति समय
छ्यान रखना चाहिये ॥६४-६६॥

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आर्किचन्य और

आकिञ्चन्यं महदवद्वयं वीजगमान्यं हो । लक्षणानि दशमानि स्युर्धर्मकल्पशास्त्रिनः ॥६८॥
अतो धर्मार्थिमिह्येतानि लक्षणानि मुक्तये । धर्महेतुनि सेव्यानि न मोक्तव्यानि जातुचित् ॥६९॥
निःपापो जायते धर्मस्तपोमनिखिलोऽनधीः । उत्तमाचरणेः सर्वेध्यनाध्ययनकर्मभिः ॥७०॥
वैराग्याभावनाद्येत्च मनोवावाक्कायकर्मभिः । शुद्धेः साम्येत्च निष्पापे धर्मसंवेगवासिते ॥७१॥
तस्माद्धर्मार्थिपिः कार्यं तपः सर्वं द्वि षड्विधं । ध्यानाध्ययनयोगाचारादिकं धर्मवृद्धये ॥७२॥
धर्मणं पुत्रपीत्रादयः कामाभावेत्च सज्जनाः । सेवका मित्रतुल्याः पितृमात्राद्याद्य बांधवाः ॥७३॥
शृंगारखानया नार्यः सहाया धर्मकर्मणि । पर्वताभारिजास्तु गां रथा अश्वेः सुवेदिनः ॥७४॥
छत्रस्थामरराज्याद्याद्यलंकरणानि परगण च । तुंगधाम सुवस्तुनि जायते धर्मिणा स्वयं ॥७५॥

ज्ञानव्याप्ति ये दश लक्षण वास्तविक धर्मरूपी कल्पवृक्षके बीजस्वरूप हैं—इनको धारण करनेसे वास्तविक धर्मको नियमसे उत्पत्ति होती है । इसलिये जो पुरुष धर्म प्राप्त करना चाहते हैं और मोक्ष प्राप्तिकी हृदयमें पूरी-पूरी अभिलाषा रखते हैं उन्हें वास्तविक धर्मके कारण स्वरूप उत्तम अमा आदि लक्षणोंका नियमसे सेवन करना चाहिये और कभी भी उनसे विमुख नहीं रहना चाहिये ॥६७-६९॥ जिस उत्तम अमा आदि धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह निर्दोष समस्त धर्मनिर्दोष तपोंके द्वारा होता है । उत्तम आचरण ध्यान अध्ययन वैराग्य भावना शुद्ध मन वस्त्रन कायकी क्रियायें, निर्दोष समता भाव एवं धर्मानुकूल संवेगकी बासनाओंसे होता है । इसलिये जो महानुभाव धर्मके अभिलाषी है उन्हें धर्मकी बुद्धिके लिये बारह प्रकारका तप ध्यान अध्ययन शुभयोग और आचार आदिका सदा ध्यान रखना चाहिये ॥७०-७२॥ इस परम पावन धर्मकी कृपासे ही पुत्र पौत्र आदिकी प्राप्ति होती है । इष्ट भोगोंका मिलना भी धर्मसे ही होता है । सज्जन और मित्रके समान सेवक भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं । पिता माता आदि बांधवोंकी प्राप्ति भी धर्मकी ही कृपासे होती है । शृंगारकी खनियाँ एवं धर्म कायंमें पूरी सहायता पहुँचानेवाली स्त्रियाँ, पर्वतके समान विशाल हाथी, ऊँचे ऊँचे रथ और अच्छी तरह शिखित घोड़े भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं छत्र चमर राज्य आदि पदार्थ, उत्तमोत्तम भूषण, ऊँचे-ऊँचे मकान और भी उत्तमोत्तम पदार्थ धर्मतिमाओंके स्वतःसिद्ध प्राप्त होते हैं । जो पुरुष धर्मतिमा हैं उनके समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्रदान करनेवाली लक्ष्मी धर्मरूपी मंत्रसे वश को मई गृहवासीके समान रहती है । अहमिद्रपद द्वंद्वपद सर्वार्थं सिद्ध विमालकी विभूति उत्तम स्वर्गका सुख भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है । जो मनुष्य धर्मतिमा है धर्मको कृपा-

सतां श्रीगृहदासीव धर्मंत्रवदीकृता । विश्वशर्मकरा धर्ममूला कृपात्प्रति गृहे ॥७६॥
 बहुपिदपदं धर्मान्त्रकरजपदं बुधः । सर्वार्थसिद्धिभूतिश्च लभ्यते स्वर्ग उत्तमः ॥७७॥
 षट्खंडनिविरत्नादिपूर्णः । सर्वः विभूतयः । चक्रोक्ता धर्मिणां धर्मद्वित्तव्यंते परश्रियः ॥७८॥
 प्राप्यते धार्मिकेऽर्थमोत्तीर्थनाथश्रियो वराः । गणेशादिपदान्याशु विद्याः ऋद्धथादभांडखिलाः ॥७९॥
 यदद्वरं दुलीमं सर्वं चानन्दं भुवनत्रये । तदस्तु स्वयमायाति धर्मात्करत्तले सतां ॥८०॥
 मुक्तिश्रीः स्वयमासका चेत्य-धर्मान्त्रनेश्वरात् । दत्ते सालिंगनं नूनं का कथा कल्पयोषिताः ॥८१॥
 इतिमत्वा सदा कार्यो धर्मो यत्नात्मुद्धार्मिकः । सुखिभिर्धर्मवृद्धशर्थं सुखवृद्धये शिवाय च ॥८२॥
 दुःखिभिर्दुःखघाताय विधेयो धर्मं उत्तमः । पापिभिः पापहान्यं च मोक्षाय भवभीरुभिः ॥८३॥
 अतो बुधैर्न नेतृब्या ह्योका कालकला कवचित् । विना धर्मेण चानित्ये नुजन्मन्यतिदुर्लभे ॥८४॥

से उनके छह खण्डकी विभूति नौ निधि औद्दह रत्न सुदर्शन चक्र आदि समस्त चक्रवर्ती-की विभूति प्राप्त होती है और भी अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है । सबसे पवित्र और प्रधान तीर्थेकरकी विभूति है परन्तु धर्मात्माओंको धर्मकी कृपासे वह भी प्राप्त हो जाती है । गणधर पद और ऋद्धि आदि अनेक प्रकारको विद्यायें भी धर्म-की कृपासे प्राप्त होती हैं । दिशोष कथा । तीनों लोकमें जो चौज बहुत दूर है, अत्यंत दुर्लभ है और अमूल्य है वह चौज भी धर्मकी कृपासे अपने आप हाथपर आकर विराज जाती हैं । मोक्षलक्ष्मीको प्राप्ति संसारमें अत्यन्त कष्टसाध्य है परन्तु जो महानुभाव धर्मरूपी धनके इदंवर हैं वह मुक्ति लक्ष्मी भी उनपर रीझ जाती है और पास आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंको तो बात ही कथा है अर्थात् धर्मकी कृपा-से उनका प्राप्त होना अत्यन्त सुलभ है । इसलिये ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि जो महानुभाव धार्मिक हैं—परम धर्मात्मा हैं उन्हें यत्नपूर्वक सदा धर्मका सेवन करना चाहिये । जो महानुभाव पूर्वे पुण्यके उदयसे संसारमें सुखी हैं उन्हें भी धर्मवृद्धि सुख-वृद्धि और मोक्षके लिये धर्म धारण करना चाहिये । जो दुःखी हैं उन्हें दुख दूर करने के लिये सदा उत्तम धर्म धारण करना चाहिये । पापी जीवोंको पापीकी हानिके लिये धर्म धारण करना परमावश्यक है एवं जो संसारकी दुष्ट दशासे भयभीत हैं उन्हें मोक्ष की प्राप्तिके लिये धर्मका सेवन करना चाहिये । संसारमें मनुष्य जन्मका पाना अत्यंत दुर्लभ है—बड़ो कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये जो मनुष्य विद्वान है—संसारकी परिस्थितिके वास्तविक रूपसे जानकार हैं उन्हें कालका एक टुकड़ा भी धर्मके बिना न बिताना चाहिए ॥७३-८४॥

मिरुप्येत्यादि सद्गर्म फलभेदादिविस्तरात् । भगवमुत्पादयामास सभ्यानां धर्मकर्मसु ॥८५॥
 मोक्षमोक्षफलं मोक्षमार्गं च मोक्षकारणं । संसारञ्चमणं पञ्चधा संसारनिबंधनं ॥८६॥
 अघोमव्योधवेदेन त्रिधा लोकस्थितिं जिनः । अलोकं सकलं निस्सदिहं दिव्यगिराम्बधात् ॥८७॥
 उत्सपिण्यवसपिण्योः षट् काला हानिवृद्धिजाः । आयुःकायादिभेदेन सर्वे प्रोक्ता जिनेशिता ॥८८॥
 तीर्थेशब्दचक्रेशब्दचक्रितद्विषां विभुः । व्याजहार तुराणान्यंगद्विशर्मवलादिभिः ॥८९॥
 त्रिकालगोचरं देवो द्वादशांगश्रुताद्घूर्व । यत्तत्सर्वं पदार्थादि गणान् प्रत्यब्दुष्ट ॥९०॥

इस प्रकार जिस समय भगवान जिनेन्द्रने समीक्षीत धर्म उसका फल और उसके भेद आदिका विस्तारसे वर्णन किया उस समय समवसरणके अन्दर जितने भी सभ्य ढंठे थे सबको परिणति धर्म कायोंकी ओर सुक गई ॥८५॥ घर्मोपदेशके साथ-साथ भगवान जिनेन्द्रने मोक्ष, मोक्षका फल, मोक्षका सार्ग और मोक्षके वर्गरूपोंके भी विस्तारसे निरूपण किया । द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव इस प्रकार पाँचों परावर्तनोंका भी खुलासा रूपसे प्रतिपादन किया ॥८६॥ अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे लोक तीन प्रकारका हैं । भगवान जिनेन्द्रने तीनों प्रकारके लोकका भी विस्तारसे वर्णन किया । लोकके बाद अलोक है । सिवाय आकाशद्रव्यके उसके अंदर कोई भी द्रव्य नहीं रहता, भगवान जिनेन्द्रने अपनी दिव्य बाणीसे उसका भी निस्सदेहरूपसे वर्णन किया ॥८७॥ उत्सपिणी और अवसपिणीके भेदसे काल दो प्रकारका माना है । जिस कालमें मनुष्योंके बल दोर्य आदिकी निरंतर वृद्धि होती जाय उस कालका नाम उत्सपिणी है एवं जिस कालमें उनकी हीनता होती जाय उस कालको अवसपिणी माना गया है । उत्सपिणी और अवसपिणी दोनों कालोंमेंसे प्रत्येक कालके छह भेद माने हैं । वे सुषमा सुषमा १ सुषमा २ सुषमा दुःषमा ३ दुःषमा-सुषमा ४ दुःषमा ५ और दुःषमादुःषमा ६ इस रूपसे हैं । भगवान जिनेन्द्रने किस रूपसे किस कालकी हानि होती है और किस रूपसे किस कालकी वृद्धि होती है, विस्तारसे यह बात बतलाई तथा कौन-कौन कालमें कितना-कितना आयु काय आदि का परिमाण होता है यह बात भी भगवान जिनेन्द्रने अच्छी तरह प्रतिपादन की ॥८८॥ तोषंकर, बलभद्र, चक्रवर्ती नारायण और प्रतिनारायणोंके चरित्रोंका भी वर्णन किया एवं उनके कैसे शरीर थे, कैसी-कैसी ऋद्धियां थीं, कैसे-कैसे उन्हें सुख प्राप्त थे एवं कैसी-कैसी उनके शरीर आदिकी सामर्थ्य थी यह बात भी अच्छी तरह वर्णन की ॥८९॥ द्वादशांग श्रुतज्ञानके अन्दर तीनों कालसंबंधी पदार्थोंका जो भी वर्णन था वह भी भगवान

तद्वाग्धर्ममृत मिष्टि पित्वा सर्वं गणास्तदा । जन्मदाहविभूक्ता वा बभूवः सुखिनो मृदा ॥९१॥
 तद्वाप्य द्वृष्टाः केचित् संवेगं धर्मकर्मसु । वेराप्य पवित्रा हृत्वा शोहाद्रिमाददुस्तपः ॥९२॥
 केचिरुच पश्यो मर्त्याः श्रावकव्रतमजसा । स्वोचक्रुभविनाः केचित्पोदानाच्चनादिषु ॥९३॥
 काललब्ध्या सुराः केचित्दद्वन्यभृतपानतः । मिथ्याविष वमित्वाशु जगहुदर्शनं परं ॥९४॥
 गणाधीशोऽपि भव्यानां चौपकाशय भूक्तये । निरीपम्यविषयाऽहंसाधर्मतीर्थप्रवृत्तये ॥९५॥
 जिनेन्द्रादथमादाय द्वादशांगमहोदधेः । चकार रथना तानातयभेदाथकोटिभिः ॥९६॥
 प्रशातेऽप्य जनक्षोभे दिव्यभाषोपसंहृते । धर्मतीर्थविहारै सद्मना सौधर्मकल्पराट् ॥९७॥
 प्रणम्य तत्कमावजो प्रवाञ्छन्विश्वहितं मृदाः । प्रारेभे तत्स्तवनं कतुं षमोपदेशाजेर्गुणेः ॥९८॥

जिनेन्द्रने गणधरोंके लिये व्यक्त कर बतलाया ॥९०॥ भगवान् जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए बचनरूपी धर्मामृतका पानकर समस्तगण—संघने उस समय अपनेको जन्मरूपी दाहसे रहित समझा एवं के अपनेको परमसुखी अनुभव करने लगे ॥९१॥ भगवान् जिनेन्द्रका उपदेश सुनकर बहुतसे धर्मत्मा भव्य जीवोंको संसारसे उदासोनता हो गई । उन्होंने धर्मसंबंधी कार्योंके अन्दर मन लगाया एवं वेराप्यरूपी बजासे मोहरूपी पर्वतके खंड-खंड कर पवित्र तप धारण कर लिया ॥९२॥ भगवान् जिनेन्द्रके मुखसे धर्मोपदेश पाकर बहुतसे पशु और मनुष्योंने श्रावकव्रत अर्थात् अणु-क्रतोंको धारण कर लिया एवं तप दान पूजन आदि पवित्र कार्योंमें उन्होंने अपने भावों-को दढ़ किया ॥९३॥ बहुतसे देवोंने काल लब्धिकी कृपासे भगवान् जिनेन्द्रके मुखसे धर्मामृतका पानकर मिथ्यादर्शनरूपी विषको बमन कर दिया और सम्यदर्शनको धारण कर लिया ॥९४॥ गणधरोंमें प्रधान गणधर बिशाखने भी समस्त भव्य जीवोंका उपकार हो, मोक्ष मार्गकी प्राप्ति हो एवं अहिंसारूपी धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हो इस अभिलाषासे अपनी निरुपम प्रखर बुद्धिसे भगवान् जिनेन्द्रके मुखसे तत्स्वरूप प्राप्त कर उसे करोड़ों नयोंकी भंगियोंके साथ द्वादशांग महा समुद्ररूप रथ दिया ॥९४-९५॥ भगवानकी दिव्यध्वनिका लिरना जिस समय समाप्त हुआ और मनुष्योंका कोलाहल शात हो गया उस समय धर्मतीर्थोंमें भगवान् जिनेन्द्रका बिहार हो, इस पवित्र अभिलाषाको हृवयमें धारण कर समस्त प्राणियोंके हितके इच्छुक सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने दड़े आनन्दसे भगवान् जिनेन्द्रके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया एवं धर्मोपदेशसे जायमान जो गुण हैं उन्हें लक्ष्यकर वह भगवान् जिनेन्द्रको इस प्रकार स्तुति करने लगा—हे भगवान् ! आपके बचनरूपी किरणोंसे मोह और अज्ञानरूपी अंषकार

त्वं देव ! क्रिजगद्धूर्ता भव्यदंषुस्त्वमेव हि । मोहाज्ञानतमो यात्यन्न अयं तत्त्वचोऽशुभिः ॥१९३॥
 भवाभ्यौ दुस्तरे भव्यांस्त्वं सुता रवितुं क्षमः । धर्मोपदेशपोतेन नेतुं च मुक्तिपत्तने ॥१९०॥
 ताराकदांगिवार्थ्यमित्वप्रदेशाशीरिणां । संख्या न ज्ञायते यद्वत्तथा ते गुणवारिधेः ॥१९१॥
 अतो नाथ ! गुणास्तेऽनंता अक्षाङ्क्या किलोदितुं । ज्ञात्वेति न कृतोऽस्माभिः अस्त्वदगृणभाषणे ॥१९२॥
 लोकेश ! भव्यसस्यानां पापातापदिशोषिणां । धर्ममृतपुसेकेन विधेहि फलमूजित ॥१९३॥
 निर्भय मोहसेना हि विश्वानर्थविधायिनीं । सन्मार्गमुपदेष्टुं ते कालोऽय समुपस्थितः ॥१९४॥

आज सर्वथा नष्ट हो रहा है । जिससे भव्य जीवोंको वास्तविक मार्गका ज्ञान हो रहा है इसलिये तीनों लोकके भरण पोषण करनेवाले आपही हैं और आपही समस्त भव्य जीवोंके बन्धुस्वरूप हैं ॥१९५-१९॥ यंभीर समुद्रके अन्दर पड़नेवाले जीव जिस प्रकार जहाजके सहारे अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार है स्वामी ! यह संसाररूपी समुद्र दुस्तर है—जल्दी तिरा नहीं जा सकता, इसमें गोता मारते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेशरूपी जहाजकी सहायतासे आपही तार सकते हो एवं उन प्राणियोंकी अभिलाषा मोक्षरूपी पत्तनको प्राप्त करनेकी है सो उस पत्तनमें आपही उन्हें पहुँचा सकते हो, अन्य किसीकी इस समय बैसी सामर्थ्य नहीं ॥१९०॥ संसारमें तारागण, कन्धमूलके अन्दर रहनेवाले जीव, समुद्रकी लहरें, आकाशके प्रवेश और एकेन्द्रिय आदि जीवोंकी मणना नहीं की जा सकती—कितना भी कोई प्रथल्न क्यों न करे उन्हें गिन नहीं सकता उसी प्रकार है भगवान् ! आप गुणसमुद्र हैं इसलिये आपके अगणित गुणोंको भी गिना नहीं जा सकता अर्थात् आप अनंते गुणोंके पिण्ड स्वरूप हैं ॥१९१॥ इसलिये है नाथ ! आप गुणके अनन्ते हैं और हमारे सरीखे हीनशक्तिके पुरुष उन्हें वर्णन करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते अतः आपके गुणोंके वर्णन करनेके लिये हम किसी प्रकारका परिश्रम नहीं उठाना चाहते ॥१९२॥ हे तीनों लोकके स्वामी भगवान् ! जिस प्रकार सूर्यके उग्रतापसे मुरझाये हुये धान्योंके बृक्षोंको बलके सेकसे सौंचा जाता है उस समय वे उत्तम फलोंको प्रदान करते हैं उसी प्रकार वे भव्यरूपी धान्य पापके आताप आदिसे मुरझाये हुए हैं—पापको तीव्रतासे इनकी आत्म-शक्ति हीन हो चुकी है आप धर्ममृत प्रदानकर इन्हें सबल बनाकर जिससे ये उत्तम फलोंको प्राप्त कर लें ॥१९३॥ हे प्रभो ! समस्त प्रकारके अनर्थोंको करनेवाली वालवान शश्व मोहनीय कर्मकी सेनाको आपने सर्वथा नष्ट कर दिया है और सन्मार्गके उपदेश करनेकी आपको परिपूर्ण योग्यता प्रगट हो गई है । अब यह समय उस वास्त-

किमत्र बहुनोक्तेन जनानां शरणं भव । त्वमेव नापशी लोके इत्युक्त्वाऽस्थाः सुराधिपः ॥१०५॥
 शक्प्रायं नयेत्याशु देवो विश्वर्वाहतोद्यतः । भव्याङ्गानुश्रुतं कलुत्तस्ये धर्मभानुमान् ॥१०६॥
 साधै विश्वमहाभूत्या धर्मचक्रपुरस्सरः । प्रचक्रे विजयोद्योगं संवैदेवेश्च धर्मं गद् ॥१०७॥
 पटहादिमहाब्वनेजयनंदादिसत्वस्त्रैः । पूर्यतो दिशो देवा प्रचेलुः प्रमुदा तदा ॥१०८॥
 शुभिभूता तदास्थानात्परितः शतयोजनं । आकाशगमनं चासीद्विभोर्तेऽग्निर्वाणं बधः ॥१०९॥
 व्याघ्रादिकूरसत्त्वैर्स्याद् भुविनमोतिशर्मणः । नोपसर्गश्वतुर्वक्षो दृश्यते दिक्षु सञ्जनैः ॥११०॥

विक मार्गके उपदेशका आकर उपस्थित हो गया—आप भव्य जीवोंको धर्मोपदेश प्रदान करें । विशेष कहना च्यर्य है । प्रभो ! प्रार्थना यही है कि भव्य जीवोंके आप शरण बनें—उन्हें वास्तविक मार्गका उपदेश प्रदान करें व्योंकि इस संसारमें भव्य-जीवोंके शरण आप ही हैं—आपके सिवाय और कोई शरण नहीं हो सकता । बस ! इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर वह धर्मतिता सौघर्म स्वर्गका इन्द्र अपनी जगहपर जाकर खेठ गया ॥१०४-१०५॥

जिस प्रकार सूर्य कमलोंका खिलानारूप उपकार करनेवाला है और समस्त जीवोंके हितमें उद्यत रहता है अर्थात् सूर्यके उदयकालमें ही समस्त प्राणी अपने अपने हितकारी कार्योंमें उद्यत होते हैं उसी प्रकार धर्मके सूर्यस्वरूप वे भगवान् जिनेन्द्र समस्त जीवोंके हितमें उद्यत हो समस्त भव्य जीवरूपों कमलोंके उपकारकी अभिलाषासे इन्द्रकी प्रार्थनाके अनुसार शीघ्र ही अपने आसनसे उठ खड़े हुए एवं चक्रबत्तीं जिस प्रकार विशाल विभूति और सेना आदिके साथ दिविजय करनेके लिये जाता है और चक्र उसके आगे चलता है उसी प्रकार धर्मके चक्रबत्तीं वे भगवान् जिनेन्द्र मुनि आदिका आदि संघ और अनेक देवोंके साथ विशाल विभूतिसे झड़ित हो दिविजय करनेके लिए अर्थात् समस्त आर्य क्षेत्रमें धर्मोपदेश करनेके लिए चल दिये एवं धर्मचक्र उनके आगे आगे चलने लगा ॥१०६-१०७॥ उस समय भगवानके प्रस्थान करनेपर पटह आदि अगणित बाजोंके उन्नत शब्दोंसे एवं ‘हे देव ! जीवें नार्वे विरदें’ इत्यादि सरोहर शब्दोंसे समस्त आकाशको व्याप्त करते हुए देवगण अत्यन्त आनन्दित हो उनके साथ साथ चलने लगे ॥१०८॥ भगवान् अहूंतके चौतीस ३४ अतिशय माने हैं । उनमें दश जन्मके अतिशय हैं उनका वर्णन तो उनके जन्मके समय कर दिया गया । केवलज्ञानके समय दश अतिशय होते हैं वे इस प्रकार हैं—

स्वामित्वं सर्वविद्यानां चाच्छायत्वं प्रजापते । अस्पदो नेत्रयोरस्य चावृद्धिनंखकेशयोः ॥१११॥
 व्यातिक्षयभवा एते दशीवातिशयाः प्रभोः । निरोपम्या भवंत्येव शेषा देवकृता इति ॥११२॥
 अधर्मसागर्धिकाकरभाषा विश्वार्थसूचिनो । विभोर्गसी द्विविक्ता हि पशुदेवनृणां परा ॥११३॥
 देहिनां परमा मेत्रो जातिहेतुविरोधिनां । मर्वर्त्तफलात्माक्ष्या चभृद्रुष्टरुत्रातयः ॥११४॥
 आदर्शं मंडलाकारा मही रत्नमयी व्यभात् । तामवेति महद् वातकुमारकृत्सुशीतलः ॥११५॥
 जिनतिभूच्च सर्वेषां परमानंदमजसा । तृणकीटकसंत्यक्तं भरुत् कुर्यन्महीतलं ॥११६॥
 शतयोजनपर्यंतं विभोनिकटभूतले । गंधोदकपर्यो वृद्धिं विघत्तं स्तनितामगः ॥११७॥
 हैमाब्जानि पदन्यासे संचारयति नाकिनः । शालथादिसर्वधान्योद्याः कल भारतता वभुः ॥११८॥
 जिनेन्द्रनिकटे खेन सार्धं सर्वनिर्मला दिवः । देवा इत्याजपा कुर्युगद्वानम् परस्परं ॥११९॥

जिस स्थानपर भगवान् जिनेन्द्रका समवसरण है उसके चारों ओर एक सी योजन पर्यंत मुभिक्षताका होना १ आकाशमें गमन २ व्याघ्र आदि क्रूर जीवोंके द्वारा अन्य निवेल प्राणियोंका न सारा ज्ञाना अर्थात् अद्याका अभाव ३ अलौकिक कल्याणके शारक केवलीके भोजनका न होना ४ अर्द्धत् कथलाहार रहितना ४ उपसर्गसा अभाव ५ चारों दिशाओंमें चार मुखोंका दीखना ६ समस्त विद्याओंका स्वामीपना ७ छायासे रहित शरीरका होना ८ नेत्रोंके पलकों न लगना ९ एवं केशोंका न बढ़ना १० इस प्रकार ज्ञानावरण आदि चार घण्टिया कर्मोंके नाशसे ये दश अतिशय केवली भगवान् के प्रभट होते हैं जो कि निरोपम्य होते हैं उनकी उपस्था नहीं दी जा सकती । इनके सिवाय शेष चौदह अतिशय देवकृत होते हैं और वे इस प्रकार हैं—

भगवानकी भाषा अर्थमागधी थी जो कि पशु देव और मनुष्योंको भिन्न भिन्न रूपसे समस्त अर्थोंका सूचित करती थी १ स्वभावसे ही बध्यघातक नामका विरोध रखनेवाले सर्व नौला आदि जीवोंकी परस्पर मिश्रता थी २ बुक्षोंकी पंक्तियाँ समस्त श्रुतुओंके फल फूलोंसे युक्त थीं ३ दर्पणके भध्यभागके समान अत्यन्त निर्मल मणिमयी पृथिवी थी ४ ब्रातकुमार देवोंके द्वारा शीतल मंद सुगंध पवन बहुती थी ५ भगवान् जिनेन्द्रके समीप रहने वाले समस्त जीवोंको परमानन्द था ६ पवनकुमार देवोंने जमीनको तृण कंटक आदिसे रहित कर दिया था ७ स्तनितकुमार जातिके भवनवासी देवोंने भगवानके समीपकी सी योजन प्रमाण पृथिवी सुगंधित जलकी चरसे सुगंधित कर रखी थी ८ चलते समय भगवान् जिनेन्द्रके ज्ञरण कमलों तले देवगण सुदर्शनमयी कमलोंकी रचना करते चले जाते थे ९ शालि आदि धान्योंके बुक्ष

धर्मचक्रं सहस्रारं रत्नस्यात्तदिक्तरं । ब्रजत्येव प्रभोरप्ये हतध्वांतं सुरैर्वृतं ॥१२०॥
 आदशद्या विभात्यष्टमंगलद्वयसंपदः । एतेऽत्रातिशया भर्तुश्चतुर्दश सुरोऽद्वाः ॥१२१॥
 शोकहृता स्फुरद्वत्नमयोऽशोकतरुण्यभात् । कल्पांघ्रिपजपुष्पोद्धैः पुष्पवृष्टिव्यंधैः सुराः ॥१२२॥
 गंभीरो मधुरो दिव्यध्वनिविश्वहितं करः । अज्ञानध्वांतहृतास्य भवेद्विज्वार्थदीपकः ॥१२३॥
 उत्क्षपति सुरा यश्य चतुष्ठितप्रकीर्णकान् । नानाभणिमयं हैमं दिव्यं सिहासनं विभीः ॥१२४॥
 भामडलं विभोरजे भानुकोऽवधिकप्रभं । सार्द्धं द्वादशकोटीवार्ष्ये भूददंदुभिष्वनिः ॥१२५॥
 इदुत्रयसमं छत्रश्चयं मृत्तास्मगंकितं । हत्यष्ठप्रानिहायर्थणि कुर्वतेऽप्य पर्वा श्रियं ॥१२६॥
 अनंतं केवलज्ञानं दर्शनं वीर्यमूर्जितं । सुखं चास्य गुणा ख्यानः षट्कृत्वार्थदित्यहो ॥१२७॥

फलोंके भारसे नम्रीभूत थे १० भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आकाश और दिशायें निर्मल थीं ११ इन्द्रकी आज्ञासे देवगण आपसमें एक दूसरेको बुलाते थे १२ भगवानके आगे आगे धर्मचक्र चलता था जो कि हजार अरोंका धारक था अपनी देवीप्रमाण किरणों-से समस्त दिशाओंको चमचमाता था अंधकारका नाराक था और चारों ओरसे देवोंसे बेल्टिस या १३ तथा भगवानके चारों ओर दर्पण कलश झारी आदि आठ मंगलोंके द्रव्य शोभायमान थे १४ इस प्रकार भगवानके ये चौदह अतिशय बेबकृत थे ॥१०५-१२१॥ भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आठ प्रातिहायोंकी भी अपूर्व शोभा थी और वे प्रातिहाय इस प्रकार थे—

भगवान जिनेन्द्रके समीपमें अशोकबृक्ष विद्यमान था जो कि शोकका नाश करनेवाला था एवं देवीप्रमाण रत्नमय था १ कल्पवृक्षोंसे जायमान पुष्पोंके समूहोंसे देवगण पुष्पवृष्टि करते थे २ भगवानकी विश्वध्वनि खिरती थी जो कि मेघकी गर्जनाके समान गंभीर थी, मधुर थी, समस्त लोकका हित करनेवाली थी, अज्ञान-रूप अंधकारको नाश करनेवाली थी एवं समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेमें दीपकके समान थी ३ देवगण भगवानके ऊपर चौसठ अमर ढोरते थे ४ प्रभुका भाँति भाँतिकी भणियोंसे जड़ा हुआ सुवर्णमय दिव्य सिहासन था ५ भगवानके पीछे भामडल विद्यमान जो कि करोड़ सूर्योंकी प्रभासे अधिक प्रभाका धारक था ६ साढ़े बारह करोड़ बाजोंके साथ साथ बुद्धीमुद्दीपकी ध्वनि होती थी ७ तथा शिरपर तीन छत्र थे जो कि तीन चंद्रमा सरोखे जान पड़ते थे और मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान थे ८ इस प्रकार ये आठ प्रातिहाय भगवान जिनेन्द्रकी अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ॥१२२-१२६॥ भगवानके अनंतज्ञान—केवलज्ञान १ अनंतदर्जन—केवलदर्शन २ अनंतवीर्य ३ और अनंतसुख

विजहार महीं कृत्स्नां भव्यानां प्राणयन् जिनः । दिव्यैर्बैचोऽमृतैः कुर्वन् प्रीति च जलदीपमः ॥१२८॥
 मिथ्यामोहांधकारादीन् विघटय्य वचोऽशुभिः । जगदुद्योतयामाम जिनार्कस्तस्वर्मजसा ॥१२९॥
 विश्वद्विभूषिताः सर्वविशाखाद्या गणाधिपाः । प्रणमत्यस्य पादाब्जो हृष्टाविशतिसंख्यकाः ॥१३०॥
 पूर्वधारिण एवास्य साधैं पञ्चशतप्रभाः । शिक्षकाद्वच किलेकीनत्रिशत्सहस्रवासिताः ॥१३१॥
 अवधिज्ञानिनोऽस्व स्युद्धाविशतिशतप्रभाः । तावतः केवलज्ञाना लोकालोकतविलोकिनः ॥१३२॥
 वादिनो हतमिथ्यास्वाइचतुर्दशशतप्रभाः । भवत्येकोनश्रिशच्छतसंख्या विक्रियद्वयः ॥१३३॥
 (२९००) कुर्वत्यस्यपरा भक्ति मनःपर्ययभूषिताः । साधैं सप्तदशैव स्युः शतानि सूक्ष्मपदशिनः ॥१३४॥
 (१७५०) चत्वारिंशत्सहस्राणि सर्वे पिङ्गोकृता विदः । यतयो हिताज्ञाना भवति भूतये भूवि ॥१३५॥

४ ये बार अनंत चतुष्टय शोभायमान थे । इस प्रकार चौतीस अतिशय आठ प्राति-हार्य और चार अनंत चतुष्टय इस प्रकार छियालीस गुणोंके धारक थे भगवान मलिलनाथ अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ।

वे भगवान जिनेन्द्र समस्त भव्य जीवोंको संतोष उपजाते एवं मेघके समान अपने दिव्य वचनरूपी अमृतोंसे सबोंको आनन्दित करते समस्त पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥१२७-१२८॥ जिस प्रकार सूर्य अपनी उग्र किरणोंसे अन्धकारको नष्ट करता है और समस्त जगतको प्रकाशमान करता है उसी प्रकार वे भगवान जिनेन्द्ररूपी सूर्य भी अपने वचनरूपी किरणोंसे मिथ्या मोहरूपो अंधकारका सर्वथा नाश कर संसारमें तत्त्वोंके स्वरूपका प्रकाश करने लगे ॥१२९॥ भगवान मलिलनाथके विशाल आवि अट्टाईस गणधर थे जो कि समस्त प्रकारको ऋद्धियोंसे शोभायमान थे और भगवानके चरण कमलोंको प्रणाम करते थे ॥१३०॥ भगवान जिनेन्द्रके साथमें चारहूँ अंग चौदहुँ पूर्वके धारी साड़े पाँच सौ ५५० मुनि थे शिखक जातिके मुनि उनतीस हजार थे । जो मुनि अवधिज्ञानके धारक थे वे बाईस सौ २२०० प्रमाण थे । जितने प्रमाण थे अवधिज्ञानी थे उतने ही प्रमाण अर्थात् बाईस सौ ही केवलज्ञानी मुनि थे जो कि अपने केवलज्ञानसे समस्त लोक अलोकको स्पष्ट रूपसे देखते थे । मिथ्यात्वको सर्वथा नष्ट करनेवाले परमसम्यगदृष्टिवादी मुनि चौदहुँ सौ १४०० थे । विक्रिया ऋद्धिके धारक उनतीस सौ २९०० थे । मनःपर्ययज्ञानी मुनि भगवान जिनेन्द्रके समवसरणमें साड़े सत्रह सौ १७५० थे जो कि भगवान जिनेन्द्रके परम भक्त थे और सूक्ष्मरूपसे पदार्थोंके देखनेवाले थे । इस प्रकार ये समस्त विद्वान मुनि मिलकर चालीस हजार ४०००० प्रमाण थे । ये मुनिगण मोहांधकारके सर्वथा नाश करनेवाले थे और संसारकी

(४००००) आर्यिका बधुषेणाद्या दृष्टिमूलगुणान्विताः । नमतिपंचपंचाशतसहस्राण्यस्ये सत्कमो ॥१३६॥

(५५०००) लक्षकं १००००० श्रावकाः प्रोक्ताः श्राविकास्त्रिगुणा विभोः ।

दृष्टव्रतालंकृता दानपूजाभक्तिपरायणाः ॥१३७॥

(३०००००) देव देव्यस्तत्वसंख्याताः पाशबोऽस्तिलाः । दृष्टश्रावकव्रतोपेताः सेवतेऽस्य क्रमाम्बुजौ ॥१३८॥

एवं द्वादशभिर्द्वयो गणेरभिपरिष्कृतः । तयत् मुक्तिपथं सव्यान् धर्ममार्गं प्रकाशयन् ॥१३९॥

विहरन्तायस्त्वान् लक्ष्मि देव्यानादित्वान् । सद्गुरुदेवपंचाशतुर्णांतरं स देवत्ते ॥१४०॥

द्वार्तिशदिवसंख्यान् संवत्सरशतेन च । अते मासाऽवशेषायुः सम्मेदाचलमागतः ॥१४१॥

स्वर्घन्ति चोपसंहृत्य स्वयोर्ग च स निष्क्रियः । प्रतिमायोगमाधायधातिकायाय मुक्तये ॥१४२॥

संयतेः सह तत्रैव सहस्रपंचसंख्यकैः । एषानेन तृतीयेनास्थाद्यावदायुःपरिक्षयः ॥१४३॥

शोभा थे ॥१३५॥

भगवान् जिनेन्द्रकी सभामें बधुषेणा आर्यिकाको आदि लेकर पचपन हजार ५५००० आर्यिकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि और मूलगुणोंकी धारण करने वाली थीं और भगवान् जिनेन्द्रके चरण कमलोंको प्रणाम करने वाली थीं ॥१३६॥ एक लाख १००००० श्रावक थे और तीन लाख श्राविकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि थे, श्रावकोंके व्रतोंकी धारक थे और भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा और भक्तिमें सदा तत्पर थे ॥१३७॥ तथा भगवान् मल्लिनाथकी सभामें देव और उनकी देवियाँ असंख्याते थे, संख्याते पशु थे । ये समस्त सम्यग्दृष्टि और श्रावकोंके व्रतोंसे युक्त थे और भगवान् जिनेन्द्रके चरणोंकी पूजा करनेवाले थे ॥१३८॥ इस रूपसे वे भगवान् मल्लिनाथ केवली उपर्युक्त बारह गणोंसे परिवेष्टित थे, भव्योंको मोक्ष स्थानमें ले जाने वाले थे, भास्त्रविक धर्मका मार्ग प्रकाशन करते थे इस प्रकार आर्यसंघमें रहने वाले समस्त देश और पुर आदिमें उन्होंने छत्तीस विन सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष पर्यंत विहार किया था । जब आयुके अन्तमें केवल एक भासका समय बाकी रह गया उस समय वे भगवान् जिनेन्द्र सम्मेदशिवर पहाड़पर जाकर विराजमान हो गये ॥१३९-१४१॥ बहांपर आकर भगवान् जिनेन्द्रने अपनी दिव्यध्वनि और घोगको संकुचित कर विद्या, निष्क्रिय हो गये एवं शेष आर अधातिया कर्म अर्थात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चारों कर्मोंको नष्ट करनेके लिये प्रतिभायोग धारण कर लिया । तथा जबतक आयुका अंत न हुआ तब तक उसी स्थानपर पांच हजार मुनियोंके साथ अपनी आत्मामें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तीसरे शुक्लध्यानको धारणकर विराजमान हो

चतुर्थध्यानयोगेन मणिद्यीपसमेन सः । शेषाधातांनि कर्मणि प्रहृत्यैरण्डवीजवत् ॥१४४॥
 गुणस्थानात्मिः मुक्त्वा शरीरऋणनाशतः । लोकाग्रशिखरे सारं जगाम ज्ञानमूर्त्तिमात् ॥१४५॥
 फालमुनोज्वलपंतम्यां पूर्वं गात्रौ जिनाग्रणोः । भरण्याख्ये सुनक्षत्रे चोष्णगतिस्वभावतः ॥१४६॥
 अनन्तकालमासाद्य सम्यक्त्वादिगुणाइटकं । मिद्दो भूत्वा स तत्रास्थाद भुजानोऽप्यंतर्वर्जितं ॥१४७॥
 निरोपम्यं सुखं दिव्यं दुखातीतं निजात्मजे । अक्षयं परमं ह्यक्षातीतं ब्राधातिगं महत् ॥१४८॥
 तस्य निवणिपूजायै तदा जग्मुदिवैकसः । सेंद्रा हि सपरीवारास्तदभवितकरयोध्यताः ॥१४९॥
 मत्वातिपावनं देहं विभोनिवणिसाधनं । कृत्वा महोत्सवेनाशं पराद्विशिष्कापिनं ॥१५०॥
 एवाज्ञाने वरमेद्वैद्योर्महायुग्मदिवार्णिभिः । उक्तद्वच्छं परया भक्त्या प्रणेमुः शिरसामराः ॥१५१॥

गये ॥१४२-१४३॥ वहां विराजमान होकर मणिमधी दीपकके समान व्युपरतक्रिया-निवृत्ति नामक चौथे शुक्लध्यानसे भगवान् जिनेन्द्रने खारों अघातिया कमोंका सर्वथा नाश कर दिया । अपोगकेवली नामके चौदहवें गुणस्थानमें उन्होंने औदारिक, तंजस और कार्मण इन तीनों शरीरों का सर्वथा नाश कर दिया एवं जिस प्रकार एरंडके बीजका स्वभाव बंधके नष्ट हो जानेपर ऊपरको ही जाने का है उसी प्रकार समस्त कमोंसे रहित आत्माका भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेसे वे ज्ञानमूर्ति भगवान् जिनेन्द्र फागुन सुदी पञ्चमीके दिन जबकि भरणी नामक शुभ नक्षत्र या पूर्व राशिके समय लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान हो गये ॥१४४-१४५॥ सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंको प्राप्त कर और सिद्ध होकर अनंतकाल पर्यंत वहांपर विराज गये एवं उस अलौकिक सुखका अनुभव करने लगे जो कि अन्तरहित अनंत है, उपमारहित है, विक्ष्य है, समस्त प्रकारके वलेशोंसे रहित है, स्वाधीन है, विनाशरहित अविनाशी है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियोंसे जायमान नहीं है । समस्त प्रकार की बाधाओंसे रहित है और महान है ॥१४७-१४८॥

जिस समय भगवान् मुक्त हो गये देवोंको पता लग गया । भगवानकी भक्ति-
के करनेमें दत्तचित्त वे समस्त देव अपने हँड और परिवारके साथ शोषण ही उनकी
निर्वाणभूमि सम्मेदाचलपर आ गये । भगवान् जिनेन्द्र उसी शरीरसे मोक्ष गये थे
इसलिए उनका वह शरीर साक्षात् मोक्षका कारण होनेसे परम पवित्र था । अतः
देवोंने बड़ी भक्तिसे उनका शरीर अनेक प्रकारके रूपोंसे शोभायमान पालकोंमें
विराजमान कर दिया । महासुगंधित उत्तमोत्तम द्रव्योंसे उसे पूजा एवं अंतमें देवोंने
शिर झुकाकर बड़े विनयसे उसे नमस्कार किया ॥१४९-१५१॥ अचिनकृमार जातिके

अग्नीन्द्रमुकुटोद्भूतवहिता तद्गुस्तदा । पर्यायांतरमेवाप सुगंधीकृतदिक्चयं ॥१५२॥
 एवमस्त्वत्र नः शोधमित्युक्त्वादाय भस्म तत् । स्वस्य भालेऽखिलागे च चक्रमुस्तदगतये सुराः ॥१५३॥
 पुनः सभृय नाकेशाः विधायानंदनाटकं । कृतकार्या अगुः स्वं स्वं स्वानं तदगुणशंसिनः ॥१५४॥
 इति सुकृतविपाकात्प्राप्य सौख्यं परं यो नरसुरगतिज्ञातं मलिलनाथोऽनुभूत्वा ।
 त्रिभुवनपतिसेव्यस्तोर्धर्गाट् कर्म हत्वा विविलचरणयोगैः प्राप्त मुक्तिं म नोऽव्यात् ॥१५५॥
 यः प्राप्तेश्चवणाभिष्ठो नृपवरो रत्नत्रयाख्यं वर्त्त, कृत्वादाय च संयमं सुतपसा जायोऽहर्मिद्रो महान् ।
 दिव्यानुस्तरपञ्चकेषु परमे सारे विमाने चतुर्थेऽनां मलिलजिनोऽभवच्चिववधूभर्ता स वोऽस्तु श्रिये ॥१५६॥
 यो मोहारिविधीनिहत्य सुतपः खद्गेन बाल्येऽप्यहो प्राप्तो मुक्तिवधूपनंतसुखदां श्रीमलिलनाथां जिनः ।
 तद्भूत्ये स मया स्तुतश्च विनुतो ह्येतच्चरित्रे भुदु धीघमे कृपयाखिलान्निजगुणान् दद्यात्क्षयं कर्मणां ॥

भवनवासी देवोंके मुकुटसे जायमान अग्निसे भगवानका शरीर दूसरो पर्यायको प्राप्त हो गया अर्थात् भस्म हो गया । जिस समय वह दूसरो पर्यायको प्राप्त हो रहा या उस समय उसकी उत्कट सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगंधित हो गई थीं । उनके शरीर-की जो भस्म हुई थी देवोंने यह जाहू कर कि “जिन जगह पहुँ आवश्या भगवान मलिलनाथ की हुई है उसी प्रकार हमारी भी हो” उसे भगवान मलिलनाथके स्वरूप-की प्राप्तिकी अभिलाषासे अपने अपने मस्तक और समस्त शरीरसे लगा लिया । पुनः समस्त हन्द्रोंने मिलकर आनन्द नाटक किया अन्तमें अपना समस्त कार्य समाप्त कर के भगवान जिनेन्द्रके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥१५२-१५४॥

जिन मलिलनाथ भगवानने पुण्यके तीव्र विपाकसे पहिले तो मनुष्य और देव-गतिके अन्दर होनेवाले उत्तम सुखका सानन्द भोग किया । उसके बाद तीन लोकके हन्द्रों द्वारा द्वन्द्वनीक परम पावन तीर्थकर पदवी प्राप्त की पश्चात् समस्त चरित्रको धारण कर ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष पद पाया वे श्रीमलिलनाथ भगवान हमारी रक्षा करें ॥१५५॥ जो भगवान मलिलनाथ पहिले तो वैश्वरण नामके दाजा हुए वहांपर रत्नश्रप नामका पवित्र ऋत आचरण कर पीछे संयम ले उत्तम तपोंको कृपासे दिव्य पांच अनुस्तर विमानोंमेंसे चौथे अपराजित नामके विमानमें महान् शृङ्खिके घारक अहर्मिद्र देव हुए फिर वहांसे चयकर मोक्षरूपो लक्ष्मीके भर्ता हुए, वे भगवान मलिलनाथ सदा तुम्हारा कल्याण करें ॥१५६॥ बाल अवस्थामें ही जिन भगवान मलिलनाथने उत्तम तपरूपी तीक्ष्ण खड़गसे मोह आदि समस्त कर्मोंका सर्वथा

सर्वं तीर्थंकरस्त्रिलोकमहिताः सिद्धः शारोरातिगाः, आचार्या सुविदोऽपरार्थनिपुणा दक्षः परा: पाठकाः ।
धीरा योगज्ञसाद्व घोरतपसी मोक्षोद्धताः साधवः, स्तुत्याः विश्वजनैर्भया च विनुता कुर्वन्तु वो मंगल ॥

रहितनिलिङ्गिलरागं धर्मसंवेगपूर्णं शुसमवरचरित्रं मलिलनाथस्य यद्धि ।

सकलविमलकोर्तः प्रादुरासाद्वरित्यां तदिह जयतु भव्येदविदास्ते सुधर्मः ॥१५९॥

स्वर्णोदीकनिवंधनं व्यष्टहर्त धर्ममृतेकाणां विश्वानर्थनिवारकं सुखनिर्धि भव्येकचूडामणि ।
अनन्तातीतगुणाकरं सुपरमं कर्मास्त्रिनाशंकरं बद्रे तदगुणसिद्धयेऽहमहनिशा मूष्मांत्र रत्नत्रयं ॥१६०॥

नाश कर अनेंत सुख प्रदान करनेवाली मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया । उन भगवान् मलिलनाथका इस मलिलनाथपुराणमें जो मैंने स्तबन और विनय किया हैं वह उनकी विभूतिको प्राप्तिको अभिलाषासे किया है । अब प्रार्थना यही है कि वे भगवान् शीघ्र ही मुझे अपने समस्त गुणोंको प्रदान करें एवं उन गुणोंके विरोधी जितने भी कर्म हैं वे मेरे सर्वथा क्षीण हो जाय ॥१५७॥ ग्रन्थकार श्रीसकलकीर्ति भट्टारक अन्त मंगल-को कामना करते हुए कहते हैं कि—

तीन लोक द्वारा पूज्य, समस्त तीर्थंकर शरीरके सम्बन्धसे रहित अशारोरी सिद्ध, दूसरोंके प्रयोजन सिद्ध करनेवाले परम विद्वान् आचार्य, शास्त्रोंके अर्थ निरूपण करनेमें अतुर और उत्कृष्ट उपाध्याय एवं धीर वीर, पूर्ण व्यानके धरनेवाले घोर तपोंके तपनेवाले और मोक्ष प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्नशील साधुगण जिनको कि समस्त लोक स्तुति और विनय करता है और मैंने भा इस ग्रन्थमें जिनको स्तुति और विनय को है वे तुम्हारे मंगलके कर्ता हों, तुम्हें सर्वं प्रकारसे मंगल प्रदान करें ॥१५८॥ समस्त प्रकारके रागभावों से रहित, धर्मका स्वरूप और संवेद भावनासे परिपूर्ण अनुपम और उत्कृष्ट जो भगवान् मलिलनाथका चरित्र मुझ भट्टारक सकलकीर्तिके मुखसे इस पृथिवीपर प्रगट हुआ है वह जबतक संसारमें श्रेष्ठधर्म-जैन धर्मको सत्ता विद्यमान रहे सबतक भव्य जीवोंके साथ जयवंता रहे ॥१५९॥

इस संसारमें सम्यग्वर्णन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप जो रत्नत्रय हैं वह स्वर्ग और मोक्षका प्रधान कारण है, समस्त पापोंको सर्वथा नाश करनेवाला है, धर्मरूपी अमृतका एक अद्वितीय समुद्र है, संसारके समस्त अनथोंका निवारण करनेवाला है, समस्त सुखका निधि है, भव्य लोगोंके लिये मस्तक पर धारण करनेके लिए एक अद्वितीय चूडामणि है, अनन्त गुणों का आकर है और समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला है वह रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो और उसके फलस्वरूप सारे गुण मेरे अंदर आकर प्रगट हों इस अभिलाषासे मैं उस रत्नत्रयको रात विन मस्तक मुकाकर

ये रत्नत्रयसद्विद्विषि वृधजनाः कुर्वति भवत्या मुदा, ते संप्राप्य मुखं तृदेवगतिं त्यक्तोपमं तत्कलात् ।
हृत्या कमंचयं महोग्रतपसा श्रीमल्लिनाथेण शब्दवर्णवाचार्चिजगजजनैः शिवगतिं संयाति सिद्धेभूतां ॥१६१॥

असमगृणकरणो वंदितो वैश्वनाथैभैवभुजगसुमंत्रो दिव्यरत्नत्रयोऽस्तु ।

सकलदुरितहान्त्ये पूर्णरत्नत्रयाय परमसुमत्ये वंदितः संस्तुतश्च ॥१६२॥

अस्य मल्लिनाथरित्रस्य साराः इलोका भवत्यथि । साधौ हृष्टशतेः सर्वेन्द्रतुःसप्ततिसम्मिताः ॥१६३॥

इति श्रीमल्लिनाथपुराणे भट्टारकश्रीसकलकीतिविरचिते मल्लिनाथधर्मोपदेशनिवाण
गमनवर्णनो नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥७॥

नमस्कार करता हूँ ॥१६०॥ इस पुराणके अन्दर जो रत्नत्रय व्रतकी विधि बताई गई है उस उत्तम विधिको जो विद्वान् महानुभाव भक्तिपूर्वक करते हैं वे उसके फलस्वरूप मनुष्य देवलोक सम्बन्धी अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं । उग्र तपसे समस्त कर्मोंको छिपाकर भगवान मल्लिनाथके समान तीनों लोकके जीवोंसे पूजित होते हैं । पदचाल सिद्धोंसे चारों ओर भरी दुर्द्दृष्टि द्वेषगतिको प्राप्त करते हैं ॥१६१॥ संसारमें यह दिव्य रत्नत्रय असाधारण गुणोंका पिटारा है, तीनों लोकके नाथोंसे बन्दनोक है, संसाररूपी महाभयंकर भुजंगको बश करनेवाला उत्तम मन्त्र है । उस परम पावन रत्नत्रयको मैंने जो इस ग्रंथमें बनाए और स्तुति की है वह समस्त पाप कर्मोंके नाश-के लिये, पूर्ण रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिये और मृगे परम सुमतिकी प्राप्ति हो इस अभिलाषासे की है इसलिये मेरी यह सविनय प्रार्थना है कि रत्नत्रयको स्तुति और बन्दनासे मेरे समस्त दुष्कर्मोंका सर्वथा नाश हो । मुझे पूर्ण रत्नत्रयका लाभ हो और मृगे परम सुमतिकी प्राप्ति हो ॥१६२॥

इस मल्लिनाथ पुराणके अन्दर समस्त इलोक आठ सौ चौहत्तर हैं जो कि भगवान मल्लिनाथका चरित्र वर्णन करनेके कारण सारभूत हैं ॥१६३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी प० गजाधर-
लालजी न्यायतोथं विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथका धर्मोपदेश
और निवाण गमन वर्णन करने वाला सातवां परिच्छेद समाप्त हुआ ॥७॥